अंक १४९-१५०
जनवरी-जून २०२०

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

- डॉ. हंसा दीप
- सुशांत सुप्रिय
- डॉ. शैलेंद्र शर्मा
- निरुपम
- बद्री सिंह भाटिया
- संजय कुमार सिंह
- श्रीमती छाया सिंह
- प्रगति गुप्ता
- अनिता रश्मि
- कमलेश भारतीय
- डॉ. कविता विकास
- डॉ. प्रभा कुमारी

आमने-सामने

आनंद सिंह
डॉ. इंद्र कुमार शर्मा

सागर-सीपी

मनमोहन 'सरल'

४० रुपये

BEHIND EVERY COAT IS A STROKE OF GENIUS

Welcome to Anuvi Chemicals; one of the largest innovators of specialty products in the Paints and Inks, non-woven Textiles, Leather and Construction industries. For us, staying ahead of the game, requires us to always ask ourselves what next? What could we do next to customize our solutions? What can we research to improve the quality of our products? Or even, what can we innovate next to make you smile? Come and find out at www.anuvi.in

PRODUCT LIST

- Pure Acrylic Emulsions • Styrene / Acrylic Co-polymer Emulsions
- VAM / Acrylic Co-polymer Emulsions • Specialty Emulsions
- Acrylic Wetting and Dispersing Agents • Acrylic Thickening Agents

INNOVATION AT OUR CORE | ECO FRIENDLY WATER BASED SOLUTIONS | HIGH PERFORMANCE | CUSTOMISED SOLUTIONS

ANUCRYL Emulsions and Additives for Paints

205/210/211, Narmada, Laxmi Industrial Premises, Pokharan Road No.1, Vartak Nagar, Thane (West) - 400 606, Maharashtra. India · Tel.- +91-22-25855379 / 25855714
Email : sales@anuvi.in · www.anuvi.in

anuvi
Innovate the next

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

जनवरी-जून २०२०
१४९ व १५०
संयुक्तांक

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,

कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो. : ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

कहानियां

।। ७ ।। काठ की हांडी – डॉ. हंसा दीप
।। ११।। टेलीफ़ोन – बद्री सिंह भाटिया
।। १७।। ख़बर की तलाश में – अनिता रश्मि
।। २१।। क्या नाम था उसका? – सुशांत सुप्रिय
।। २५।। हज़ारों पंखों का एक आसमान – संजय कुमार सिंह
।। ३१।। अपडेट – कमलेश भारतीय
।। ३५।। काल-कोठरी और कंदीलें – शैलेंद्र शर्मा
।। ३९।। सांझी छत – छाया सिंह
।। ४३।। जॉली बुआ – डॉ. कविता विकास
।। ४७।। रुकी हुई यात्रा – निरुपम
।। ५१।। खिलवाड़ – प्रगति गुप्ता
।। ५५।। नैहर छूट गयो – डॉ. प्रभा कुमारी

लघुकथाएं

।। ९ ।। रिक्शा वाला / सुरेश सौरभ
।। १३।। ग़रीब की मां / डॉ. रामनिवास "मानव"
।। ६८।। अंधी सुरंग / आनंद बिल्थरे
।। ७४।। बूढ़ा होना पाप तो नहीं / सिद्धेश्वर

ग़ज़लें / कविताएं

।। १६।। ग़ज़ल / आनंद बिल्थरे
।। २७।। विलोम में लय (कविता) / संदीप राशनिकर
।। ३०।। कविताएं / उज्जला केलकर
।। ३३।। ग़ज़लें / राजेंद्र तिवारी
।। ८६।। कविताएं / सतीश राठी

● न्यूयॉर्क संपर्क ●
नरेश मित्तल
(M) 845-367-1044

● कैलीफ़ोर्निया संपर्क ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

स्तंभ

।। ३ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ५ ।। लेटर बॉक्स
।। ६१।। "आमने-सामने" / आनंद सिंह व इंद्र कुमार शर्मा
।। ६९।। "सागर-सीपी" / मनमोहन "सरल"
।। ७५।। "औरतनामा" : फ़ैज़ुन्निसा चौधुरानी / डॉ. राजम पिल्लै
।। ७७।। पुस्तक-समीक्षा

●"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : दशाश्वमेध घाट (वाराणसी), ९ नवंबर २०१९.
फ़ोटो : मंजुश्री *(नौका विहार करते हुए)*

"कथाबिंब" मुंबई की" संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

"कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१९"

*"**कथाबिंब**" के प्रकाशन का यह ४१ वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २०१९ "कथाबिंब" के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं "**कथाबिंब**" की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/परिचित को सदस्यता भेंट कर सकते हैं. कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें. हम अत्यंत आभारी होंगे.*

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१५०० रु.) :

● **सुरंग भरे पहाड़** - अंशु जौहरी

: श्रेष्ठ कहानी (१००० रु.) :

● **पेइंग गेस्ट** - राजगोपाल सिंह वर्मा ● **फ़ेयर ड्राफ्ट** - मीनाक्षी दुबे

: उत्तम कहानी (७५० रु.) :

● **सुंदरवन की अनोखी कथा** - डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

● **गाइड** - संदीप शर्मा ● **अधूरी कहानी** - एम. जोशी हिमानी

● **फिर वही सड़क** - दिलीप दर्श ● **काकू की जेल यात्रा** - ओमप्रकाश मिश्र

कुछ कही, कुछ अनकही

सन २०२० के छ: महीनों से अधिक बीत गये हैं. हमारी कोशिश थी कि मार्च अंत तक १४९ वां अंक (जनवरी–मार्च अंक) पाठकों तक पहुंच जाये. सब कुछ ठीक–ठाक चल रहा था, छ: कहानियों के साथ प्रेस में भेजने के लिए अंक लगभग तैयार था. तभी २३ मार्च को प्रधानमंत्री ने २१ दिनों के देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा कर दी. उस समय तक यह बहुत ही कम लोगों को मालूम होगा कि यह कोविद–१९ क्या है? और लॉकडाउन का मतलब क्या है. बस, ट्रेन, प्लेन, गाड़ी, किसी भी तरह की आवाजाही, बाज़ार सब बंद. आप यदि कहीं यात्रा में हैं तो वहीं रहिए, घर में हैं तो घर में बंद रहिए. स्थिति की गंभीरता धीरे–धीरे ही लोगों को समझ में आयी. १४ अप्रैल के बाद भी लॉकडाउन को कई बार बढ़ाया गया. इस बीच हमारी कोशिश रही कि १४९ व १५० दोनों अंकों को मिलाकर संयुक्तांक निकाला जाये. अपेक्षा थी कि मुंबई में लॉकडाउन जून अंत तक ख़त्म हो जायेगा और सब कुछ सामान्य हो जायेगा. किंतु इसे अब ३१ जुलाई तक बढ़ा दिया गया है. पोस्ट ऑफ़िस अभी तक बंद हैं. सुधी पाठक संयुक्तांक को शीघ्र कथाबिंब की वेबसाइट पर पढ़ सकेंगे. आशा है कि डाक–व्यवस्था के सामान्य होते ही सदस्यों को भी संयुक्तांक उपलब्ध होगा.

इस बार *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१९"* के पुरस्कारों की घोषणा पृष्ठ २ पर प्रकाशित की गयी है. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई. प्रशस्ति–पत्र के साथ पुरस्कार की राशि चैक द्वारा शीघ्र भेजी जायेगी.

●

इस अंक में कुल १२ कहानियां प्रकाशित हैं. यह महज एक सुखद संयोग है कि अंक में छ: महिला लेखिकाएं हैं और उतने ही पुरुष लेखक – किसी तरह का पक्षपात नहीं! सभी रचनाकारों ने आज के सरोकारों पर अपनी क़लम चलायी है. प्रवासी लेखिका डॉ. हंसा दीप ने रेखांकित किया है कि चाहे देश हो या विदेश कोरोना संक्रमण ने हर किसी की चेतना पर एक–सा असर डाला है. अस्पताल में परदे की दूसरी ओर वाला मरीज युवा है, वह और वृद्धा रोगिणी एक ही वेंटीलेटर शेअर कर रहे हैं. दोनों की तबियत क्रिटिकल है, वह डॉक्टर से कहती है कि पूरे समय वेंटीलेटर युवक को ही दे दिया जाये. उसका क्या है, वैसे भी वह कितना जियेगी! तो इसी के बरक्स बद्री सिंह भाटिया ने अस्पताल की नर्सों की कर्तव्यपरायणता और परिवार के दायित्व के बीच उत्पन्न उहापोह को उकेरा है. अनिता रश्मि और कमलेश भारतीय दोनों ने अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत किया है कि टीवी की चैनलें कैसे ब्रेकिंग न्यूज़ बनाती हैं.

महीनों बिना वेतन मिले घर–परिवार को चलाना कितना मुश्किल है. वेतन के लिए शिक्षक आंदोलन करें तो उन्हें लाठियां खानी पड़ती हैं यहां तक कि नेतृत्व करने वाले प्रोफ़ेसर की मौत हो जाती है लेकिन समाचार–पत्रों के लिए यह कोई ख़बर नहीं है, दूसरे दिन प्रोफ़ेसर का नाम भी किसी को याद नहीं रहता. सुशांत सुप्रिय इस युग में लुप्त हो रहे मानवीय मूल्यों के क्षरण की ओर इंगित करते हैं. संजय कुमार सिंह एक क़िस्सा–गो के माध्यम से क़स्बे के दबंगों और शोहदों की सच्चाई बयान करते हैं कि कैसे शादी के सात दिन बाद ही रामकुमारी के पति की हत्या कर दी गयी. लेकिन उसने हार नहीं मानी. वह रामकुमार बन गयी. लोगों से वह कहती कि ज़ुल्म इसलिए होता है क्योंकि हम बर्दाश्त करते हैं, उसने चुनाव लड़ा किंतु हार गयी. उसे गोली से छलनी कर दिया गया लेकिन लोगों में आशा की किरण का संचार कर गयी. शैलेंद्र शर्मा और छाया सिंह की कहानियां अवश्य ही अलग–अलग स्थितियों की कहानियां हैं लेकिन इनके मूल में भी उम्मीद की किरण ही उभर कर आयी है. अपने पति की हत्या के अपराध में सुगना जेल में बंद है. तीन साल से सुनवाई चल रही है. जेल में ही उसे बच्चा हुआ जिसका पिता उसका पति ही था. जेलर पवार ने लड़के का नाम आरव रखा. पवार साहब का स्थानांतरण हो गया किंतु उन्होंने क़ैदियों के अन्य बच्चों के साथ आरव की पढ़ाई का प्रबंध कर दिया था. एक दिन जब आरव को स्कूल से आने में देरी होती है तो सुगना बहुत परेशान होती है. मालूम पड़ा कि आज स्कूल का रिज़ल्ट था और आरव अपने क्लास में प्रथम आया है. सुगना के मन में ढोल–ताशे बजने लगे. सांझी छत की अमिता के पति राधामोहन सरकारी विभाग में अधिकारी थे, स्वभाव के एकदम रूखे और क्रोधी. घर में सारे निर्णय वे ही लेते. पुत्र अमित को शुरू से होस्टल में रखा कि मां के लाड़ से कहीं बिगड़ न जाये. पढ़ाई पूरी होने के बाद अमित अमेरिका में सेटल हो गया और वहीं किसी से शादी कर ली. पति के निधन के बाद अमिता पूरी तरह अकेली रह गयी. बड़ा–सा घर और काफ़ी बैंक बैलेंस! लड़का मकान बेचने का दबाव डालता रहता कि पैसों से अमेरिका में बड़ा मकान लेकर रहेंगे, पर अमिता ने मना कर दिया और सांझी छत नाम का एक आश्रम खोला. बरसों बाद संयोग से आश्रम के एक समारोह में कनाडा से मुख्य अतिथि आये तो वह अमिता का पोता आरव था. यह भी इत्तफाक है कि उपर्उल्लेखित दोनों कहानियों में लड़के का नाम आरव है.

जॉली बुआ और खिलवाड़ दोनों ही मार्मिक कहानियां हैं. जॉली का असली नाम ज्योति था. उसने अपना सारा जीवन घर–परिवार के लिए होम कर दिया. जॉली को मालूम पड़ता है कि दयावश घर में रहनेवाली स्त्री विभा के साथ उसके पति के संबंध हैं. यह बात उसे तीस साल तक सालती रहती है. वह कैंसर ग्रसित है, जीने की कोई उम्मीद नहीं, पति से बार–बार सच्चाई जानना चाहती है. अंत में पति स्वीकारता है कि ग़लती हो गयी! खिलवाड़ की पढ़ी–लिखी पंखुरी ने हमेशा जीवन को एक खेल ही समझा. मां ने जब भी पूछा कि वह क्यों घर देर से आती है, किनसे मिलती है तो यही कहा कि मैं बड़ी हूं और अपना जीवन अपने ढंग से जीना चाहती हूं,तुम मुझे रोको मत. लेकिन शराब और ड्रग्स ने उसे अंधा बना दिया था. उसे पछतावा होता है किंतु तब तक बहुत देर हो चुकी थी.

अंक की अंतिम कहानी नैहर छूट गयो की बिंदेसरी ने अपनी लड़की ललिया की कम उम्र में शादी कर दी पर उसका गौना नहीं हुआ, वह पति के घर जाती किंतु मां बार-बार उसे अपने घर ले आती. समय बीतने के साथ परिवार बढ़ता गया. बिंदेसरी सबकी चिंता किया करती, कुछ समय बाद वह नहीं रही. ललिया जब बीमार पड़ी तो अंत समय तक उसे पिछला याद आता रहा. बहुत मुश्किल से संसार रूपी नैहर को वह छोड़ पायी. भाई निरुपम की कहानी को जानबूझ कर अंत में लेना सम्यक लगा. नायक कुल देवता की पूजा के लिए गांव जाना चाहता है. रास्ते में ट्रेफ़िक जाम के कारण उसे यात्रा रोक देनी पड़ी है. मालूम पड़ता है आरक्षण के समर्थक और विरोधी प्रदर्शन कर रहे हैं. वैसे यह आम बात है, सड़क पर दुर्घटना हो जाये, हिंसा, आगजनी सामान्य-सी बात है. धार्मिक जुलूस हो, राजनैतिक रैली हो, मज़दूर या छात्र आंदोलन हो. सत्तर साल से देश की यात्रा रुकी हुई है.

आज पूरा विश्व एक बहुत ही विकट संकट से गुज़र रहा है. संसार के बहुत ही शक्तिशाली और संपन्न देश कोरोना वाइरस की चपेट में हैं. अमेरिका, इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, ज़र्मनी, रूस, ब्राज़ील – अब तक लगभग ५ से ६ लाख लोग इस महामारी से कालकवलित हुए हैं. संक्रमित होने वाले लोगों की संख्या करोड़ों में है. ऐसा समझा जा रहा है कि इस वाइरस की उत्पत्ति चीन के वुहान प्रांत में हुई. अनुमान है कि पानी के जीवित जीवों को भोजन में शामिल करने से यह वाइरस फैला. कुछ का कहना है कि यह चमगादड़ों से आया. यह भी माना जा रहा है कि यह चीन के जैविक युद्ध की तैयारी का एक प्रयोग है, कोरोना वाइरस को कृत्रिम रूप से प्रयोगशाला में बनाया गया है. प्रभाव देखने के लिए गुप्त तरीक़े से कुछ लोगों को वाइरस से वुहान में संक्रमित किया गया. आज कोई भी देश न्यूक्लीय युद्ध का जोखिम नहीं उठा सकता. क्योंकि क्षणांश में जो विकिरण फैलेगा उसका प्रभाव विश्वव्यापी होगा, सारी मानव जाति प्रभावित होगी. यदि वुहान में संपन्न इस प्रयोग में कुछ हज़ार लोग मर भी जाते हैं तो भी चीन को कोई ख़ास फ़र्क नहीं पड़ता. यही कारण है कि शुरू में वुहान के अलावा पूरे चीन में यह वाइरस किसी और प्रांत में नहीं पहुंच सका. विश्व स्वास्थ्य संगठन को अमेरिका दोष दे रहा है कि उसने पहले से चेतावनी क्यों नहीं दी, डब्ल्यू एच ओ चीन से मिला हुआ है जबकि अमेरिका सबसे अधिक फंडिंग करता है. इसी कारण से अब उसने पैसे देना बंद कर दिया है. सारे विकसित देशों में मरने वालों की संख्या लाखों में पहुंच चुकी है. सभी की अर्थव्यवस्था पूरी तरह चरमरा गयी है. अगर देखा जाये तो सबसे अधिक फ़ायदा चीन को ही हुआ है!

कोरोना का इलाज़ आसान नहीं है. अभी तक कोई वैक्सीन या टीका ईजाद नहीं हो पाया है, जबकि कई देशों में प्रयास जारी हैं. एक ही उपाय है कि ग्रसित व्यक्ति को एकदम अलग रखा जाये, यानी उसे क्वाराइंटाइन किया जाये. इस बीच शरीर में ऑक्सीज़न के स्तर की कमी नहीं होनी चाहिए और न ही ज्वर बढ़ना चाहिए. अन्यथा फेफड़े प्रभावित हो सकते हैं और रोगी की मृत्यु हो जाती है. आवश्यकता हो तो वेंटीलेटर के माध्यम से अतिरिक्त ऑक्सीजन दी जाये. सात दिनों में स्वमेव संक्रमण क्षीण हो जाता है. भारत उन कतिपय देशों में है जहां लॉकडाउन जल्दी लागू कर दिया गया और जनता ने महामारी की गंभीरता को समझा. यदि कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं न घटतीं तो शायद अप्रैल मध्य तक स्थिति नियंत्रण में आ चुकी होती. यहां उद्देश्य किसी समुदाय या वर्ग को दोष देना नहीं है, उपस्थित स्थितियों का महज विश्लेषण करना है. मार्च के मध्य में दिल्ली में हज़रत निजामुद्दीन की एक विशालकाय मस्जिद में तब्लीगी जमात का एक मरकज़ आयोजित किया गया था जिसमें देश-विदेश के क़रीब चार हज़ार लोगों ने भाग लिया. लगभग सभी विदेशी लोग जिनके पास मात्र टूरिस्ट वीसा था, ऐसे देशों की यात्रा करके आये थे जहां कोरोना फैल चुका था, इस कारण वे वाइरस से संक्रमित थे. कई दिन तक इतने सब लोग साथ खाते-पीते और उठते-बैठते रहे, ऐसे में अधिकांश वाइरस से ग्रसित हो गये. इस आयोजन की न पहले से अनुमति ली गयी थी न इसकी सूचना थी कि मरकज़ की समाप्ति के बाद कौन कहां जायेगा. यदि तभी सबकी डॉक्टरी जांच हो जाती तो यह महामारी इतना विकराल रूप न ले पाती. यदि पता न लगे तो एक संक्रमित व्यक्ति दूसरे सौ लोगों को संक्रमित कर सकता है और फिर इनसे और हज़ार लोगों में या और अधिक लोगों में यह फैल सकता है. कहीं न कहीं यह कड़ी टूटना आवश्यक है. तब्लीगी उ. प्र., राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल और तमिल नाडु पहुंचे और अनगनित लोगों को संक्रमित किया. अनुमान के अनुसार अप्रैल ख़त्म होते-होते कोरोना नियंत्रण में आ जाता तथा लॉकडाउन आगे नहीं बढ़ता. परंतु इसके पश्चात सरकार की सारी शक्ति संक्रमण के फैलने को रोकने में लग गयी. इसी के साथ दिहाड़ी मज़दूरों और ऐसे लोग जिनकी बंधी-बधाई नौकरी नहीं होती, के लिए बड़े शहरों में रहना मुश्किल हो गया. घर में बंद होकर वे अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ थे. साधन मिले या न मिले वे अपने गांव के लिए निकल पड़े. यह सर्वथा एक नयी समस्या थी. कॉलेज बंद होने कारण छात्रों को घर जाना था. अधिकांश लोग उ. प्र. और बिहार के थे. बसें चलायी गयीं, हर छोटे बड़े शहर के लिए युद्ध स्तर पर श्रमिक ट्रेनें चलाई गयीं. यह एक मिलेट्री ऑपरेशन जैसा था.

चीन और भारत की आबादी मिलाकर विश्व की ४० प्रतिशत से कुछ अधिक है. केवल अमेरिका की जनसंख्या भारत की एक चौथाई से कम है. अब तक अमेरिका में सवा लाख से अधिक लोग कोरोना से अपनी जान गंवा चुके हैं. वहां लॉकडाउन में बहुत देरी की गयी. सड़क पर सर्दी-गर्मी में यातायात को नियंत्रण करने वाले सिपाही, सफ़ाई कर्मचारी, अस्पतालों का स्टाफ़, नर्सेज़ और डॉक्टरों का हमें आभारी होना चाहिए. इनका योगदान सरहद की रक्षा करने वाले जवानों से कम नहीं है. ये सभी हमारे हमारे सुरक्षा कवच हैं.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶ 'कथाबिंब' के चालीस वर्ष पूरे होने पर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है इस हेतु आपके संघर्ष और परिश्रम को दिल से धन्यवाद और पत्रिका से जुड़े पाठकों का आभार. आप देश-परदेश में जहां भी जाते हैं वहां की तस्वीरों से पाठकों को भी अवगत कराते रहते हैं जिसे देखकर अच्छा लगता है.

प्रकाशित कहानियों पर निरंतर आपकी टिपण्णियों के बाद अलग से कहने की गुंजाइश नहीं बचती है फिर भी मेघालय की यात्रा में खदान की विपदाओं के ज्वलंत उदाहरण दृष्टव्यों के अलावा नयी जानकारियों के साथ ज्ञानवर्धक अंतर्कथाएं हैं हम इसे यात्रावृतांत भी कह सकते हैं, जिसमें खदान मालिकों की चुप्पी और सरकार की लापरवाही की गंध है, जिसे अच्छी तरह से कथाकार अंशु चौधरी ने कहानी 'सुरंग भरे पहाड़' में उकेरा है.

परिवार के आर्थिक बोझ को निभाने में पुरुष अपने हाथ पीछे कर लेते हैं, मगर एक महिला सहर्ष गर्व के साथ बोझ के समक्ष उठकर खड़ी हो जाती है. इस उत्साह में उसकी उम्र बढ़ती चली जाती है और एक दिन उसके हृदय में भी मंशा जागती है कि वह भी अपना घर बसा ले, उसके इस निर्णय पर लोग कहने लगे — इस बुढ़ापे में तुम्हें यह क्या सूझी? उसके फ़ैसले से सभी हतप्रभ थे, मगर उसने किसी की नहीं सुनी और घर बसा लिया. इस वृतांत का उल्लेख ठीक ढंग से कहानी 'विदा' में मालती जोशी ने किया है.

एक कश्मीरी लड़की इशिता पीएच. डी. करने दिल्ली आती है विलंबता की वजह से सारे हॉस्टल में जगह नहीं बचती 'पेइंग गेस्ट' के रूप में प्रो. बनर्जी का घर मिलता है. नियमों के जाल ने एक पवित्र रिश्ते को ग्रहण लगा दिया है. प्रोफ़ेसर ने प्रशासन को बहुत समझाया, सफ़ाई दी 'इशिता उनके लिए बेटी की तरह है.' इशिता इस घटना से आहत हो गयी और स्वयं को दोषी मानने लगी, वह नये 'पेइंग गेस्ट' में चली गयी जहां उसने पंखे से लटक कर आत्महत्या कर ली. कहानी 'पेइंग गेस्ट' पढ़कर मन में सवाल उठता है कि क्या किसी की सहानुभूति के नाम पर मदद करना कोई पाप है? लेखक राम गोपाल सिंह वर्मा सच में बधाई के पात्र हैं.

जयंत की कहानी 'उफ़ान' बाढ़ की त्रासदी का वृतांत है. सरकारी लाभप्रद योजनाओं पर बिचौलिये के बंदर-बांट से कैसे एक सुविधा भोगी महिला की मौत हो जाती है, इसे जानने के लिए सुरेंद्र अंचल की कहानी 'वह नहीं आयेगी?' पढ़ना चाहिए. भारतीय किसान की क्या त्रासदी है इसे जानने समझने के लिए ओम प्रकाश मिश्र की कहानी 'काकू की जेल यात्रा' को पढ़ा जाना चाहिए.

साहित्यिक मनोस्थितियों को जानने के लिए आमने-सामने के तहत प्रकाशित देवेंद्र कुमार पाठक के विचारों को पढ़ना अति आवश्यक है. और आपका संपादकीय तो हर बार गागर में सागर समाये रहता ही है. कविताएं और लघुकथाएं भी ध्यान आकृष्ट करने में सक्षम हैं.

राजेंद्र आहुति

ए-१३/६८, सेवई मंडी, प्रल्हादघाट, वाराणसी-२२१००१ (उ. प्र.). मो. ९३६९३६८१३३.

▶▶ 'कथाबिंब' का अक्तू.-दिसं.'१९ अंक सुरक्षित मिल गया. स्नेह-स्मरण हेतु आभार. हमेशा की तरह महत्वपूर्ण पठनीय सवालिया संपादकीय ग़ौर करने लायक है. संसद के आंतरिक विरोध का सड़कों पर आक्रामक होना कुछ भी हो किंतु क्यों हो रहा है, कौन करा रहा है, यह गंभीरता से सोचने का विषय है. ज्वलंत संपादकीय हेतु बधाई.

अंक की कहानियां सभी अच्छी हैं, किंतु 'विदा', 'पेइंग गेस्ट' और 'उफ़ान' विशेष अच्छी लगीं. लघुकथाओं का चयन प्रभावी है. काव्य पक्ष में ज्योति मिश्रा की कविता एवं मनाज़िर हसन की ग़ज़ल ही प्रभावित कर पायी.

स्तंभ 'आमने-सामने' में देवेंद्र कुमार पाठक की आत्मरचना पढ़ना सुखद है. असगर वज़ाहत का साक्षात्कार पठनीय है.

राजेंद्र तिवारी

'तपोवन', ३८-बी, गोविंदनगर, कानपुर-२०८००६. मो.६३८६६८०७६८

▸▸ 'कथाबिंब' का अक्तूबर-दिसंबर २०१९ का अंक प्राप्त हुआ.

'नन्ही गोरैय्या' (लघुकथा) आज़ादी में सुरक्षा के मायने समझाती है. 'मध्यस्थ' (लघुकथा) स्पष्ट बताती है कि लोग जीवन में 'कैसे भी धन कमाओ' की नीति पर चल रहे हैं. 'प्रौढ़ प्रेम' (लघुकथा) आशा भरती है कि आयु का कोई भी पड़ाव पुरुष-स्त्री प्रेम में बाधा नहीं है. 'नकारात्मक ऊर्जा' (लघुकथा) लेखकों का दुख बताती है. 'सपना' (लघुकथा) दुखदायी अंत लेकर आती है. यदि लघुकथाकार सकारात्मक घुमाव लेकर आता, जैसे कोई बच्चों को गोद ले लेता तो अच्छा होता. बाक़ी की रचनाओं को मिलाकर पूरा अंक अच्छा लगा. शुभकामनाएं.

– डॉ. एन. एन. लाहा
२७, ललितपुर कॉलोनी, डॉ. पी.एन.लाहा मार्ग, ग्वालियर (म. प्र.)
फ़ो. : ०७५१-२३२२७७७.

▸▸ 'कथाबिंब' अक्तूबर-दिसंबर २०१९ नज़र नवाज़ हुआ. ग़ज़ल के प्रकाशन के लिए शुक्रिया. पत्रिका का आवरण चित्र मनमोहक है. कहानी 'सुरंग भरे पहाड़' (अंशु चौधरी) हक़ीक़त के क़रीब मार्मिक एवं पठनीय है. ग़रीबी, मज़बूरियां और महरूमियां इंसान को ख़तरनाक राहों पर चलने को विवश कर देती हैं और फिर होता है उसके जीवन का अंत. कहानीकार को कहानी बुनने और कहने का सलीक़ा आता है. मुबारकबाद!

ग़ज़ल की विधा आसान नहीं. इसमें बहरो-वज़न (मीटर) का ख़्याल पड़ता है वरना ग़ज़ल प्रभावहीन हो जाती है. ग़ज़ल का संबंध संगीत से है, इसे अगर गाया और गुनगुनाया नहीं तो ग़ज़ल, ग़ज़ल नहीं रहती कुछ और हो जाती है.

- मनाज़िर हसन 'शाहीन'
६०, मिल्लत कॉलोनी,
गया (बिहार)-८२३००१.
मो. ९६६१२१४१११

▸▸ 'कथाबिंब' का अक्तू.-दिसं'१९ का अंक प्राप्त हुआ. आभार. कहानियों में बाली के रहस्यमय चरित्र (सुरंग भरे पहाड़- अंशुजी) ने भीतर तक हिला दिया. मालती जी की 'बिदा', बस क्या कहूं, अंतिम पंक्ति तक आते-आते आंख भर आयी. कहानी यथार्थ के बिल्कुल क़रीब है. वर्मा जी की 'पेइंग गेस्ट' भी अच्छी लगी. इशिता की आत्महत्या ने चौंका दिया. 'शाहीन' और डॉ. अभय की ग़ज़लों के कुछ शेर बहुत अच्छे लगे.

'औरतनामा' में ज्योतिर्मौयी देवी की जीवनी को डॉ. पिल्लै ने बहुत ही अच्छे से प्रस्तुत किया है. मधु अरोड़ा की वज़ाहत साहब से बातचीत उपयोगी लगी.

संपादकीय के उत्तरार्ध में आपने राजनैतिक गतिविधियों का विश्लेषण, निष्पक्ष ढंग से किया है. उसके बाद से गंगा में बहुत-सा पानी बह गया है. इस पर भी आपके विचारों की प्रतीक्षा रहेगी. आवरण चित्र आकर्षक है.

आनंद बिल्थरे
प्रेमनगर, बालाघाट-४८१००१.
(म. प्र.). मो. : ७९९९७८५८६८

▸▸ प्रिय भाई माधव, 'कथाबिंब' के तीन अंक भिजवाने के लिए अनेक धन्यवाद! अभी केवल जुलाई-सितंबर २०१९ अंक ही पढ़ पाया हूं. अच्छा होता यदि आप इस अंक में अपने चित्रों के साथ हवाई द्वीप की अपनी सुंदर यात्रा के कुछ संस्मरण भी देते. अनेक पाठक जिनमें मैं भी शामिल हूं यात्रा वृतांतों को ख़ूब पसंद करते हैं और ये वृतांत हिंदी साहित्य का अंग ही माने जाते हैं.

कहानी 'फ़ैसला' (चंद्रभान राही) ख़ूब अच्छी है. अंत तक रहस्य बरकरार रहता है कि न जाने क्या फ़ैसला आये. फिर सही फ़ैसला कर लेखक ने पाठकों के मन को गुदगुदा दिया. इसमें संदेह नहीं कि आज की भारतीय न्यायपालिका ख़ूब ज़िम्मेदारी से काम करती है और आज का देहाती-ग्रामीण भारत भी ख़ूब पॉज़िटिव सोच रखता है, न्याय होगा ऐसी प्रखर आशा रखता है. राही जी को बधाई!!

- डॉ. देवकीनंदन
प्रगतिशील को. सोसायटी, प्लॉट-५ सी, से-११,
द्वारका, नयी दिल्ली-११००७५.
मो. : ९९१०३३२१४५

काठ की हांडी

डॉ. हंसा दीप

यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में लेक्चरार के पद पर कार्यरत. पूर्व में यॉर्क यूनिवर्सिटी, टोरंटो में हिंदी कोर्स डायरेक्टर एवं भारतीय विश्वविद्यालयों में सहायक प्राध्यापक.
दो उपन्यास, तीन कहानी संग्रह प्रकाशित. उपन्यास गुजराती में अनूदित, कई कहानियां पंजाबी, मराठी व अंग्रेज़ी में अनूदित. कई प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का निरंतर प्रकाशन.

अफरा-तफरी मची हुई थी. शहर के हर कोने से भय और घबराहट की गूंज सुनायी दे रही थी. एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे तक पहुंचते कोरोना वायरस अब एलेग्ज़ेंडर नर्सिंग होम की दहलीज पर क़दम रख चुका था जहां कई उम्रदराज़ पहले से ही बिस्तर पर थे. सीनियर सिटीज़न के इस केयर होम में अधिकांश रहवासी पचहत्तर वर्ष से अधिक की उम्र के थे. कई लोग आराम से घूम-फिर सकते थे तो कई बिस्तर पर ही रहते. कई को अपनी दिनचर्या निपटाने में किसी की मदद की आवश्यकता नहीं होती तो कई पूरी तरह से मदद पर निर्भर थे. कई शारीरिक व मानसिक दोनों रूप से अस्वस्थ थे, तो कई सिर्फ़ मानसिक रूप से अस्वस्थ थे, वे चलते-फिरते तो थे पर ऐसे जैसे कि कोई जान नहीं हो उनमें. उन्हें देखकर लगता था कि ज़िंदगी टूट-फूट गयी है, जैसे-तैसे उसे समेट कर चल तो रहे हैं पर किसी भी क्षण बिखर सकती है.

कोरोना के प्रहार को सहने की ताकत इन सीनियर सिटीज़न में बहुत कम थी इसीलिए यह वायरस इसका फ़ायदा उठाकर शहर के अधिकांश ऐसे नर्सिंग होम्स को निशाना बना रहा था. अब तक सुरक्षित रहा यह केयर होम अब इसके शिकंजे में फंस चुका था. एक के बाद एक कई लोगों की रिपोर्ट पॉज़िटिव आ रही थी और उन्हें अस्पताल भेजा जा रहा था. चौबीस घंटे ख़त्म होते-होते दस लोगों की मौत की ख़बर उनके साथियों में निराशा और दहशत फैलाते हुए दीवारों से टकराकर सांय-सांय कर रही थी. मौत का मंजर आंखों के क़रीब आकर दस्तक दे रहा था.

खौफ़ और ख़तरों से जूझते यहां के कर्मी अपनी जान की चिंता लिये जैसे-तैसे इस ख़तरे से निपट रहे थे. कुछ पॉज़िटिव होने से घर पर एकांतवास में थे, कुछ इसकी आशंका में घर रुकना चाहते थे पर मज़बूरी में काम कर रहे थे. एक के बाद एक आती इन ख़बरों ने रोज़ा को विचलित किया था. बेसब्री से प्रतीक्षा कर रही थी कि अपने पड़ोसी स्टीव की कोई ख़बर मिल जाए उसे.

जीवन के छियासी बसंत पार कर चुकी रोज़ा पर मौत की ख़बरों का

आतंक इस तरह छाया था कि नज़रें टीवी स्क्रीन से हट नहीं रही थीं. गत दस वर्षों से यही नर्सिंग होम उसका घर था. पिछले कुछ दिनों से सारे कर्मी इस तरह डरे हुए अपना काम कर रहे थे मानो बिस्तर पर लेटे ये रहवासी मौत का पैगाम लिये खड़े हों उनके लिए. सबने अपने आपको पूरी तरह कवर किया हुआ था, पता ही नहीं चलता कि 'यह है कौन'. आज तक कभी ऐसी स्थिति नहीं आयी थी कि काम करने वाले उन सबके इर्द-गिर्द किसी रोबाट की तरह आयें. हल्के नीले रंग के प्लास्टिक के कवर से ढंके या यों कहें कि प्लास्टिक का गाउन पहने हुए, हाथों में दस्ताने, मुंह पर मास्क, पारदर्शी चश्मे में छिपी आंखों के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देता था.

सूज़न, नर्सिंग होम की रिसेप्शनिस्ट ने आकर आज दिवंगत हुए सदस्यों के नाम बताये. स्टीव का नाम भी था उनमें. रोज़ा की आंखें जैसे झपकना ही भूल गयी हों. कई साथियों के साथ उसका ख़ास दोस्त स्टीव उसे छोड़ कर चला गया था. अक्सर वे दोनों आपस में बातें करते रहते थे. दोनों ने यहां के जीवन को ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार कर लिया था. किसी को अब परिवार, बच्चों की प्रतीक्षा नहीं होती क्योंकि वे दोनों एक दूसरे के अच्छे साथी बन गये थे. उस बड़े कमरे में जहां चार लोगों के पलंग थे. एक ओर से दूसरी ओर सिर्फ़ कपड़े का परदा था जो उनके अपने कमरे की सीमा था, उनका अपना घर था. कोई किसी की चार दीवारी में नहीं झांकता था. बैठे-बैठे, सोए-सोए बातें कर लेते थे, ठहाके लगा लेते थे, लंच-डिनर की टेबल पर साथ निभाते और टहलने साथ में चले जाते थे.

कल स्टीव की रिपोर्ट कोरोना पॉज़िटिव आयी और उसे अस्पताल ले जाया गया था, आज वह चल बसा था. बगैर कुछ कहे इस तरह उसका चले जाना मन को स्वीकार ही नहीं हो रहा था. लग रहा था कि अभी कपड़े की दीवार के उस पार से आवाज़ आएगी — 'हे, रोज़, सब ठीक है? चलो, घूमने चलें.'

'पांच मिनट बाद चलते हैं स्टीव.'

उन पांच मिनटों में वह अपने बाल ठीक करेगी, रूखे होठों पर चॉपस्टिक लगाएगी और चप्पल पहन कर चल देगी उसके साथ. नीचे बरामदे तक जाएंगे. फिर मौसम अच्छा होगा तो थोड़ा बाहर निकलेंगे उसके बाद उसकी मजेदार बातों पर हंसते हुए ताश खेलने बैठेंगे. अख़बार पढ़ेंगे और फिर से अपने-अपने कमरे में क़ैद हो जायेंगे.

इस तरह तो कोई दुनिया छोड़ कर चला नहीं जाता. रोज़ा के लिए यह सिर्फ़ एकाकीपन ही नहीं था, बहुत कुछ था जो तकलीफ़ दे रहा था. साथ वाले परदे की हिलती दीवारों को घूरते हुए महसूस हो रहा था कि न जाने कल किसका नंबर है. कितने और लोग अस्पताल के लिए ही नहीं, अपनी आख़िरी यात्रा के लिए प्रस्थान कर रहे हों. वही हुआ, अगली सुबह तक लगभग सारे लोग या तो जा चुके थे या बची हुई अपनी चंद सांसें गिन रहे थे.

शायद जीवन का सबसे दु:खद दिन था यह जब आसपास के सारे जाने-पहचाने चेहरे कूच कर गये थे. रोज़ा न खा पायी थी, न सो पायी थी. वह रात काटे नहीं कट रही थी. बहुत अंधेरी थी, इतनी अंधेरी कि लग रहा था आज सूरज नहीं उगेगा. उसे भी महसूस होने लगा था कि कुछ ग़लत है शरीर में, सांस लेने में तकलीफ़ होने लगी थी, अजीब क़िस्म की बेचैनी थी. तमाम सामाजिक दूरियों के बावजूद सूरज निकलने तक रोज़ा के शरीर में कोरोना के सारे लक्षण मौजूद थे. उसे भी अस्पताल भेज दिया गया. कई मित्रों के हंसते हुए चेहरों से भरा वह नर्सिंग होम मौत का अड्डा बन चुका था. वे पलंग जो दिन हो या रात मदद की गुहार लगाते रहते थे, अब मौन थे. एक साथ पैंतीस लोगों की मौत अब छत्तीस का आंकड़ा पूरा करने के इंतज़ार में थी.

इस महामारी में अस्पताल जाना तो बीमार को और बीमार ही करता. वह जो देख रही थी, आंखें उसे कभी देखना नहीं चाहतीं. बाहर की लॉबी में कहीं उल्टी करने की तो कहीं थूकने की आवाज़ें आ रही थीं. चार-पांच घंटों का इंतज़ार साइन-इन करने के लिए था. कुछ दीवार का सहारा लेकर खड़े थे, कुछ फ़र्श पर ही लेट गये थे. अगले चार-पांच घंटों का इंतज़ार कॉरीडोर में पलंग के लिए था. रूम तो खाली थे नहीं, सारी खाली जगहें, चाहे वह डॉक्टरों के बैठने की हों या नर्सों के बैठने की, मरीजों के वार्ड में तब्दील हो गयी थीं.

ख़त्म होते संसाधनों के साथ अस्पताल प्रशासक एक साथ कई मोर्चों से निपटते मरीजों के क्रोध से भी निपट रहे थे. गुस्से में एक मरीज ने नजदीक से गुज़रते एक डॉक्टर का मास्क खींच लिया था यह कहते हुए कि–'हम बीमार हैं तो तुम भी साथ में बीमार हो जाओ ताकि हम मरेंगे तो साथ में मरेंगे.'

डॉक्टरों, नर्सों की सुरक्षा के साथ, घबराहट व निराशा में धकेले गये इन रोगियों के आक्रोश को मुस्तैदी से रोकना भी एक ज़्यादा ज़रूरी काम हो गया था. जान बचाने वाले

उन फरिश्तों को गालियां दी जा रही थीं. एक ओर मानवीयता अपना क्रूरतम रूप दिखा रही थी तो दूसरी ओर उदात्त मानवीयता के चरम की परीक्षा थी, लाशों को उठाने के लिए भी लोग नहीं मिल रहे थे. जीवित लोग इलाज की प्रतीक्षा कर रहे थे व लाशों का ढेर अस्पताल के प्रांगण में पड़ा अपने गंतव्य तक जाने की प्रतीक्षा कर रहा था. पहले दिन के प्रकोप के बाद अस्पताल की वैन से लाशें जा रही थीं. फिर वैन छोटी पड़नी लगीं. बड़े कार्गो ट्रक बुलवाए गये. यह भी बहुत मुश्किल हो रहा था. अस्पताल इमारत की हर मंजिल से ट्रक तक पहुंचती लाशों को अस्पताल के कई दरवाज़ों से निकलना पड़ रहा था, इससे ले जाने वालों के लिए, रास्ते के मरीजों के लिए, सबके लिए ख़तरा था. अब खुले कार्गो ट्रक इस तरह खड़े किये गये कि प्लास्टिक में लपेट कर, हर मंजिल की बालकनी से ऊपर से नीचे सीधे लाश को ट्रक में डाला जा सके. यह किसी भी तरह से मानवता का तिरस्कार नहीं था, यह तो ज़िंदा बचे शेष लोगों को बचाने की कोशिश भर थी, ज़िंदा लोगों को सम्मान देने का एक प्रयास भर था.

घंटों इधर से उधर धकेले जाने के बाद रोज़ा को कॉरीडोर में रखा गया था. कमरों की कमी, बिस्तरों की कमी, मास्क की कमी, संसाधनों की कमी, सबसे ज़्यादा वेंटिलेटर्स की कमी. अनगिनत आवश्यक वस्तुओं की कमियों के चलते हर चेहरा परेशान था, काम के बोझ से, मौत के ख़ौफ से और मन के शोक से. सर्व संपन्न इंसान की सारी ताकतें इस वायरस ने झुठला दी थीं. ऐसा लगता जैसे इस बेबसी का मखौल उड़ाता कोरोना वायरस ठहाके लगा रहा हो.

रोज़ा का नंबर आ गया था, पलंग मिलने के साथ ही कॉरीडोर में जगह मिलना इस बात का संकेत था कि अब इलाज जल्द ही चालू हो जाएगा. उसका बिस्तर आरामदेह था. हर बेड के बीच आवश्यक दूरी के बाद दूसरा बेड लगा था. सामने के कॉरीडोर की लाइन भी पूरी भरी थी. रोज़ा के ठीक सामने एक और मरीज अपनी बारी का इंतज़ार कर रहा था. बीच के रास्ते से नर्स, डॉक्टर आते-जाते मरीजों को संकेत दे देते कि बहुत कुछ चल रहा है वहां.

इस महामारी के चलते किसी भी परिवार वाले को साथ रखने की इज़ाज़त तो थी ही नहीं. मरीजों के बीच घिरे स्वास्थ्यकर्मी मानों स्वयं मौत को अपने शरीर में घुसने का न्यौता दे रहे थे. दूरियों को निबाहते भी नज़दीकियां तो थीं. ब्लड प्रेशर लेना, ख़ून की जांच करना, वेंटिलेटर लगाना, ये सारे काम बगैर छुए तो कर नहीं सकते थे. कहां जाते बेचारे, मरते क्या न करते. जीवन-भर के अपने कड़े परिश्रम के बदले उन्हें डॉक्टर का सम्माननीय पेशा मिला था. आज वे उससे भागना चाह रहे थे, अपने उस फ़ैसले पर शायद पछता भी रहे हों. सारी काबिलियत को नकार कर आज उसी पेशे की वजह से मौत उनके पीछे पड़ी थी.

लघुकथा

रिक्शा वाला

✍ सुरेश सौरभ

पत्नी के साथ रिक्शे के नीचे उतरते ही दस का नोट रिक्शे वाले को पकड़ाया ही था तभी वह खीज कर बोला – दस... इतने नहीं लूंगा.

'बताओ कितने लोगे बताओ-बताओ बीस-तीस पचास सौ.'... सारा दिन गर्भवती पत्नी की दवा-जांचों में बीत गया. आधा किलोमीटर के इससे ज़्यादा और क्या देता इसलिए मैं भी तैश में बोला.

'इतनी दूर लेकर आये हैं पेट फट जाए.' एक भद्दी सी गाली मुंह से बक दी.

'क्यों चलाते हो रिक्शा, अधिकारी बन जाओ. सरकारी बाबू बन जाओ, न चलाना पड़े. जब काम ही ऐसा है तुम्हारा तो कोई क्या करे.' पत्नी उतर कर अंदर जा चुकी थी. मैं भी उतर कर उसके पीछे चला.

फिर धीरे से वह बोला--पंद्रह ही दे दो.

मैंने जेब टटोली. हाय! री किस्मत, छुट्टा न था. घर में घुसते ही घर खंगाल रहा था. तभी देहरी पर गेहूं छांट-बीन रहीं मां थोड़ा तुनकते हुए बोलीं --कितनी दूर है. अगर अस्पताल से आये होते तो बीस देते चौराहे से आये हैं. बड़े आये हैं, दस नहीं क्या पचास लोगे.'

'घर में जब कभी दो-चार रुपयों की ज़रूरत पड़ जाये, तो टूटे मिल नहीं सकते, 'झुंझलाते हुए बड़बड़ाने लगा. मां ने आठ और पांच साल की अपनी दोनों नातिनों को देखकर कहा --क्या करें ये मरी पिटी नहीं रखतीं.

तभी हड़बड़ी में बाहर झांक कर बाहर देखा तो वह रिक्शा वाला तेज़ी से जा चुका था. कोई टीस अपने अंदर सालते हुए काफ़ी देर तक मैं छटपटाता रहा. ऐसा लग रहा था, वो मुझसे कह रहा है, तुम क्यों नहीं बड़े अधिकारी बन जाते फिर ग़रीबों को ख़ूब रुपिया पैसा लुटाओ झिकझिक तुम्हें करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी. उसका ख़ामोशी से चले जाना दिल में नश्तर-सा चुभ रहा था.

निर्मलनगर,
लखीमपुरखीरी- २६२७०१ (उ. प्र.)
मो-७३७६२३६०६६

रोज़ा हैरान थी यह देखकर कि उसके ठीक सामने वाले पलंग पर एक नवयुवक था जो गंभीर हालत में था. अभी तक तो वह यही सोच रही थी कि साठ के ऊपर की उम्र के लोग ही इससे परेशान हैं. यह नवयुवक तो अंदाजन पच्चीस-छब्बीस का होगा. रोज़ा को देख रही नर्स उसकी भी देखरेख कर रही थी. उसकी हालत गंभीर थी. वेंटिलेटर्स कहीं खाली नहीं थे. डॉक्टरों की फुसफुसाहट ने तय किया कि इन दोनों मरीजों को बारी-बारी से वेंटिलेटर पर रखा जाये. ज़रूरत के हिसाब से कभी रोज़ा को, कभी डिरांग को.

पूरे दिन नर्स यही करती रही. उसकी ड्यूटी बदलते ही दूसरी नर्स आयी. वह कह रही थी कि डिरांग की हालत अधिक ख़राब हो रही है. डॉक्टर को बुलाया गया. दोनों की फुसफुसाहट से सुनायी दे रहा था कि उसे ज़्यादा समय के लिए वेंटिलेटर चाहिए वरना हम उसे बचा नहीं पाएंगे. हक़ीक़त तो यह थी कि इस बार-बार के परिवर्तन से किसी को भी फ़ायदा नहीं हो रहा था, रोज़ा और डिरांग दोनों ठीक होते-होते फिर सांस के मोहताज हो जाते. डॉक्टरों की पशोपेश समझ रही थी रोज़ा. अपने बिस्तर से वह डिरांग का चेहरा अच्छी तरह देख पा रही थी. बहुत मनमोहक नव युवक था. सिर के घने-काले बाल और हल्की-सी दाढ़ी. चेहरा कुम्हलाया होने के बावजूद आकर्षक व्यक्तित्व का धनी होने के सारे प्रमाण दे रहा था.

नर्स परेशान थी. इधर रोज़ा को राहत मिलती उधर डिरांग की बेचैनी बढ़ जाती. उसकी व्याकुलता रोज़ा को बहुत परेशान कर रही थी. दोनों की उम्र का बड़ा अंतर था. एकाएक उसे ख़्याल आया कि — 'मैं तो वैसे ही छियासी पार करने वाली हूं, न कोई आगे, न पीछे. और जीकर करना भी क्या है मगर इस लड़के के सामने तो पूरी उम्र पड़ी हुई है.' पास से निकलने वाले एक डॉक्टर से उसने कहा — 'सर, सुनिए, एक निवेदन है.'

'मिस रोज़ा हम समझते हैं आपकी तकलीफ़, जितना कर सकते हैं उतना कर रहे हैं.' उसे लगा कि शायद शिकायत के स्वर हैं ये.

'जी वही तो मैं भी कह रही हूं. मुझे वेंटिलेटर की ज़रूरत अब नहीं है. '

'क्या मतलब?' वह एकाएक पलटा. चश्मे से बाहर आती आंखों ने न समझने का संकेत दिया.

'मैं ठीक हूं. डिरांग को अधिक ज़रूरत है वेंटिलेटर की.'

'मिस रोज़ा, आप क्या कह रही हैं!'

'जी, मैं यही चाहती हूं कि मुझे वेंटिलेटर लगाने के बजाय आप उसे ही लगा रहने दें. देखो, मैं तो वैसे भी अपनी उम्र से ज़्यादा जी चुकी हूं.'

डॉक्टर रोज़ा के चेहरे को पढ़ने की कोशिश कर रहा था.

उसे दुविधा में देख रोज़ा अपनी हकलाती आवाज़ पर जोर देकर कहने लगी – 'मुझे इतना-सा कर्तव्य पूरा करने दें, उस नौजवान बच्चे को बचाने दें.'

हतप्रभ-सा डॉक्टर डिरांग को देखने लगा. उसके लिए दोनों की चिंता बराबर थी. उम्र, रंग, धर्म, जाति का भेदभाव किये बगैर जीवन रक्षा करना उन सबकी ड्यूटी थी. लेकिन रोज़ा के प्यार भरे, इंसानियत के आग्रह को स्वीकार करने में उसे कोई झिझक भी नहीं थी.

युवक की तबीयत बिगड़ती जा रही थी.

'जल्दी कीजिए उसकी जान बचाइए.'

न पेपर था, न हस्ताक्षर, न नौकरी की चिंता, अगर कोई चिंता थी तो वह थी एक जीवन बचाने की. बग़ैर किसी देरी के रोज़ा का समय भी डिरांग को दे दिया गया. एक ऐसा काम जिसके बारे में वह स्टीव को ज़रूर बताती, ख़ैर, ऊपर जाकर बता देगी. वह भी ख़ुश होकर कहेगा – 'रोज़, तुम सचमुच रोज़ हो, जीवन की ख़ुशबू फैलाती हो.'

यह सुनकर निश्चित रूप से रोज़ा के गाल लाल हो जायेंगे.

एक घंटे का समय बीत चुका था. आधी जगी, आधी सोयी वह स्टीव से बातें कर रही थी. डिरांग की आंखें धीरे-धीरे खुलने लगी थीं, रोज़ा की बंद होने लगी थीं. किंतु उसके होठों पर मुस्कान थी क्योंकि सामने स्टीव खड़ा था, उसका हाथ पकड़ने के लिए. जीवन का लेन-देन हो गया था. मौत ने आमंत्रण स्वीकार कर लिया था. ऊपर वाली छत धुंधलाने लगी थी. पल भर में लिया गया फ़ैसला सुकून की मौत दे गया था.

अपनी मृत्यु वरण करने का सुख हर किसी को नहीं मिलता, रोज़ा को मिला था, काठ की हांडी स्वयं चूल्हे पर चढ़ गयी थी ताकि आग बरकरार रहे.

1512-17 Anndale Drive,
North York, Toronto,
ON-M2N2W7
Canada 001+647 213 1817
hansadeep8@gmail.com

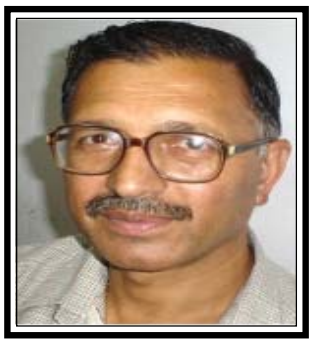

टेलीफ़ोन

बद्री सिंह भाटिया

४ जुलाई, १९४७ को सोलन जिले की अर्की तहसील के गांव ग्याणा में.
शिक्षा : स्नातकोत्तर (हिंदी) तथा लोक संपर्क एवं विज्ञापन कला में डिप्लोमा.

: लेखन :

बारह कहानी संग्रह, तीन उपन्यास, एक कविता संग्रह, एक कहानी संग्रह सहयोगी संपादन में भी. इसके इलावा अनेक संपादित संग्रहों में कहानियां संकलित तथा देश की अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित, कुछ कहानियां अनूदित भी. निजी एवं सरकारी पत्रिकाओं का संपादन. कुछ अंग्रेज़ी के नाटकों का अनुवाद एवं कठोपनिषद का नाट्य रूपांतर.

: सम्मान :

कुछ सरकारी एवं निजी संस्थाओं से साहित्य पुरस्कार.

: अन्य :

कर्मचारी यूनियनों और ग्रामीण विकास संस्थाओं के साथ साहित्यक संस्थाओं में सक्रिय भागीदारी. कुछ समय के लिए एक राजनीतिक पार्टी से भी जुड़ाव.

: संप्रति :

हि. प्र. सूचना एवं जन संपर्क विभाग, शिमला से संपादक पद पर से फरवरी, २००५ में सेवा निवृत.

चंद्रा उस दिन भी लेट पहुंची. वार्ड में प्रवेश करते ही सीनियर स्टूडेंट ने कहा — 'आह! आ गयी सिस्टर. मेरा तो दम घुटा जा रहा था. वर्मानी सिस्टर तो यह वार्ड छोड़ गयी मानो कहीं आग लगी हो और वह फ़ायर ब्रिगेड की इंचार्ज़ हो.'

'क्यों, क्या हुआ?' चंद्रा ने पूछा.

'सिस्टर, केज़ुअल्टी में दो केस आये हैं. एक हैड इंज़री का है, दूसरा आब्स्ट्रक्शन का. डॉक्टर शर्मा कह गये हैं बेड खाली करो. मैं अकेली, क्या करती? ज़ूनियर अभी आयी नहीं. फिर सिस्टर, उन्हें हम कह भी तो नहीं सकते. इतने सीरियस... भगवान सर्ज़िकल वार्ड में ड्यूटी न लगवाए, तौबा... शाम से इतना टेन्शन है कि पूछो न. चाय तक नसीब नहीं हुई...'

'कब आये ये केस? तुम अपना ही बड़बड़ाये जा रही हो. अभी तुम्हारे छः महीने बाक़ी हैं और छः मिडवाइफ़री के. पता नहीं कैसे नर्स बनोगी तुम...'

'सात बजे.' जरा सहमकर बोली वह. फिर बुदबुदाई, 'सिस्टर चिढ़ती है. फिजूल. पता चलता जो मेरी तरह करना पड़ता. ख़ुद तो सारी बड़ी सिस्टर्स आराम करती रहती हैं और मुझे... रज़िस्टर भरो, डाइट भरो, ड्रिप लगाओ, ड्रेसिंग चेंज़ करो...ये फ़ीमेल वार्ड भी साला...'

'तब तो सिस्टर वर्मानी को कर लेना चाहिए था.' चंद्रा ने कहा.

'पता नहीं, डॉक्टर को कहा कि आठ बजे की शिफ़्ट करेगी, तब तक आप थिएटर का करो...'

'हूं, जानती हूं, क्यों नहीं किया. मैं होती तो शायद मैं भी ऐसा ही करती. अपनी शिफ़्ट ख़त्म हो रही हो और इमरज़ेंसी आ जाये, न बाबा न. लग गया घंटा, डेढ़ तो यूं ही. फिर आगे बस छूट गयी तो कबाड़ा... पंद्रह मिनट रात को इंतज़ार करो. कहीं कोई शराबी तंग करे तो अलग तकलीफ़... पहाड़ में नर्स की नौकरी... पर क्या किया जाये? काश! एडमिनिस्ट्रेशन

समझ पाता इस परेशानी को या यूनियन कर पाती कुछ. अहाते में ही सबको मकान मिल जाते तो फिर ड्यूटी का जोख़िम न रहता.'

वह उठी और रज़िस्टर खोल मरीज़ों की जानकारी लेने लगी. स्टूडेंट नर्स से 'ओवर' के बारे में पूछा. किसी भी यूनिट में कोई भी बेड खाली नहीं. अब क्या किया जाये? कितने सीरियस हैं, कितने ऑपरेटेड, नॉर्मल केस कौन-कौन हैं? वह यह जानने वार्ड में तीन कतारों में लगे बिस्तरों की जानकारी लेती तेज़ी से आगे बढ़ी. लिथोटमी के दो केस लगभग ठीक थे — पर इन्हें रात को छुट्टी नहीं दी जा सकती थी — बेचारी दूर-दराज गांव की है. कोई अभिभावक भी लेने नहीं आया — फिर... एक ही चारा है. इनको डबल कर दो. क्या हुआ अलग-अलग यूनिट की हैं. सुबह देखा जाएगा. कोलिस्टिक्टमी वाली को केज़ुअल्टी भेज देती हूं. और बेड नंबर एक की ऑपरेटेड को लिथोटमी के बेड पर — बस हो गया प्रबंध.

वह अभी कह ही रही थी कि डॉक्टर शर्मा आ गये. तमतमाया-सा चेहरा. 'मुआ ये हमेशा गर्म ही रहता है.' वह अपने आप से ही बोली. 'सिस्टर! एक तीख़ी आवाज़, 'आप आज भी लेट आयीं! नीचे दो केस हैं. दोनों आब्ज़र्वेशन पर रखने हैं. वार्ड बॉय को भेजो. स्ट्रेचर..'

'डॉक्टर, वार्ड बॉय नहीं है. आप केज़ुअल्टी से भेज दो... और मेरे पास एक आया है. स्वीपर भी नहीं आया...'

'ओफ़्फ! यह अस्पताल है कि 'खचड़खाना'... यहां कुछ भी ढंग का नहीं है, जिसको पूछो वह नहीं है. कैसे चलेगा?' वे ड्यूटी रूम में चले गये बड़बड़ाते. सिस्टर चंद्रा भी पीछे-पीछे चली गयी. वह अपना वार करना चाहती थी. यह अच्छा मौक़ा था सिस्टर वर्मानी को नीचा दिखाने का. मैट्रन की भी शिकायत हो सकती है.

'डॉक्टर, ३६ मरीज़ हैं यहां पर. रात को मैं अकेली. एक सीनियर स्टूडेंट दी है मैट्रन ने. वो भी नौ बजे चली जायेगी. कल उसका टेस्ट है. वर्मानी के साथ तीन लड़कियां और एक सहायक होती हैं. ये केस सात बजे के आये हैं... आप ही बताइए, वह देख सकती थी न. मैं...'

'सिस्टर! पहले पेशेन्ट को मैनेज़ करो. ये बातें हम बाद में भी कर सकते हैं.' डॉक्टर शर्मा ने चिढ़ कर कहा. चंद्रा बाहर आ गयी. उसने केज़ुअल्टी में आया भेजी कि पेशेंट्स को वहां के वार्ड बॉय ले आये. स्वयं बेड खाली करने लगी. एक ओर डॉ. शर्मा पर कुढ़न, दूसरी ओर सिस्टर वर्मानी पर. साली बड़ी चालू बनती है. अपने देर से आने का दुःख हुआ. समय पर आ जाती तो, साली को ये सुनाती जो...कामचोर! पर क्या करे वह भी. समय पर आ ही नहीं सकी. साढ़े सात तक पति का इंतज़ार करती रही. अभी आते हैं, अभी आते हैं. पर... छोटी गोद से उतरने का नाम ही नहीं ले रही थी. बड़ा लड़का पढ़ तो रहा था मगर ध्यान उसकी ओर था. आया किचन में खाना बना रही थी.

ये तो शुक्र करो कि घर अस्पताल से आधे घंटे की दूरी पर है. यहां से बस भी आसानी से मिल जाती है, वर्ना कहीं दूर होता तो वर्मानी की तरह हालत होती.

एक बार वह सोचने लगी, नाइटिंगेल की वंशज मानी जाती हैं हम लोग. वह शादी-शुदा नहीं थी. तभी सेवा भावना की प्रतीक रही वर्ना... अस्पताल का प्रत्येक मरीज, मरीज क्या प्रत्येक व्यक्ति, आगंतुक, डॉक्टर, स्टूडेंट... सब उसे ऐसा मानते हैं कि नर्स सहनशीलता की एक दीवार है. उसे विनम्र होकर सबका दुखड़ा, सबकी बातें, आदेश सुनने चाहिए और हंसकर उनका निवारण, क्रियान्वयन करना चाहिए. पर उसके लिए यह निर्वाह कठिन प्रतीत हो रहा है. पति दफ़्तर से आते ही अपना आदेश ठोकेंगे, 'चंद्रा, भई थक गया हूं. आज बस ही नहीं मिली... बस में एक से ख़ामख्वाह टक्कर हो गयी... मूड ऑफ़ हो गया... जाने से पहले एक ख़ूबसूरत चाय का प्याला...इलायची वाला...' दिन की ड्यूटी हो तब तो ठीक है — दो बजे ऑफ़ हुए. शाम को सुन लो उनकी फ़रमाइश और कर दी पूरी. पर यह तब बुरी लगती है, जब वे कहते हैं, 'अरे पांच मिनट लेट चले जाना, चाय तो तुम्हारे हाथ की ही...नहीं, आया की नहीं... अरे! आया की नहीं...अरे! सब चलता है.' उसके प्रतिवाद कहीं नहीं ठहरते.

वह कहना चाहती है. यह अस्पताल की नौकरी है. यहां ज़िंदगी और मौत के बीच संघर्ष चलता रहता है. नर्स दोनों के बीच एक ऐसी कड़ी है जो उसकी जरा-सी लापरवाही मौत की जीत का कारण बन सकती है, पर कह नहीं पाती. वह जानती है. पति को ख़ुश रखना है. मां ने ये ही तो संस्कार भरे हैं उसमें. औरत का पति व बच्चों के अलावा भी संसार होता है. मां ने पता नहीं बताया भी कि नहीं... उसे याद नहीं या हो सकता है उसने इस पाठ को भुला ही दिया हो... पर फिर भी उसे जितना याद है कि घर को संतुलित

लघुकथा

ग़रीब की मां

✍ डॉ. रामनिवास 'मानव'

हुआ वही, जिसका उसे अंदेशा था. घर की देहरी पर पैर रखते ही, बीमार मां का खनखनाता प्रश्न, उल्का पिंड-सा, उसके कानों से टकराया — ''म्हांकी दबाई ल्यायो बेट्टा.''

उसने मां के चेहरे की झुर्रियों में उभर आयी क्षणिक आशा की झलक देखी और फिर उसे अचानक ख़ांसी में तबदील होते हुए भी देखा. मां का चेहरा काला पड़ने लगा. लगा, जैसे उसकी सांस निकली, अब निकली.

मां की हालत देखकर वह घबरा गया. मां दमे की मरीज़ है. रोज़ दवा लाने के लिए कहती है. वह रोज़ ही, कोई-न-कोई बहाना बनाकर, दवाई न लाने की बात कह दिया करता था. लेकिन, मां की हालत देखकर, उसे झूठ बोलना पड़ा — 'हां, ल्यायो हूं मां! इबी ल्यायो.'

घर के अंदर घुसते हुए उसे अपनी फ़ैक्टी के मालिक पर बड़ा ग़ुस्सा आ रहा था. कितना गिड़गिड़ाया था वह, बीस रुपये 'एडवान्स' लेने के लिए, लेकिन उसने एक न दिया. मां की बीमारी की दुहाई से भी उस बेरहम का दिल नहीं पसीजा.

एक आले में रखी, कुछ पुरानी शीशियों को, उसने टटोला. हिलाकर देखने पर पता चला कि एक शीशी में कुछ दवा है. उसने, बिना सोचे-समझे, वह दवा मां के हलक के नीचे उतार दी.

दवा अंदर जाते ही, मां का खोखला शरीर, झनझना उठा. ज़ोर की खांसी के साथ से कै और दस्त भी आने गये. हिचकियां बंध गयी तथा आंखें बाहर निकल आयी. थोड़ी ही देर में मां का चेहरा पीला पड़ गया.

'अरे या किसी दबाई ल्यायो हरिया?' मां का प्रश्न था.

'मैं वा डाक्दर से ख़ून पी जाऊं लो मां. वा कमीना नै गलित दबाई दे दी. स्यात ग़रीबां री, मां, मां नाही होवै ली.' पुनः झूठ बोलकर अपराध बोध से मुक्ति पाने का प्रयास करते हुए वह कहता है.

✆ ५७१, सेक्टर-१, पार्ट-२, नारनौल-१२३००१ (हरि.). मो. : ८०५३५४५६३२.

रखने के लिए ख़ामख़्वाह की टकराहट से बचना चाहिए. पांच मिनट लेट के लिए सिस्टर से माफ़ी मांग लेगी. तब पांच के दस मिनट हो ही जाते हैं.

समस्या और कोई न थीं. ओवर मिलकर ही लेना होता था. इसलिए देरी से साथी चिढ़ती, कुछ बोल भी देती कभी. रोज़-रोज़ की देरी के लिए. 'भई पंद्रह मिनट पहले आया करो ताकि वार्ड का सब कुछ समझाया जा सके. तुम अपने बारे में देखो. तुम भी तो ऐसा ही चाहती हो. और हम...' वह चुप सुनती. फिर उसने इसका समाधान ढूंढ़ निकाला. वह अपने से पहले वाली सिस्टर को कह जाती थी या स्टूडेंट को कि वह ऑफ़ कर ले. 'ओवर' वह ले लिया करेगी. यानी लिया समझ लिया गया.

पर, आज तो वो आये ही नहीं. बड़ी मुश्किल से छोटी को आया को थमा आयी हूं. बेटे ने कहा है कि पड़ोसी के घर फ़ोन कर देना. बात हो जायेगी. और पापा का भी पता चल जायेगा. वह प्रायः केज़ुअल्टी से फ़ोन कर लेती. पर आज... क्या कर पाएगी वह. अभी हैड इंज़री का केस, फिर साथ ही आब्स्ट्रक्शन का. दोनों की आब्ज़र्वेशन... ड्रिप लगाओ, वोमिटिंग देखो, पेट दर्द का इंज़ेक्शन लगाओ. कहीं ज़्यादा कुछ हो गया तो थिएटर की तैयारी... और कहीं रात को कोई केस और आ गया तो बस हो गयी रात की ड्यूटी, दौड़ते रहो इधर से उधर... फिरकनी की तरह. पर टेलीफ़ोन तो करना ही है, समय निकालकर.

इस डॉक्टर शर्मा की किस्मत ठीक नहीं है. मुआ जब भी ड्यूटी पर होता है, सारी रात टेन्शन में बीतती है. कुछ नहीं होगा तो एक-दो ऑपरेशन ही रख देगा... पता नहीं मेरे साथ इसकी क्या दुश्मनी है या इसका स्वभाव ही ऐसा है. वह सोचती ही रहती कि एक व्यक्ति रूम में आया. बेड नंबर २४ की मरीज का लड़का. 'हैलो सिस्टर!'

'हैलो!' उसने हताश स्वर में कहा.

'क्या बात है, परेशान लग रही हो?'

'हां, पर ऐसा नहीं. आप बताओ कैसी हैं आपकी

माताजी? मैं तो देख ही नहीं पायी आज...दो केस...'

'हां, मुझे मालूम है. मां ठीक हैं. परसों ऑपरेशन है. स्टोन बहुत बड़ा है. मैं ख़ून दे आया आज. अब देखते हैं डॉक्टर प्रकाश क्या करते हैं. बूढ़ी हैं, क्या पता? इन्हें रिएक्शन भी होते हैं दवा के... आई. वी. पी. वाले दिन तो बेहोश ही हो गयी थीं, पर डॉक्टर शर्मा संभाल ले गये.'

'अरे! सब ठीक हो जाएगा. बैठो.'

'बैठूंगा, मैंने चाय मंगवाई है.'

'चाय! आज तो... अभी आने वाले हैं केस... फिर देखना मेरी कैसी परेड होती है. सुना है एक बुढ़िया है. घर में सीढ़ियों से गिर गयी. रिटायर्ड ऑफ़िसर है... इधर कोई नहीं है उसका. एक आया है बस. ये तो पड़ोसियों ने पहुंचा दिया वर्ना हो गयी थी...पर अभी भी क्या पता है?'

'पर इसे तो स्पेशल वार्ड में...'

'जगह नहीं है. ये तो ज़रनल वार्ड है भई. ठूंस दो जिसे मर्जी, कर दो मरीजों को डबल या सुला दो ज़मीन पर... इमरज़ेंसी को मना नहीं कर सकते.'

'आप ख़फ़ा हैं?' वह बोला.

'नहीं, ऐसी बात नहीं. एक सच्चाई है. छत्तीस मरीज हैं इस वार्ड में और मैं अकेली. मैनेज़मेंट भरता ही नहीं स्टाफ़. रूल्स में एक नर्स के पास केवल चार-पांच बिस्तर होने चाहिए. तभी मिल सकता है बेहतर ट्रीटमेंट. मैं तो कहती हूं कि नर्स की शादी भी नहीं होनी चाहिए. घर के झंझटों के बाद यहां...ओफ्फ़!'

'हां! सिस्टर, यह तो है, पर हम लोग जिस वातावरण में पले हैं, जहां हमें संस्कार पड़े हैं, फिर हमारी आर्थिक स्थितियां. आप जानती हैं मध्य वर्ग के लिए नौकरी अब अनिवार्य हो गयी है. उसकी स्थिति ऐसी है कि न ऊपर जुड़ कर रह सकती है न नीचे. बस पीसी जा रही है.'

'पर क्या किया जा सकता है!'

'संघर्ष. यही आता है हमारे हिस्से में...' बाहर खड़-खड़ की आवाज़ हुई. 'लो सिस्टर, आ गया आपको काम... आप कहो तो मैं मदद करूं आपकी? काफ़ी सीख गया हूं यहां. दस बजे तक तो आप लोग रहने ही देते हैं हमें. तब तक हेल्प ही सही.'

'हां, सो तो है, पर हम भी क्या करें. स्टाफ़ की कमी से पेशेन्ट के अटैंडेंट की मदद लेनी ही पड़ती है. और सच मानो तो आजकल स्टाफ़ भी काम नहीं करता, जरा-सा बोल दो यूनियन की धमकी... यूनियन कहां सुधार के लिए होती थी, आज ये अखाड़ा है गुटों का... कोई किसी को कुछ नहीं कह सकता...चलो.'

वह उठ गयी. मरीजा के बिस्तर तक आ गयी थी. उसे स्ट्रेचर से शिफ़्ट करने लगी. मरीजा की हालत देख उसने सोचा अब वह घर पर फ़ोन नहीं कर सकेगी.

मरीजा को बिस्तर पर लिटाकर वह डॉक्टर शर्मा की हिदायतों की अनुपालना ही कर रही थी कि उसकी नज़र वार्ड का दरवाज़ा लांघती मैट्रन पर पड़ी. साथ में शिखा भी थी. उसका मन खट्टा हो गया — 'आज सुबह किसका मुंह देखा होगा?' वह बुदबुदाई. मैट्रन रात्रि राउंड पर! ज़रूर किसी ने शिकायत की होगी. अपनी चमची शिखा के साथ आ गयी. पूछेगी — 'चंद्रा जी, आज भी देर से... भाई ये अस्पताल है... जरा अपने मियां जी को कहो कि जल्दी आया करें... भई स्कूटर ले लो तुम...'

'साली सुझाव देने वाली...हमारी मर्जी...' पर अफ़सर है, सुनना पड़ेगा. अफ़सर तो काठ का भी बुरा. कहेगा नहीं तो डराएगा ज़रूर. अहसास कराता रहेगा, बार-बार, कुटिल मुस्कान से...

'हैलो, चंद्रा! क्या है ख़ास...?' पास आकर सामान्य रिपोर्ट ली मैट्रन ने.

'गुड इवनिंग सिस्टर... एक हैड इंज़री, एक आब्स्ट्रक्शन है अभी. रात को क्या हो, नहीं जानती...'

'ज़रूर शर्मा की ड्यूटी होगी.' मैट्रन व्यंग्य से बोली.

'हूं.'

'इसकी किस्मत ही ऐसी है. और... तब तो दो आपरेशन भी रखेगा. रात भर जागना जो है.'

'अभी तो ऐसा कुछ नहीं. दोनों केस आब्ज़र्वेशन पर ही होंगे.'

'कर रहा होगा प्रबंध. इसका स्वभाव ही ऐसा है. थियेटर मिलना चाहिए बस. ज़ूनियर सीनियर का काम कर लेगा.'

'पर सिस्टर, क्वालीफ़ाइड है. इसे पोस्ट नहीं मिली शायद इसलिए.' काम करते चंद्रा ने कहा. एक मत यह भी कि एक ताज़ा क्वालीफ़ाइड को जब किसी के नीचे काम करना पड़ता है तो फ्रस्ट्रेंशन तो होगा ही.

'चंद्रा, सुना तुम आज भी लेट...' मैट्रन ने आगे बढ़ते कहा.

'हां, सिस्टर, वो बस नहीं मिली.' सरासर झूठ बोल गयी वह.

'मीरा तो आ गयी थी. कह रही थी साढ़े सात बजे की

बस उसने पांच मिनट रुकवाई भी थी.' मैट्रन ने अपनी रिपोर्ट के आधार पर उसका झूठ स्पष्ट किया.

'सिस्टर, वो बस तो छूट गयी थी.' अपराध बोध से तथा मन में ग़ुस्से से बोली वह. साली मैट्रन जाने मेरे पीछे क्यों पड़ी है, बेईमान. हां! मैं चमचागिरी जो नहीं करती. क्या नौकरी हो गयी आज. जो मुंह लगे, मौज करे, बाक़ी के गले पर कटार हमेशा तैयार. पर किस-किस के मुंह लगे मैट्रन, सुपरिन्टेंडेंट, हैड ऑफ़ सर्ज़री... डॉक्टर...फिर कई तो, साले उंगली पकड़ते ही पहुंचा पकड़ने लगते हैं. और न करो तो फिर कहते हैं सिस्टर का बर्ताव कडुवा है. यह मरीजों से भी ठीक नहीं बोलती. भई इतने दबावों के बाद क्या आदमी रह सकता है नार्मल?

'सिस्टर चंद्रा, इम्प्रूव करो अपने को.' मैट्रन ने कहा और पीछे हट गयी दूसरे वार्ड की ओर. चंद्रा को लगा. वह सामान्य राउंड पर नहीं, केवल उसके लिए ही आयी थी. डॉउन करने. इम्प्रूव करने को कहना, उसका 'सी. आर.' में ऐन्ट्री का इरादा लगता है — सो कर ले...क्या करना? ये साला जीवन ही ऐसा है, अपने हिस्से बस संघर्ष ही आया. फिर पति पर भी ग़ुस्सा. काश! वह समय पर आ जाते तो बच्चे को उसे थमा जल्दी आ जाती. उसके मन में पति के लिए एक भद्दी गाली निकली.

चंद्रा जरा 'फ्री' हुई तो अपने कमरे में आ गयी. ज़ूनियर स्टूडेंट अभी भी आयी नही थी. सीनियर अपने हाथ धोकर कमरे में आयी. 'सिस्टर, दस बज गये. जाऊं मैं?'

'हां! यार! आई एम सॉरी, तुम्हें रोक लिया.'

इतने में वेड नंबर चौबीस का अटेंडेंट आया. स्टूल लेकर बैठ गया. 'सिस्टर, चलता हूं. मां सो तो गयी है, पर रात को इसे तकलीफ़ होती है, आप गोली दे देना. यूं मैं जानता हूं कि आज आपको काम ज़्यादा है. सुना है केज़ुल्टी में एक 'बर्न' केस भी आया है. रियली सिस्टर, आप लोग तो...अच्छा चलता हूं. मैं रुक सकता था, मगर यहां के रूल्स...क्या करें.' और वह बाहर निकल गया.

'अच्छा भाई, हमें तो अभी खटना है रात-भर. सुबह आठ बजे तक. 'चंद्रा ने ट्रीटमेंट रज़िस्टर खोलकर कहा, 'लो! वर्मानी समरी भी नहीं बना गयी है... भई, ये अस्पताल तो जाने कैसे चल रहा है?'

वह उठी, ट्रे निकाली और दवाइयां लगाने लगी. बारह बजे वाली अलग, दो बजे वाली अलग. वार्ड में बत्ती जल रही थी, उसने आया से कहा बत्ती बुझा दे. दवा की ट्रे तैयार कर वह अपनी मेज़ के पास आयी. इतने में राधाकृष्ण इंटर्न आ गया. 'सिस्टर, डॉक्टर शर्मा ने कहा कि क्या आज चाय नहीं पिलायेंगी?'

'क्यों नहीं, आध घंटे में आ जाना.' वह उठी और साथ वाले कमरे में चाय का पानी रखने चल दी. कमरा खोलते उसके कानों में बीस नंबर बेड से कराहट की आवाज़ आयी. 'बेड सोर' की मरीज. ...क्या ज़िंदगी है इसकी भी? एक करवट पर ज़िंदगी की एक और सांझ का इंतज़ार. सांझ का नहीं मौत का, उसने अपनी सोच को दुरुस्त किया. कल सुबह की ड्यूटी में डॉक्टर सूद ने उसे डांट दी थी, इस मरीज के बेड को लेकर. 'सिस्टर, इट इज़ स्मेलिंग बैडली?'

डॉक्टर सूद के साथ रॉउंड कराना बड़ा कठिन होता है. एक-एक मरीज का बिस्तर उठा-उठाकर, चादर के स्पॉट्स देखकर, केथेटर, ट्यूब ड्रिप देखकर जो डांट पिलाता है, सारी इज़्ज़त मिट्टी हो जाती है. ग़लत डॉक्टर बना ये, इसे तो कहीं पुलिस में या फिर आडिट के ऑफ़िस में होना चाहिए था. 'ऑब्ज़ेक्शन बॉक्स', घोंचू.

अभी देखती हूं इसको. वह भीतर न जाकर आगे बढ़ी. मरीजा को देखा. उसके पास उसकी लड़की अटेंडेन्ट थी. उसे जगाया, दोनों ने उसकी करवट बदली. गीला हुआ रुई का पैड हटाया और हाथ धोने की ओर बढ़ी.

बीस नंबर की ओर बढ़ते एक मधुर आवाज़ उसके कानों में पड़ी — 'दीदी, बहुत थक गयी हैं आप! आओ जरा इधर...'

'अरे! रीना, तुम!' चंद्रा ने कहा. रीना तेरह-चौदह बरस की लड़की. पिछले दो सालों से यहां है. फेफड़े में एब्सेस है. रीढ़ की हड्डी भी ठीक नहीं. डॉक्टर कहते हैं — इसके जीवन के साथ रिस्क है. रीना यद्यपि रोग से लाचार है मगर हंसमुख. अभी उठेगी, चलने लगेगी. वार्ड में मरीजों की देखभाल करेगी. ड्रिप लगाना सीख लिया है. सुबह ट्रेनीज़ के साथ बेड बनाती है. फिर दिन में नर्सिस ड्यूटी रूम में आकर कोई चुटकुला सुनायेगी. हंसेगी, सबको हंसाएगी. सबका दुःख पूछेगी — उसमें भाग लेगी.

तीन-चार दिन से तकलीफ़ है इसे. तभी अभी भी जाग रही है.

'रीना, कैसी हो तुम? भई हम रैगुलर मरीज के बारे में तो पूछते ही नहीं.'

'आज कुछ ठीक हूं, उठा नहीं जा रहा. आज घर से

भी कोई नहीं आया.'

चंद्रा ने मन ही मन कहा — लोग लंबी बीमारी से कितना उकता जाते हैं. बच्ची के माता-पिता को तो चाहिए था कि ख़ुद न आते, किसी को भेज देते...क्या सोचती होगी यह...ये दुनिया भी. उसने घड़ी देखी, घर पर टेलीफ़ोन का समय टल गया था. मन ही मन क्षुब्ध हुई. क्या जीवन है. रीना का हाथ छुआ उसने...अभी आती हूं कहकर आगे बढ़ गयी.

और वह भूल गयी कि उसे चाय भी बनानी है. सिंक पर हाथ धोए और रीना के बेड के पास आयी. एक ओर उसके बालों में उंगलियां फेरने लगी. उसने इधर-उधर देखा, कहीं आया नहीं दीख रही थी. फिर रीना की बातों में रस लेने लगी. रीना फुसफुसाहट में बतियाती रही... फिर आराम मिलने पर सो गयी.

चंद्रा उठी. ऐसा नहीं कि वार्ड में हर मरीज से नर्स के व्यवहार में तिक्तता होती है, चिढ़ होती है. सोचा उसने. उसके अपने पारिवारिक दबावों के बीच भी कई मरीज ऐसे होते हैं जिनसे नौकरी का सा नहीं, अपनत्व का, आत्मीयता का रिश्ता कायम हो जाता है.

इसी सोच में उसने चाय के लिए केतली में फिर पानी चढ़ाया. डॉक्टर शर्मा आने ही वाले होंगे. बुदबुदाई वह. कप में चीनी-दूध निकाले उसकी दृष्टि दीवार घड़ी पर गयी. अढ़ाई बज गये हैं. आज वह घर फ़ोन कर ही नहीं सकी. हज़ार चाहने पर भी. पता नहीं वे कब आये होंगे. कहीं पार्टी-वार्टी में.. बिटिया पता नहीं आया के पास सोयी होगी या नहीं. लड़का भी... आया कब गयी होगी अपने घर? लंबी उसांस भरी उसने. फिर पाउडर दूध में चीनी डाली और पानी मिलाकर चम्मच से हिलाने लगी.

बाहर स्ट्रेचर के पहियों की चर्र-चर्र, खट-खट की आवाज़ सुनी. झांका उसने बाहर. थिएटर का वार्ड बॉय उस ओर आ रहा था. भीतर आकर उसने कहा — 'सिस्टर, आब्स्ट्रक्शन के मरीज को भेजो, ग्लूकोस, ड्रिप...सब.' वह हंसी. मुए, ये जैसे हमें पता ही नहीं कि ऑपरेशन वाले मरीज के साथ क्या-क्या आता है. ...'पर डॉक्टर शर्मा तो यहां चाय के लिए आने वाले थे.'

'वो तो थियेटर में डॉक्टर डंगवाल के साथ पी रहे हैं. मुझे पेशेंट के लिए भेजा.'

'हूं! तो बता नहीं सकते थे कि नहीं पीनी चाय. यहां मैं... पता नहीं क्या समझता है... आया भी न जाने कहां चली गयी... पता नहीं कैसे चल रहा है यह अस्पताल. केयरलेस लोग.' क्षुब्ध-सी वह उठी और पेशेन्ट को स्ट्रेचर पर शिफ़्ट करने चल दी. बुदबुदाती — 'ऐसे कैसे हो सकता है कि डॉ. शर्मा की ड्यूटी हो और कोई ऑपरेशन न हो! वह तो सोचती थी कि फ़ीमेल वार्ड का नहीं होगा. मेल वार्ड से रखा होगा. पर... पर क्या पता. वहां का एक केस निपटा दिया हो और दूसरा इसे कर रहा होगा. ये डॉक्टर भी... अपनी काबिलियत दिखाना चाहता है कि... दो मरने हमें क्या? ये इनके डिपार्टमेंट का मामला है. वे जानें. हमें तो अपनी नौकरी करनी है.' सोचते उसने पेशेंट स्ट्रेचर पर शिफ़्ट कर दी.

पेशेंट शिफ़्ट हो जाने के बाद वह फिर ड्यूटी रूम में आ गयी. चाय का पानी खौल रहा था. उसने पानी कम करने के लिए केतली उठायी. फिर सोचकर किनारे रख दी. 'अकेले चाय का मजा नहीं आता...मेल यूनिट वन की रेखा को बुलाती हूं. आज उसका वार्ड हल्का होगा.' बाहर आयी वह और बढ़ गयी मेल यूनिट वन की ओर. कुछ देर बरामदे के आख़िरी छोर तक उसके सैंडिलों की टक-टक की आवाज़ आती रही. फिर सन्नाटा छा गया.

गांव ग्याणा, डाकखाना मांगू,
तहसील अर्की, जिला सोलन,
हि. प्र.-१७११०२
मो. : ९८०५१ ९९४२२

ग़ज़ल

आनंद बिल्थरे

यह भीड़, डरे हुए लोगों की भीड़ है,
यह भीड़, मरे हुए लोगों की भीड़ है।

रंगों में बहता है, सड़ता हुआ पानी,
यह भीड़, गिरे हुए लोगों की भीड़ है।

विद्रोह की ज़मीन पर कायरता की फ़सलें,
यह भीड़, हारे हुए लोगों की भीड़ है।

एक नर्क से दूसरे नर्क तक का सफ़र,
यह भीड़, सरफरे लोगों की भीड़ है।

चूहे के खोल में, बंद है आदमी,
यह मूड़ गये गुड़जरे लोगों की भीड़ है।

प्रेमनगर,
बालाघाट (म. प्र.)-४८१००१.

ख़बर की तलाश में

अनिता रश्मि

जन्म - २५ अप्रैल १९५८

विविध विधाओं में रचनाएं.

ज्ञानोदय के झारखंड विशेषांक सहित हंस के दलित विशेषांक, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्तमान साहित्य, जनसत्ता, वागर्थ आदि में कहानियां. कहानियों की चार पुस्तकें. एक साझा कहानी संकलन झारखंड कथा परिवेश (साहित्य अकादमी) में एक कहानी शामिल.

दो उपन्यास भी प्रकाशित.

: संप्रति :

स्वतंत्र लेखन.

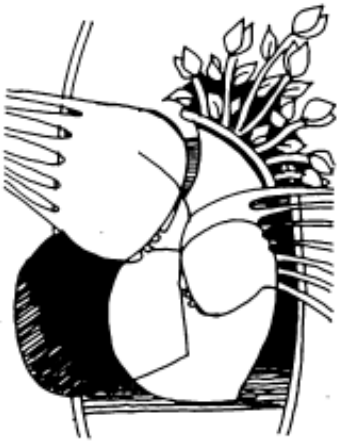

लगता है, इस बार भी मनमोहन प्रसाद, सनम सिंह और बिराज मेहता ही रिपोर्टिंग के लिए जायेंगे. इस तरह की वारदातों में.

मनमोहन और बिराज की रिपोर्टिंग का अनुभव रिपोर्टिंग की क़ीमत बढ़ा देता है. प्रायः वे दोनों साथ जाते हैं. आये दिन आनेवाली इस तरह की ख़बरों को कहानी की शक्ल देना उन्हें ख़ूब आता है, ख़ूब भाता है. इस बार सनम के हुनर लगन तथा शिक्षा की भी परख हो जायेगी. बड़े बाप के बेटे सनम सिंह ने अपने शौक़ के कारण मास कम्यूनिकेशन में दाख़िला लिया था और बिज़नेस से दूरी बना ली थी.

उस गांव के माथे पर पिछले कुछ सालों से पहले कई सामूहिक नरसंहारों का दाग विद्यमान था. आये दिन रात या दिन के उजाले में भी वे सब जंगल के अंधेरे से निकल गांव की मासूम छाती पर छा जाते. और उज्जवल धरा को लाल रंग से रंगकर ग़ायब हो जाते... गधों के सिर से सींग जैसे. फिर लाख सिर धुनते रहो, पकड़ में नहीं आते. जंगल-जंगल भटकने पर पुलिस कभी ख़ुद लाशों का ढेर बन लौटा करती. कभी धोखे से, कभी सहज रूप से पुलिस जीप, वैन को वन में बुला सुरंग में बम लगा उड़ा दिया जाता. वे इतने क्रूर और हिम्मती हो चुके थे कि आये दिन पुलिस के हताहत होने की ख़बरें लोगों में दहशत भर रही थीं.

जब ये लोग ही सुरक्षित नहीं, आम आदमी कैसे भयमुक्त रहे. — सब दबी ज़ुबान से कहते थे. खुलकर उन निशाचरों के नाम लेने, उनके बारे में बोलने से सब बचते थे. सबको लगता था, उनकी चर्चा करने पर वे बाद में भी सबक सिखा सकते हैं. गांववालों की तो शामत... आये दिन. कभी पंचायत बिठाकर किसी दोषी को छः इंच छोटा कर दिया जाता.

गला काटकर. कभी कुछ और सज़ा देते वे लोग. मुखबिरी करनेवालों की ख़ैर नहीं.

एक समांतर सरकार चल रही थी. उनके अपने नियम-क़ानून. गांवों

पर भी थोपते रहते. बहुत कोशिश, बहुत जानों की कुर्बानी देने पर भी वे वश में नहीं आ रहे थे.

फिर उठी उनके सफ़ाई की लहर. समूल नाश की तैयारी — संकल्प. कुछ और बलिदान... कुछ और नाकामी. लेकिन आजकल सुरक्षा एज़ेंसियों, पुलिस की मुस्तैदी तथा सरकार के लुभावने वादों के बल पर उनको समर्पण कराने के बाद बेहतर जीवन मुहैया कराने के कारण वारदातें कम हो रही थीं.

जंगल स्वच्छ हो रहा था. सब आस की डोंगी पर सवार! इधर ऐसी ख़बरों, ख़तरों से गांवों को निज़ात मिल गयी है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता पर काफ़ी बदलाव आया है. लोग बाग कह उठते — अब नक्सलवाद ख़त्म हो जाएगा.

ऐसे में यह समाचार आठवें आश्चर्य की तरह था.

इस साल की पहली घटना. फिर से अचानक उस 'बढ़ना' गांव की कोलतार पुती सड़क गाड़ियों की आवाजाही और लोगों के शोर से भर उठी थी. आगे जाकर पगडंडियां भी शोर से बचने का प्रयास करती नज़र आयीं.

सनम सिंह ने पगडंडी पर बढ़ते हुए पलटकर बिराज मेहता से कहा,

— कल रात में पुलिसकर्मी पहुंच गये हैं.

— सांप मर जाने पर लकीर पीटने से क्या होगा! अभी पूरी तरह निश्चिंत होने का समय नहीं आया था.

— पुलिस चौकी बना, दस-पंद्रह सिपाहियों को बिठा देने से क्या होगा? ना ढंग का हथियार, ना ढंग की गोली-बारूद, ना ही अच्छा वैन.

— हां जी, सब कामचलाऊ.

थोड़ा हांफते हुए सनम सिंह ने कहा. पक्की सड़क के बाद दूर खेतों के बीच की उबड़-खाबड़ पगडंड़ी पर पैदल चलना उनके लिए आसान नहीं था. गाहे-बगाहे पैदल चलनेवाले सनम सिंह को इस कंकरीली, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर पैदल चलना भारी लग रहा था.

बीच-बीच में खेतों में भी उतरना पड़ रहा था.

पगडंडियां पीले, हरे, नीले, लाल, सफ़ेद पोशाकधारी ग्रामीण लोगों के द्वारा रौंदी जाती रही थीं. आज वर्दीधारियों के रंग से सराबोर थीं.

— खेतों के बाद थोड़ा छिछला जंगल, फिर नाला, तब बढ़ना गांव आयेगा. नाले को डूबकर पार करना पड़ेगा. बिराज मेहता ने कहा.

— का जी, अभी ही थक गये?

उसने सनम को हांफते देखकर पूछा.

— नहीं. दादा, थकेंगे तो आगे कैसे बढ़ेंगे!

तीनों तेज़ क़दमों से आगे बढ़ते गये. नाले में बालू से भरी बोरियां डाल रास्ता बनाया गया था. वे लोग भी उससे ही पार हुए. बहुत देर की चुप्पी न सनम सिंह को बर्दाश्त हुई, न बिराज को. जुगाली करने में हर्ज़ भी क्या था!

— एक बात पूछनी चाहिए उनसे.

— क्या?

— आख़िर क्या मिलता है, इन्हें निर्दोष लोगों को मारकर.

— शक्ति-प्रदर्शन, मनमोहन बोल पड़ा.

— अपनी शक्ति दिखाने का यह तरीक़ा ठीक है? केवल ज़ेन्टस को मारते, बात समझ में आती. बच्चे, बूढ़े, लेडीज़ की हत्या कर क्या बहादुरी दिखाते हैं सब?

थोड़ी तल्ख़ी के साथ सनम ने कहा.

— पहले ऊंच-नीच जाति के नाम पर दबंग लोग नरसंहार को अंजाम देते रहते थे... कितने सालों तक उनके अत्याचारों को सहता रहा समाज... और अब ये लोग! नफ़रत कभी ख़त्म नहीं होगी.

सनम का ग़ुस्सा शांत नहीं हो रहा था.

गांव का सन्नाटा पास आ गया. सब चुपचाप पगडंडी पर दूरियां नापने लगे. आज ही रिपोर्ट तैयार कर भेजनी थी. सबके पांवों में तेज़ी आ गयी. उन पगडंडियों पर बढ़ते अनगिनत पैरों में वह तेज़ी देखी जा सकती थी.

सभी जानने, समझने, देखने को उत्सुक थे कि आख़िर हुआ क्या, कैसे? धूप में तीखापन आने लगा था. तीखी-मीठी बातों, अटकलों के बीच इसी तीखी धूप में वे अंततः पहुंच गये उस जगह, जहां लाशें पड़ी थीं ...लाइन से. किसी को छूना मना था. आवश्यक कार्यवाही के बाद पुलिसकर्मी अन्य लाशों को उठाकर एक पंक्ति में रख ही रहे थे.

कुछ शव चौपाल के पास भी रखे हुए थे. नंगी-अधनंगी लाशों को कफ़न से ढंकने का ज़िम्मा पुलिस ने ले लिया था. झोपड़ियों, कच्चे-पक्के मकानों से चादर, धोती, साड़ी लाकर कफ़न ओढ़ाया जा रहा था. बेज़ान ज़ज़्बातों के साथ घर के लोग शून्य में निहार रहे थे. लगातार रूदन के बाद पसरी ख़ामोशी.

कभी-कभी रूदन, विलाप चरम पर जा पहुंचता, सारा गांव हिल जाता. कभी मातमी, मरघटी सन्नाटा!

कोई घर ऐसा नहीं बचा था, जिसका कोई मरा न हो. सनम, बिराज दोनों अपने काम में लग चुके थे.

बिराज तस्वीरें खींचे जा रहा था, सनम टेपरिकॉर्डर और क़लम संभाल चुका था.

— हे भगवाऽऽऽन !

एक चीत्कार हवा में तैर उठा. एक सत्तर-बहत्तर साल की वृद्धा दोहत्थड़ मारते हुए रो पड़ी थी. परिवार में सात सदस्य थे. अब केवल वह बची थी. उम्र की अशक्त मार से आक्रांत! साथ ही कई फटी आवाज़ें, चीख़ें हवा में घुल गयीं. सिसकियां फिर से उभर आयीं. सब एक साथ उधर दौड़ पड़े. कैमरे चमक उठे. माइक कसमसाया. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और भी बेताब!

सनम सिंह से इतने शवों और रक्तरंजित धरती का बोझ नहीं उठाया जा रहा था.

— बाप रे! मुझसे नहीं देखा जायेगा.

वह मां की कटी उंगलियों से बहते ख़ून तक को नहीं देख पाता था. झिड़का बिराज ने — हिस्स! कैसे रिपोर्टर हो तुम? इससे ज़्यादा मौतें देखने को मिलेंगी, क्या करोगे? मनमोहन प्रसाद को भी सनम की कमज़ोरी नागवार गुज़री.

उसने भी कहा — माना, तुम पहली बार आये हो, इसका मतलब यह थोड़े ना...!

उसकी बात अधूरी रह गयी. गांव के दक्षिण से एक शोर-सा उठा

— आ गये... आ गये. मंत्री जी आ गये.

मंत्री जी भी इस अर्द्धविकसित गांव की पगडंडी पर लपकते हुए आ रहे थे. पीछे उनके पिछलग्गू. भीड़ से एक आवाज़ आयी, — अरे, चमचों के बिना इनका काम चलेगा! इनमें से पचास तो इनके...

अधूरा बोलकर ही वह आवाज़ चुप हो गयी. भीड़ से कोई बोला तो. — हां!... हां!! की ध्वनि एक ओर से उठी. किसी ने तल्ख़ी से कहा — आगे कोई इंतज़ाम करेंगे नहीं. बाद में भीड़ बढ़ाते रहेंगे. जैसे मरने का ही इंतज़ार करते रहते हैं.

उनके पास पहुंचते ही भीड़ चीख़ी — कहां थे एतना दिन?.... कहां थे?

मंत्री जी चौपाल पर एक किनारे से चढ़ गये.

— भाइयों-बहनों! इस दुख की बेला में हम आपके साथ हैं... मरनेवालों के लिए हमारे दिल में बहुत हमदर्दी है. हम किसी को नहीं छोड़ेंगे.

सनम, बिराज और मनमोहन अन्य मीडियाकर्मियों के साथ धक्का-मुक्की कर बीच में जगह बनाने में सफल हो गये थे. सबने एक्सक्लूसिव कवरेज़ के लिए जान की बाजी लगा दी थी. चैनलवाले और भी बेचैन नज़र आ रहे थे. इन तीनों को भी संपादक को प्रसन्न करना था. बिराज लगातार फ़ोटो खींचे जा रहा था.

— ...आप ... आप चिंता न करें. हम मुआवज़ा देंगे एक-एक परिवार को पचास-पचास हज़ार... पिछली सरकार ने सिर्फ पच्चीस-पच्चीस हज़ार दिया था... हम पचास-पच...!

एक पत्थर सनसनाता आया, उनके ललाट पर लगा. उनकी बात पूरी नहीं होने दी गयी. ललाट से ख़ून निकल पड़ा. सुरक्षाकर्मियों ने तत्काल उन्हें सुरक्षा घेरे में ले लिया. चमचे दौड़े लेकिन उन सबको एक तरफ़ रोक दिया गया. भीड़ को पीछे ढकेला गया. बेहद बेबस ग्रामीण अब बेहद क्रुद्ध नज़र आ रहे थे. लाशों की राजनीति ने उन्हें भड़का दिया था.

चारों ओर चिल्ल-पों मच गयी. मंत्री जी को घेरकर चौपाल से उनके सुरक्षाकर्मियों ने सुरक्षित उतार लिया था. पुलिस भी मदद कर रही थी. पिछली बार वोट मांगने के समय आये थे मंत्री जी... बहुत सारे लुभावने वादों की पोटली थाम. उसे दीन-हीन ग्रामीणों को थमाया था. आज वे इनके दिलों को छू नहीं पाये. लंबे-लंबे भाषणों को उन सब ने पिछली सरकार के समय भी सुना था, जब बगल के गांव में बीस शव बिखरे पड़े थे. उन्होंने उस वक़्त भी भाषण को नकार दिया था... सरकार का हो या विपक्ष का, नहीं चाहिए भाषण!

सब हिंसक हो उठे. मंत्री जी को बाहर निकालने नहीं दे रहे थे. कोई-कोई तो पुलिसवालों के कॉलर पकड़ झूल गये.

— नहीं ले जाने देंगे... नहीं ले जाने देंगे.

— कल कहां थे आप सब, वे जब हमें भून रहे थे? उनको हमको सौंपिए.

— चले जाइए... चले जाइए आप लोग... हमको किसी की ज़रूरत नहीं है... हम ख़ुद अपनी रक्षा कर लेंगे. बस! उनको ले जाने नहीं देंगे.

सब पुलिस के घेरे को तोड़ आगे मंत्री जी के पास

बढ़ने को उद्धत. यह सीन ख़बरनवीसियों को भरपूर आकर्षित कर रहा था. सब सक्रिय रहते हुए भी और सक्रिय हो उठे. उन्माद में किसी ने एक पत्थर भागते मंत्री की ओर चला दिया. अब सबने रोड़े-पत्थर उठाकर चलाना शुरू कर दिया. जब तक कोई कुछ समझे, पुलिस लाठी भांजते-भांजते गोलियां चलाने लगी. भीड़ तितर-बितर होने लगी. कुछ ज़िद में डटे रहे. कुछ धराशायी.

थोड़ी देर में शवों की नयी खेप तैयार थी. बिराज के कैमरे का फ़्लैश लगातार चमक रहा था. कभी पेड़ के पीछे से, कभी झोपड़ियों के टूटे दरवाज़े के पीछे से, कभी खाट के पास छुपकर. अन्य फ़ोटोग्राफ़रों का भी कैमरा बोल रहा था. वीडियो बनानेवाले और भी उतावले. तमाशबीनों का मोबाइल भी अपना धर्म निबाह रहा था.

किसी तरह मंत्री जी को उनकी गाड़ी तक सुरक्षित पहुंचाया गया. गाड़ियां वापस लौट गयीं, तब पुलिसवालों की सांस में सांस आयी. पुलिसवाले अपनी बंदूकों से भीड़ को रोके हुए थे. आस-पास के गांवों से भी लोग जुट आये थे. इधर लाशें पड़ी थीं और ग्रामीणों का विलाप! पूरा वातावरण अज़ब से दुख में डूब गया.

— चलो, मंत्री जी को कुछ नहीं हुआ.

एक पुलिसकर्मी जान की ख़ैर मना रहा था.

— हां जी!... हमारी भी क्या मज़बूरी है!...पब्लिक गोलियां खाती रहे, इन्हें एक ढेले से भी बचाना है. थू है हमारी नौकरी पर. दूसरा वाला ज़्यादा सेंसेटिव था.

थोड़ी देर में नयी खेप को उठाकर पुलिसवाले चौपाल पर रखने की तैयारी करने लगे. लाशों की भीड़ मुंह चिढ़ाने लगी थी. कुछ लोग विरोध में उठ खड़े हुए. कोई-कोई पुलिस का कॉलर पकड़ झूल गये.

— नहीं ले जाने देंगे. हम अपनी झोपड़ी में इसी के साथ जल मरेंगे.

— हां!... हां!... लहास ले जाने से पहले हमको मोराय दो.

एक वृद्ध पुत्र की छलनी छाती को घेरे हुए बेहोश हो गया.

एक की मेहरारू चीख़ने लगी, — तुम सब जाव, उसको बचाव... हम का हैं...? कीड़ा-मकोड़ा ना?... बोलो, हैं ना?...खाली कीड़ा-मकोड़ा.

बहुत कठिनाई से समझा-बुझाकर लाशें उठायी गयीं. चौपाल पर रख कफ़न उढ़ाया गया.

सनम सिंह, मनमोहन प्रसाद ने पूरी घटना का आंखों देखा हाल लिखा. मनभावन शीर्षक के साथ रिपोर्ट तैयार की. बिराज मेहता फ़ोटो के साथ तैयार था. रिपोर्ट के साथ फ़ोटो लगा ऑफ़िस में भेज दिया... एक्सक्लूसिव रिपोर्ट.

चैनलवाले बाइट पर बाइट ले रहे थे

— कितनी रात को आये थे?....

— आपके बेटा-बेटी को मार डाला. आपको कैसा लग रहा है?...मतलब आप अभी क्या फ़ील कर रहे हैं?

— आगे आप सब क्या करेंगे?....गांव छोड़ देंगे?... पिता, मां, पत्नी की मौत...?

— ...आप जगे थे या सोये?

— आपको क्या चाहिए?

— मंत्री जी ने मुआवजे की बात की. वह कम है?.....कितना मिलना चाहिए?

— वे तो चले गये... अब?...

— आपको बहुत तकलीफ़ हो रही है?

ऐसे-वैसे कुछ वाहियात से प्रश्न!

— बिराज! अब यहां से वापस चलना चाहिए. अब यहां क्या रखा है!

मनमोहन सिंह ने उनकी अंत्येष्टि के बाद कहा.

— हां! चलिए. बस, दस आदमी ज़िंदा बचे हैं. अब क्या फ़ोटो लूं? ज़रूरी स्नैप्स ले ही लिये.

बिराज भी राजी था. सनम चुप नहीं रह सका.

— चार दिन इन मासूमों की मौत का जैसे जश्न मनता रहा. विभिन्न पार्टियों के नेता, उनके भाषण, प्रेसवाले! और न जाने कितने मंत्रियों का आवागमन लगा ही रहा.

उसने गहरी सांस ली. सनम आगे भी बोलता रहा,

— ...पर लगता है, आज उत्सव ख़त्म हो गया. इंसान की ज़िंदगी कितनी सस्ती है ना... बस! चंद रुपयों में तौल दी गयी... कफ़न हैं ये मुआवजे.

— अरे! यह तो भावुक होने लगा मनमोहन जी. कैसे टिकेगा?

— सनम! प्रेस वालों को भावुकता शोभा नहीं देती. मोटी खाल का बनना पड़ता है. तटस्थ रहना सीखो. बस, खबरें इकट्ठा करो, तस्वीरें सहेजो और अपना कैरियर चमकाओ.

— मैं ऐसा नहीं कर सकता. यह क्या कि हमारे

(शेष पृष्ठ २४ पर...)

२८ मार्च, १९६८
शिक्षा : अमृतसर, पंजाब तथा दिल्ली में.

हिंदी के प्रतिष्ठित कथाकार, कवि तथा साहित्यिक अनुवादक. इनके छह कथा-संग्रह, तीन काव्य-संग्रह तथा विश्व की अनूदित कहानियों के छह संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. इनकी कहानियां और कविताएं कई राज्यों के स्कूल-कॉलेज़ों में बच्चों को पढ़ाई जाती हैं. कई भाषाओं में अनूदित इनकी रचनाओं पर कई विश्वविद्यालयों में छात्र एम. फ़िल. और पीएच. डी. का शोध-कार्य कर रहे हैं. इनकी कई कहानियों के नाट्य मंचन हुए हैं तथा इनकी एक कहानी 'दुमदार जी की दुम' पर फ़िल्म भी बन रही है.
सुशांत लोकसभा सचिवालय, नयी दिल्ली में अधिकारी हैं.

क्या नाम था उसका?

सुशांत सुप्रिय

अब पानी सिर से ऊपर गुज़र चुका था. लिहाज़ा प्रोफ़ेसर सरोज कुमार के नेतृत्व में कॉलेज के शिक्षक अनिश्चितकालीन हड़ताल पर चले गये. धरना-प्रदर्शन शुरू हो गया.

प्रोफ़ेसर सरोज कुमार देश के एक ग़रीब और पिछड़े प्रांत के क़स्बे किशन नगर के सरकारी कॉलेज़ में पिछले पच्चीस साल से हिंदी के प्राध्यापक पद पर कार्यरत थे. वे कॉलेज़ के शिक्षक यूनियन के अध्यक्ष भी थे. आठ साल से अस्थायी पदों पर नियुक्त कॉलेज़ के दो दर्ज़न शिक्षकों को पिछले आठ महीनों से वेतन नहीं मिला था. उन सभी शिक्षकों का घर-परिवार था. उनके मां-बाप, बीवी-बच्चे थे. नियमित वेतन के अभाव में उन सब का अपने परिवारों के लिए दाल-रोटी का बंदोबस्त करना भी मुश्किल होता जा रहा था. उनके जीवन से सभी चटख रंग चले गये थे. अब केवल एक धूसर उदासी उनके इर्द-गिर्द थी.

केबल टी. वी. के युग में परोसी जा रही फूहड़ता और अश्लीलता के बावजूद प्रोफ़ेसर सरोज कुमार उन विरले लोगों में थे जो एक साफ़-सुथरे और अच्छे समाज के निर्माण में शिक्षकों की भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानते थे. वे कॉलेज़ में छात्र-संघ और शिक्षक यूनियन के चुनावों में गुंडा तत्वों के हावी होने का पुरज़ोर विरोध करते रहे थे. कई बार उन्होंने कॉलेज़ में छात्राओं को छेड़ने वाले गुडों को अकेले ही ललकारा था. इस प्रक्रिया में वे गुंडों के हमों में घायल भी हुए थे. पर उन्होंने सही बात का पक्ष लेना नहीं छोड़ा. उनका मानना था कि एक शिक्षक को छात्रों के सामने आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए जिसका वे अनुसरण कर सकें. वे अपना मतलब निकालने के इस युग में लुप्त होते मानवीय मूल्यों के हिमायती थे. वे अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ बुलंद करने के प्रबल पक्षधर थे. स्वाधीनता संग्राम के नायकों में वे भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद और लाला लाजपत राय को अपना आदर्श मानते थे.

कॉलेज़ के शिक्षक कई महीनों से बिना वेतन के काम कर रहे थे. ऐसे

में जब यह ख़बर आयी कि गणित के प्राध्यापक प्रोफ़ेसर शरद ने इस स्थिति से हताश हो कर आत्महत्या कर ली है तो शिक्षकों के ग़ुस्से का ज्वालामुखी फट पड़ा. आक्रोश का लावा बहने लगा.

पीड़ित शिक्षकों ने प्रोफ़ेसर सरोज कुमार से मदद की गुहार लगायी. उन्होंने कॉलेज़ के सभी शिक्षकों को इकट्ठा किया और कॉलेज़ प्रशासन के विरुद्ध महाभारत का शंख फूंक दिया. कॉलेज़ प्रशासन को अस्थायी शिक्षकों की नौकरियां पक्की करने तथा उनका आठ महीनों का वेतन अदा करने के लिए एक महीने का समय दिया गया. लेकिन आज़ाद भारत में भला बेचारे शिक्षकों को पूछता ही कौन था? वे गुमनामी के अंधेरे में जियें या मरें, किसे फिक्र थी? आख़िर अपनी मांगों के समर्थन में शिक्षक हड़ताल पर चले गये. पर कॉलेज़ प्रशासन के कानों पर जूं तक नहीं रेंगी. फिर तय किया गया कि डी. एम. के दफ़्तर के बाहर शिक्षक अपनी मांगे मनवाने के लिए धरना-प्रदर्शन करेंगे. अब पानी सिर से ऊपर गुज़र चुका था.

नियत दिन कॉलेज़ के शिक्षकों ने एक जुलूस निकाला. नारेबाज़ी करते हुए वे डी. एम. के दफ़्तर पहुंचे. प्रोफ़ेसर सरोज कुमार सहित पांच शिक्षकों के शिष्टमंडल ने डी. एम. से मुलाक़ात की. डी. एम. को एक ज्ञापन सौंपा गया जिसमें शिक्षकों की मांगें दर्ज थीं — शिक्षकों के सभी अस्थायी पद स्थायी किये जायें. शिक्षकों का आठ महीनों का वेतन उन्हें अदा किया जाये. मृत शिक्षक प्रोफ़ेसर शरद के परिवार को उचित मुआवज़ा दिया जाये. उनकी पत्नी को सरकारी नौकरी दी जाये. शिक्षकों को नियमित रूप से वेतन दिया जाये, आदि.

शिक्षक अपनी मांगों पर तत्काल कार्रवाई का आश्वासन चाहते थे. डी. एम. ने ऐसा करने में असमर्थता ज़ाहिर की. वे चाहते थे कि शिक्षक पहले बिना शर्त अपनी हड़ताल वापस ले लें और अपना धरना-प्रदर्शन बंद कर दें, उसके बाद वे शिक्षकों का ज्ञापन सरकार को सौंप देंगे.

शिक्षक इस बात के लिए तैयार नहीं हुए. इस मुद्दे पर बातचीत में गतिरोध आ गया. दोनों पक्षों में ठन गयी. डी. एम. के दफ़्तर के बाहर ही शिक्षकों का धरना-प्रदर्शन जारी रहा. प्रशासन ने इस तनावपूर्ण स्थिति से निपटने के लिए तगड़ा पुलिस बंदोबस्त किया था.

साठ-सत्तर शिक्षकों को नियंत्रित करने के लिए तीन-चार सौ पुलिसवाले मौजूद थे. अतिरिक्त पुलिस बल को भी तैयार रहने के लिए कहा गया था. पुलिस बल की कमान स्वयं एस. एस. पी. ने संभाल रखी थी.

शाम पांच बजे जब डी. एम. अपने ऑफ़िस से बाहर निकले तो शिक्षकों ने उनकी सफ़ेद अंबैसेडर कार के पास उन्हें घेर लिया.

इसके बाद क्या हुआ इस बारे में प्रत्यक्षदर्शियों के अलग-अलग बयान हैं. कुछ प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि उत्तेजित शिक्षकों ने डी. एम. साहब के साथ धक्का-मुक्की की जिस पर एस. एस. पी. श्री के. पी. सिंह ने उपद्रव पर उतारू शिक्षकों को तितर-बितर करने के लिए लाठी चार्ज का आदेश दे दिया. पर कुछ अन्य प्रत्यक्षदर्शी यह बताते हैं कि डी. एम. साहब के साथ कोई धक्का-मुक्की नहीं हुई थी. उनके अनुसार दरअसल शिक्षकों की भीड़ में से किसी उत्तेजित शिक्षक ने अपनी चप्पल निकाल कर डी. एम. साहब की ओर फेंकी जो उनके चेहरे पर जा लगी जिससे डी. एम. साहब का चश्मा नीचे गिर कर टूट गया. इससे भन्ना कर स्वयं डी. एम. साहब ने ही शिक्षकों पर लाठीचार्ज का आदेश दे दिया.

हालांकि अधिकांश प्रत्यक्षदर्शी इन दोनों बयानों का खंडन करते हैं. उनका कहना है कि जब डी. एम. श्री श्याम नारायण अपने दफ़्तर से निकल कर बाहर आए तब शिक्षकों ने उन्हें घेर लिया और वे उनके विरुद्ध नारेबाज़ी करने लगे. इन प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार यह सारी प्रक्रिया शांतिपूर्ण थी. डी. एम. साहब उत्तेजित शिक्षकों को समझाने-बुझाने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे, तभी सड़क पर से गुज़र रही किसी गाड़ी का टायर फट जाने से एक ज़ोरदार आवाज़ हुई. इस पर ड्यूटी के प्रति ज़रा ज़्यादा ही वफ़ादार वहां तैनात कुछ पुलिसकर्मियों ने यह समझा कि शिक्षकों ने डी. एम. साहब पर हमला कर दिया है. बस उन्होंने हड़बड़ाकर बिना आदेश के ही शिक्षकों पर ताबड़तोड़ लाठियां बरसानी शुरू कर दीं. कुछ लोगों ने यह भी बताया कि एक-दो पुलिसवालों ने शिक्षकों को डराने के लिए हवा में फ़ायरिंग भी की. डी. एम. के दफ़्तर के पास ही पान-बीड़ी का खोखा लगाने वाले मनोज तिवारी ने भी इस बात की तस्दीक़ की.

'साहब, हम एक ग्राहक को १२० नंबर का पान लगाकर दे रहे थे तभी एक ज़ोरदार धमाका हुआ. हम घबरा गये और गिलौरी ससुरी हमारे हाथ से छूट के नीचे गिर

गयी. इसके बाद हम क्या देखते हैं कि सब मास्टर लोगों की पिटाई हो रही है और दो-तीन सिपाही हवाई-फ़ायरिंग कर रहे हैं. हम तो डर के मारे अपने स्टूल के नीचे दुबक लिये. गोली ससुरी को इ थोड़े ही पता होता है कि हम मास्टर नहीं हैं.' बाद में पूरी घटना याद करते हुए तिवारी ने प्रेस वालों को बताया.

सच चाहे जो भी हो, देखते-ही-देखते डी. एम. के दफ़्तर के बाहर की जगह जैसे किसी युद्ध-स्थल में तब्दील हो गयी. पुलिस के संरक्षण में डी. एम. तो लाल बत्ती वाली अपनी सफ़ेद अंबैसेडर कार में बैठ कर घर के लिए रवाना हो गये, पर शिक्षक पुलिसवालों के हाथों पिटते रहे.

बाद में एक प्रत्यक्षदर्शी ने अपना नाम गुप्त रखे जाने की शर्त पर प्रेसवालों को बताया कि उसने स्वयं एस. एस. पी. श्री के. पी. को सिपाहियों से यह कहते सुना था — 'हाथ-पैर तोड़ दो स्सालों के. लीडरी करते हैं!' हालांकि किसी अन्य स्रोत से इस बात की पुष्टि नहीं हो सकी.

डी. एम. का दफ़्तर गांधी चौक के पास स्थित था. वहां स्थापित गांधीजी की मूर्ति इस सारे लोमहर्षक कांड की मूक गवाह थी.

पुलिसवालों की लाठियों की मार से शिक्षकों के हाथ-पैर टूट रहे थे, उनके सिर फूट रहे थे और वे ज़मीन पर गिरते जा रहे थे. प्रोफ़ेसर सरोज कुमार पुलिस की लाठियां झेलते हुए अपने सहकर्मियों को एक-एक कर धराशायी होते हुए देख रहे थे. आक्रोश के आंसुओं से उनकी आंखें जल रही थीं. रोते-रोते अचानक उन्हें स्थिति की विडंबना पर हंसी आ गयी. अपनी नौकरियां पक्की करने और अपने आठ महीनों का वेतन पाने की जायज़ मांग के बदले में आज़ाद भारत में प्रशासन प्रोफ़ेसरों पर लाठियां बरसा रहा था. यहां गुंडे खुलेआम घूम रहे थे, भ्रष्टाचारियों के पौ-बारह थे और आतंकवादी पुलिस की पहुंच से बाहर थे, पर अपने हक़ मांगने की धृष्टता करने के लिए शिक्षक पुलिस की लाठियां खा रहे थे. यह कैसी अंधेर नगरी थी — प्रोफ़ेसर सरोज कुमार ने सोचा.

चारो ओर दनादन लाठियां बरस रही थीं. प्रोफ़ेसर सरोज कुमार साथी शिक्षकों पर हो रहे प्रहारों को अपने ऊपर लेकर उन्हें बचाने के प्रयास में घायल होते जा रहे थे. तभी सिपाही रामखेलावन की एक लाठी रणभूमि में क़हर बरसाकर शिक्षकों को गाजर-मूली की तरह गिराते हुए प्रोफ़ेसर सरोज कुमार की खोपड़ी तक आ पहुंची.

उस लाठी को सिपाही रामखेलावन ने तेल पिला-पिलाकर पाला था. लाठी केवल सिपाही रामखेलावन के हाथों की भाषा समझती थी और सिपाही रामखेलावन केवल लाठी की भाषा समझता था. इस माहौल में प्रोफ़ेसर सरोज कुमार के हिंदी भाषा और साहित्य के ज्ञान को न लाठी समझती थी, न सिपाही रामखेलावन समझता था.

लाठी ने खोपड़ी को कोई चेतावनी नहीं दी. सिपाही रामखेलावन की लाठी पूरे वेग से प्रोफ़ेसर सरोज कुमार की खोपड़ी पर पड़ी और पल के सौवें हिस्से से भी कम समय में उनकी खोपड़ी की बाहरी परत चटख गयी और खोपड़ी के भीतर स्थित दिमाग़ में सब कुछ गड्डमड्ड हो गया. वह भरपूर प्रहार जिस सिपाही रामखेलावन ने किया था वह पिछले सोलह सालों से कांस्टेबल के ग्रेड में सड़ रहा था. उसकी सारी कुंठा उसकी लाठी के प्रहार में समाहित हो गयी और प्रोफ़ेसर साहब की खोपड़ी को तहस-नहस कर गयी.

जब सिपाही रामखेलावन की लाठी दस मीटर प्रति सेकेंड की रफ़्तार से प्रोफ़ेसर सरोज कुमार के सिर पर पड़ी तो उनके ज़हन में कोई स्मृति नहीं कौंधी. उन्हें अपना प्रिय फ़िल्मी गाना 'प्रिय प्राणेश्वरी, मम हृदयेश्वरी' याद नहीं आया. उन्हें धोती पहने यह गीत गाता हुआ चुटिया-धारी विनोद खन्ना याद नहीं आया.

उन्हें बचपन में पिता के कुर्ते की जेब से क़लम चुराने पर पड़ी मार याद नहीं आयी. उन्हें अपने छात्र-काल के समय गदराए बदन वाली अपनी प्रेमिका ऋतंभरा याद नहीं आयी. उन्हें अपनी पत्नी सुशीला, जो विवाह के समय छरहरी थी पर अब स्थूलकाय हो गयी थी, याद नहीं आयी. उन्हें अपनी पत्नी के साथ अमेरिका में जाकर बस गया अपना सॉफ़्टवेयर इंज़ीनियर बेटा भी याद नहीं आया.

उन्हें मुक्तिबोध की 'चांद का मुंह टेढ़ा है', 'ब्रह्मराक्षस' या 'अंधेरे में' कविताओं की कोई पंक्तियां याद नहीं आयीं. उन्हें 'जब भी कोई अपने हक़ के लिए खड़ा होता है, व्यवस्था उसे गोलियां और लाठियां ही देती है' कथन भी याद नहीं आया जो कभी उनके ही किसी छात्र ने कहा था.

दरअसल प्रोफ़ेसर सरोज कुमार को कुछ भी याद कर सकने का मौक़ा ही नहीं मिला. सिपाही रामखेलावन के तेल पिये लाठी के सिर पर पड़े प्रचंड प्रहार ने उन्हें कुछ भी याद कर सकने का समय ही नहीं दिया. यादों के पुच्छल तारे

प्रोफ़ेसर साहब के दिमाग़ के भीतर ही दम तोड़ गये.

उनके ज़हन में कोई बिजली-सी कौंधी. फिर उनके दिमाग़ की सारी बत्तियां बुझ गयीं और वहां घुप्प अंधेरा छा गया.

पीड़ा के दहकते लावा का अजस्र बांध भीतर कहीं टूटा और फिर वह तड़पती गर्मी उन्हें लील गयी. प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि सिपाही रामखेलावन की लाठी का वह प्रहार इतना तगड़ा था कि प्रोफ़ेसर सरोज कुमार वहीं लुढ़क गये. वे एक बार जो गिरे तो फिर उठ नहीं पाये.

यह सूर्यास्त से ठीक पहले का समय था जब बौने लोग डाल रहे थे लंबी परछाइयां. एस. एस. पी. वायरलेस पर पुलिस महानिदेशक को बता रहे थे कि उन्हें हिंसा पर उतारू शिक्षकों की भीड़ पर नियंत्रण पाने के लिए बल-प्रयोग करना पड़ा. पुलिस ने कठिन परिस्थितियों में बहुत ही संयम से काम लिया था. स्थिति अब नियंत्रण में थी.

कुछ ही समय में सूर्यास्त हो गया. आसमान में एक आधा कटा हुआ चांद दर्द से कराह रहा था. पास के पेड़ पर एक चालाक बिल्ले ने किसी अभागे कबूतर का शिकार कर लिया था. कबूतर के नुचे हुए पंख पेड़ के नीचे बिखरे पड़े थे. पेड़ के इर्द-गिर्द उड़ रही चिड़ियां बिल्ले को देखकर भयभीत स्वर में शोर मचा रही थीं.

दर्द से कराहते घायल शिक्षकों को पुलिस की गाड़ी में डालकर सरकारी अस्पताल ले जाया जाने लगा.

एक कांस्टेबल ने प्रोफ़ेसर सरोज कुमार की लाश को गाड़ी में एक ओर डाल दिया. एक अन्य कांस्टेबल ने गाड़ी में बैठे एक घायल शिक्षक से लाश के बारे में पूछा — 'क्या नाम था उसका?'

'लाला लाजपत राय.' घायल शिक्षक ने जवाब दिया. उसकी आंखों में अंगारे दहक रहे थे.

ताज़ा समाचारों के अनुसार शहर के सरकारी कॉलेज़ के शिक्षकों की हड़ताल के समर्थन में कॉलेज़ के छात्र भी अब मैदान में कूद गये हैं. छात्रों और शिक्षकों की मिली-जुली हड़ताल अब बल पकड़ रही है. किंतु शहर के अधिकांश लोग पुलिस लाठीचार्ज में हुई प्रोफ़ेसर सरोज कुमार की मौत की घटना से अब भी बेख़बर हैं. रेडियो और टी. वी. चैनल भारत और वेस्ट इंडीज़ के बीच हुए क्रिकेट टेस्ट-मैच के समाचार तथा अन्य राजनीतिक ख़बरें देने में व्यस्त रहे. इस घटना का कहीं कोई उल्लेख नहीं हुआ.

कुछ लोगों ने अगले दिन के किसी हिंदी अख़बार के भीतर के पन्ने पर छपी पुलिस लाठीचार्ज की छोटी-सी ख़बर पढ़ी. पर संवाददाता ने मृत शिक्षक का नाम बताना ज़रूरी नहीं समझा था. वे लोग एक-दूसरे से यह पूछते हुए सुने गये — 'अरे, कल लाठीचार्ज में सरकारी कॉलेज़ के एक शिक्षक की मौत हो गयी. कौन था वह? क्या नाम था उसका?'

५००१, गौड़ ग्रीन सिटी,
वैभव खंड, इंदिरापुरम,
गाज़ियाबाद– २०१०१४ (उ. प्र.)
मो: ८५१२०७००८६
ई-मेल : sushant1968@gmail.com

ख़बर की तलाश में...

(पृष्ठ २० से आगे...)

सामने कोई दम तोड़ रहा है और हम उसको बचाने की कोशिश करने से पहले स्नैप ले रहे हैं. रपट लिख रहे हैं. जोर से कहता हुआ सनम गांव की सूनी, खूनी पगडंडी पर आगे बढ़ गया. वे दोनों भी पीछे चले. थोड़ी दूर आते ही खेत की मेड़ से लगे इमली के पेड़ के पीछे लाल छींटदार फ्रॉक देखी. सनम उधर चलने लगा... तेज क़दमों से.

पास आते ही पाया, उस फ्रॉक के अंदर एक लाश थी. एक मासूम बच्ची की विकृत लाश!... उसने भागते हुए यहां आकर दम तोड़ा हो शायद.

— लगता है, पुलिसवाले इसे देख नहीं पाये.

कहते हुए बिराज पुनः कैमरा संभालने लगा. मनमोहन कुछ नोट करने लगा. सनम की उदास निग़ाहें इधर-उधर घूमीं.

एकाएक वह दौड़ पड़ा. सामने खेत में किसी पार्टी के द्वारा लाया गया तिरंगा भगदड़ में गिर गया था. वह उसे उठा लाया और बच्ची की ख़ून सनी लाश पर डाल दिया.

मनमोहन, बिराज भौंचक थे. बिराज ने तत्काल फिर से कैमरे को फ़ोकस करना शुरू कर दिया. धड़ाधड़ तस्वीरें ली जाने लगीं.

१ सी, डी ब्लॉक, सत्यभामाग्रैंड,
कुसई, डोरंडा, रांची,
झारखंड-८३४००२
मो. : ८२६९५९४५९८
ईमेल - anitarashmi2@gmail.com

हज़ारों पंखों का एक आसमान

संजय कुमार सिंह

: रचनात्मक उपलब्धियां :
हंस, कथादेश, पाखी, वागर्थ, अहा ज़िंदगी, साखी, कहन, क़िताब, बया, संवदिया, साहित्यनामा, दै. हिंदुस्तान, प्रभात ख़बर आदि पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित.

क़िस्से-कहानी की दुनिया,
दुनिया क़िस्से-कहानी का खेल,
खेल में सपना/सपने में दुख-सुख,
दुख-सुख हैं आंसू और फूल!

कक्का गांव में नामी क़िस्सागो.. एक से बढ़कर एक कहानी सुनाते!

उनकी अब तक सुनायी कहानियों में सबसे यादगार कहानी है यह. यह सही है कि अब तक, शीत-बसंत, राजा सल्हेस, बाला लखिंदर, रानी बासमंती, रानी घटेश्वरी, चंपावती जैसी लोक-प्रचलित कहानियां ही वे सुनाते थे... मगर राम कुमारी की कहानी उस मायने में लीक से हट कर अद्भुत कहानी कही जाएगी! एक-एक घटना, ठांव-ठिया, लोग-बाग जाने-पहचाने! कहते–कहते उन्होंने कही बाबू कहानी जिला माधवपुरा की. कहानी की नायिका राम कुमारी! राम कुमारी का अपना इतिहास! तब किसको था इसका अहसास कि इतनी बड़ी घटना होगी. औरत माने औरत जात! चिड़ी-चुनमुन! सुग्गा-मैना! आम-पपीता! लेकिन रामकुमारी बाघ थी. बाघ! उस ज़माने में माधवपुर लोकसभा चुनाव क्षेत्र से राम कुमारी निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में खड़ी थी. यह ख़बर ख़ुद में किसी सनसनी से कम नहीं थी. चूड़ी, बिछिया, पायल, बिंदी और काजल जैसे आभूषण जब औरत के श्रृंगार हुआ करते थे, तब चूड़ीदार और कुर्ती पायजामा पहन कर सार्वजनिक जीवन में पांव पसारने वाली कौन थी यह राम कुमारी? दसवीं पास इस औरत का ऐसा क्या इतिहास था? किस घटना ने उसे राजनीति की इस पथरीली ज़मीन पर ला खड़ा किया था, जिसने दशकों से चुनाव जीत रहे नामी उम्मीदवारों की नींदें उड़ा दी थीं?

ठहरिए, मुझे कहने दीजिए...

'कहते हैं माधवपुरा दबंग सामंतों का एक नामी ज़िला. आज़ादी के बाद भी जहां क़ानून समाज के उन्हीं बड़े लोगों की चेरी. मगर रामकुमारी ने कुछ समय के लिए सब बदल दिया था. घोड़े पर बंदूक लेकर चलने वाले हेकड़ीबाज

मर्दों को भी ख़ौफ होता था, तब रामकुमारी से...'

'कहते हैं राम कुमारी पपैती गांव की भोली-भाली लड़की थी. उसके बाप मूसा साव की माधवपुरा में ज़ेनरल हाई स्कूल के पास दही-चूड़ा की दूकान थी. रामकुमारी कभी अपनी मां दुलारी के साथ आती थी... दो-चार दिन रहकर चली जाती, मगर गांव से बढ़िया उसे माधवपुरा लगता. छोटा–सा शहरनुमा ज़िला. वह ज़िद कर के बाबू के पास रह गयी. स्कूल में दाख़िला हुआ तो, यहीं राजू से उसका परिचय हुआ... वर्षों दोनों के बीच पेरेम परवान चढ़ा. फिर शादी भी हुई! डोरे डालने वाले कुछ नवाब के नाती नाराज थे उससे... पर उसने घास नहीं डाली. सचमुच वह अपरूप परी थी, लेकिन उसे उसका राज कुमार मिल गया था!

कक्का की कहानियों में ऐसी सुंदर स्त्रियों का चित्रण कुछ इस तरह होता, 'पांव में पायल-बिछिया, खंजन जैसी आंखों में काजल, सुग्गा जैसी नाक में नकफूल,चंद्रमा जैसे कान में कनफूल, हंसिनी जैसी ग्रीवा में नौलक्खा हार, चंदन बरन, इंदरपुर की परी...' मगर यह कहानी कक्का से सुन कर मैं आपको सुना रहा हूं, थोड़ा-बहुत बदल कर भी! कक्का की कहानी की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह कि औरत का यही एक रूप उन्हें सूझता, इसलिए उनकी कहानी में बहुत आसानी से आगे चलकर अहदी राजा, जुल्मी ज़मींदार, पैसे वाले श्रेष्ठी, धूर्त जादूगर ठग-बटमार से डर कर उनकी औरत हार जाती... कहो, तो कहेंगे औरत तब औरत रहेगी? नहीं रहे... रामकुमारी का यही अर्द्धनारीश्वर स्वरूप मुझे अच्छा लगता है, न डरने वाला और न हारने वाला... अर्द्धनारीश्वर नाम कक्का ने ही दिया है.

कहते हैं शादी के सात दिनों के बाद ही रामकुमारी के पति की हत्या कर दी गयी और कुछ दबंगों के शोहदों ने उसे उठवा लिया. अपूर्व सुंदर थी वह. सुंदरता ही अभिशाप बन गयी. पर किसी को यह पता नहीं था कि उसके पास एक सशक्त दिमाग़ भी था, जो उसके रूप के अंदर नागिन बन कर बैठा था. यह मिथ है कि नागिन के नाग को मारोगे, तो प्रतिशोध में वह डंसेगी. एक-एक कर उसने अपने पति राजू के हत्यारे को डंसा. ....माधवपुरा की क्लियोपैट्रा की कहानी भी उतनी ही लंबी है, जितना लंबा दबंगों के ज़ुल्म का इतिहास... नरक के उस कुंड से निकल कर सबसे पहले उसने उन्हीं दंबंग गुंडों के माध्यम से माधवपुरा के नामी सामंत भरोसी मंडल के बेटे चंदन की हत्या करायी, फिर पपैती के बुद्धन सिंह की. उसकी चाल से इलाक़े का बदमाश लखना पासी मारा गया... कोई सिनेमा घर में मारा गया, तो कोई कलालखाने में, तो कोई स्टेशन पर... वह प्रेम का नाटक कर शिकार फांसती और ठिकाने लगा देती. आख़िर मर्डर मिस्ट्री तब टूटी जब वह पकड़ी गयी पुलिस की जांच में. लोग उसके रूप से डरने लगे.

□

धीरे-धीरे अबलापन का केंचुल उतार वह कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने लगी. वकील, गवाह, जेल और जजों से जूझते हुए लचर क़ानून-व्यवस्था और अन्याय के खिलाफ़ चौक-चौराहे पर बोलने लगी. सार्वजनिक जीवन में बिना किसी पूर्वघोषणा के उसके इस अवतरण के कुछ लोग कटु आलोचक थे, तो कुछ दबे-कुचले सताए लोग उसके शौर्य और साहस के प्रशंसक भी.

एक तरह से रॉबिनहुड की मर्दाना छवि उसमें उतर रही थी. उसकी बहादुरी के क़िस्से दबी जुबान से लोग एक-दूसरे से कह रहे थे. वह अब गेटप-मेकप से भी किसी फ़िल्म की हीरोइन नहीं हीरो थी. सच हो कि झूठ प्रियंका रेड्डी के मरने के बाद औरतों को जिन हथियारों और मार्शल आर्ट में दक्ष होने की बात कही जा रही है, उस ज़माने में इन सब इल्मों में उसे माहिर माना जाता था. डाइगर से पिस्टल तक चलाने की बातें लोग कहते थे. उसे देख कर कानाफूसी होने लगती, पर सरेआम उसके हाथ में कुछ नहीं होता था, मगर उसकी निडर बेख़ुदी से उल्टे लोग हैरान होते थे. जबान की कैंची चलती, तो लोग कट जाते, 'साले भड़ुओं! तुम मर्दों में अगर एक रमकुमरिया हो, तो समाज में इतना ज़ुल्म नहीं हो. मेरे पति को जब खींच कर मारा गया दिन-दहाड़े.. वह अकेले लड़ता रहा उन गुंडों से... पर गांव के लोग तमाशा देखते रहे.'

उन्होंने उसे चाकू से गोद कर मार दिया...

वह जहां खड़ी होती, भीड़ लग जाती.

'ज़ुल्म क्यों होता है भाई? क्योंकि हम बर्दाश्त करते हैं. जब हम बर्दाश्त नहीं करेंगे, तो वह भागेगा.' उसका ब्रेकलेस भाषण चलता, 'राम कुमारी को देखिए... माधोपुरा हाईस्कूल में पढ़ती थी मैं. राजू से प्रेम करती थी. मगर दबंग परिवार के लड़कों ने जबर्दस्ती राजू की हत्या कर मुझे रखैल बनाना चाहा... मैं रखैल रह सकती थी, पर नहीं रही... मेरे मां-बाप उन बदमाशों के बाप को गुहार लगा रहे थे कि मुझे

छोड़ दिया जाए... वे दुत्कारते रहे.. सत्य हरिश्चंद्र बनते रहे... फिर मैं पिंजड़े को खोल कर एक रोज़ ख़ुद प्रकट हुई. मेरे मां बाप रोने लगे देख कर... पर मैं नहीं रोयी. उनके आंसू पोंछ कर मैंने वही किया, जो एक सच्ची प्रेमिका करती है... अब डर लगता है लोगों को रामकुमारी से... मगर आप लोग मत डरिए... ग़रीब और मजलूम लोग नहीं डरें... मैं तो बस ज़ुल्म के ख़िलाफ हूं...'

'मेरी मां ने कहा, बेटी तू माधवपुरा मत जा. मैंने कहा जाऊंगी.'

वह लिपटकर रोने लगी... मैंने डांटा, 'तेरी बेटी मर गयी... मुझे मत छू!' वह बोली, 'शरीर देखती तो वह कितना रोती! आप कैसे समझिएगा? मेरा शरीर मेरा कहां था? उसमें अनगिनत जख़्म और दाग थे... औरत होकर कोई उस शरीर को कैसे सहन कर सकती थी, सो मैं मर्द बन गयी...'

रामकुमारी जितनी कटु हो गयी थी, उतनी ही बेबाक भी. डर उसके अंदर से निकल गया था. उसका गोरा रंग झुलस कर तांबई हो गया था. वह माधवपुरा की उस ज़माने में सैलिब्रिटी थी. कभी डी. एम. ऑफ़िस में तो कभी एस. पी. के पास. अकेली महिला. भेष पुरुष का, 'इस महिला की इज़्ज़त लूटी गयी है सर. दोषियों की गिरफ़्तारी हो... नहीं तो कल प्रशासन का चक्का जाम होगा.' जहां भी वह जाती उसकी नारी-शक्ति के आगे सबकी घिग्घी बंध जाती. उसका तेवर अपने अतीत की कोमल छवि को भूल एक आकस्मिक परिस्थितिगत प्रभाव से भर चुका था.

'सिविल सर्ज़न साहब!' वह ग़रीब मरीजों के साथ वहां पहुंच कर कहती,' अमीर लोगों के लिए बहुत डिस्पेंसरियां हैं, ग़रीबों का यही ठिकाना. इलाज में भेद-भाव नहीं होना चाहिए.' तो होटल वाले को, कहती 'पेट मत काट भाई.'

रिक्शा चालक, टैंपो चालक से लेकर बस अड्डे तक माधवपुरा जिला में उसकी पहचान थी. कदाचित लोकप्रिय भी!

उन दिनों एस. पी. मुंडा साहब स्थानांतरित होकर आये थे माधवपुरा. एस. पी. मुंडा से उसकी रहस्यमय निकटता की भी चर्चा थी. एक बार वामपंथी मूड के कवि एस. पी. मुंडा ने उससे पूछा था, 'राजकुमारी जी शुरू से आपका यही स्वभाव रहा है कि बाद में आपने... पुलिस की डायरी में आप जो हों, पर आपका व्यक्तित्व इम्प्रैसिव है मैं नॉवेल लिखूंगा भविष्य में...'

विलोम में लय

✍ संदीप राशिनकर

मैं,
चस्पा होना चाहता हूं
बनकर पहचान
अजनबी की आंखों में!
मैं,
बनना चाहता हूं आवाज़
बेजां
जीवित होकर भी निर्जीव
चुप्पी ओढ़े
इन बुतों की !
मैं,
चाहता हूं झांकना
हिंसा की आंखों में
और
चाहता हूं जगाना
करुणा, मानवता, दया
उन निग़ाहों में!
हालांकि
मैं जानता हूं
बहुत ही मुश्किल है ये सब
फिर भी
चाहता हूं
विलोम में जगा सकूं एक लय
और गा सकूं
स्वच्छंद उड़ते
परिंदों के
कुछ नग़में!

११बी, राजेंद्रनगर,
इंदौर-४५२०१२ (म. प्र.)

भावुक आंखों से वह निहारती रही मुंडा साहब के अंदर रक्तरंजित राजू की छवि को...फिर बोली, 'सर! औरत का यह रूप नहीं होता. यह चेहरा तो आपके समाज के भद्र लोगों ने दिया है. कुछ मुखिया हैं, कुछ सरपंच, एकाध एम. एल. ए. और कुछ?... कुछ से तो मैं सलट चुकी हूं, कुछ

से सलटना बाक़ी है... हां ख़ूनी हूं, आवारा हूं, हत्यारिन हूं, पर ऐसा बनाया उन्होंने... मेरे राजू की हत्या नहीं होती... मेरी इज़्ज़त..' उसने चेहरा ढंक लिया, 'मैं रामकुमारी रहती, रमकुमरिया नहीं, पर अपने इस रूप पर अब मुझे गर्व है! नटनागर को यही मंजूर था सर!'

मुंडा ख़ामोश हो गये, 'ग़रीबों के साथ यह मजाक मेरे गृह जनपद में भी ख़ूब होता है... पर वहां चलाकी से, पूंजी और प्रपंच के जाल से ज़्यादा होता है...'

'यहां दादागिरी से...'

'पर आपने तो..'

'मेरे पास कोई विकल्प ही नहीं था...'

'क़ानून जिनको न्याय नहीं देता, वह उसे अपराधी बना देता है.' मुंडा साहब ने कुछ सोच कर कहा.

'आप ऐसा कहते हैं सर?'

'हां.' वे झिझकते हुए बोले, 'ऐसा अनुभव रहा है मेरा भी.!'

'तब तो मै अपराधी हूं सर...'

'नहीं, आपका संघर्ष अलग है.' उन्होंने कुछ सोच कर कहा, 'मेरे मन में बहुत सम्मान है आपके लिए ...आप एक दिन एम. एल. ए. बनिएगा...'

'बनूंगी तो नहीं!' वह कुछ विहंस कर बोली,' पर लडूंगी ज़रूर.'

'क्यों? क्यों नहीं बनिएगा?' मुंडा चौंके.

'यहां सामंतों का, एलीट क्लास के पूंजीपतियों और अपराधियों का दबदबा है... वे एक महिला को कुछ बनने देंगे? उनके वर्चस्व की तौहीन होगी... मेरी हत्या करवा देंगे.'

'समय बदलेगा राम कुमारी जी.' मुंडा ने कहा, 'मुझे आप में वह मवाद नज़र आता है. क्या डर से आप उन संभावनाओं से पीछे हटेंगी?'

'कतई नहीं.' वह सख्त हुई.' मैं लडूंगी!

मुंड़ा ने उसके संकल्प को हवा देते हुए एक कविता सुनायी —

मैं नहीं कहता
कि तुम उड़ सकोगी आसमान में
किसी विमान की तरह
पर पक्षी की तरह पंख तौलो,
आसमान को छूने का तुम्हारा यह साहस
आने वाले समय में हज़ारों पंखों को
एक आसमान देगा.

वह हंसी और ख़ुद को तलाशती हुई उठ गयी, 'शुक्रिया सर, शुक्रिया.'

□

मुंडा का तबादला हो गया, पर उसमें वह ज़ज़्बा बरकरार रहा. उस ज़माने में कुछ अपवादों को छोड़ कर महिलाओं के लिए चुनाव लड़ना उसी तरह था, जैसे बकरी को बाघ के बराबर खड़ा किया जाए. मगर रामकुमारी के अंदर एक बाघ पैदा हो चुका था. वह मौक़े का इंतज़ार कर रही थी.

जब चुनाव आया, तो वह भी दौड़ लगाने लगी. वह समय तब का था जब राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व नगण्य था. पार्टियां महिलाओं को लड़ाकर जोख़िम लेने से कतराती थीं.

लोक-सभा चुनाव में माधवपुरा में सीधी टक्कर अगड़ी और पिछड़ी जातियों के दबंगों बीच होती थी. राजधानी में रामकुमारी जैसी निचली जाति को तब कोई नहीं पूछता था और न भाव देता था. महीनों झख मारने के बाद. थक हार गयी वह. टिकट नहीं मिला. आख़िरकार टिकट लेकर वही लोग लौटे राजपूत, भूमिहर, यादव और ब्राह्मण. मगर माधवपुरा के बारे मशहूर था, रोम पोप का तो माधवपुरा गोप का. राम कुमारी ने समीकरण से अलग निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में पर्चा डाला. राजनीति के खिलाड़ियों को इस भूचाल की उम्मीद नहीं थी. शुरू में तो किसी ने गंभीरता से नहीं लिया लेकिन प्रचार ने रंग पकड़ा, तो एक उल्टी हवा चलने लगी.

□

दोनों दल के उम्मीदवार परेशान. रामकुमारी की सभाओं में अप्रत्याशित भीड़ उमड़ने लगी. तोल-मोल शुरू हुआ. अपने-अपने पक्ष में बैठाने का खेल. नोटों की पेटी. वह टस से मस नहीं हुई. जीत-हार जो हो. आसमान में एक उम्मीद ही सही. वह भाषण में एक ही बात कहती, 'भाइयो, बहनों! रामकुमारी को रमकुमरिया किसने बनाया? उसकी साड़ी के बदले यह रूप किसने दिया? यह लड़ाई अन्याय के ख़िलाफ है और एक औरत के अपमान के ख़िलाफ भी...' उसकी आवाज़ का जादुई असर हो रहा था.

चुनाव का हंगामा चरम पर था. विचार और संवेदना की नसों में ख़ूनी आवेग. एक रात इलाक़े के बुजुर्ग पत्रकार राम किंकर जी उसके पास आये छिपते-छिपाते. वे अब तक

रामकुमारी के लिए अभिभावक की तरह थे. उन्होंने एकांत में कार्यकर्त्ताओं से अलग में उससे बात की और बैठ जाने का निवेदन किया.

कहने वाले कहते हैं रामकुमारी ने पूछा, 'क्यों चाचा जी? आप क्यों डर रहे हैं? मुझे डरने वालों से सख्त नफ़रत है... पर आप तो...'

राम बाबू ने कहा, 'मुझे डर लगता है. कुछ गुमशुदा ख़बरें मुझे हैरान कर रही हैं... कुछ लोग षड़यंत्र रच रहे हैं आपके खिलाफ़... उन्हें...'

वह मुस्कुरायी, 'मैं आपकी बहुत इज़्ज़त करती हूं. आपने हमेशा मेरा हौसला बढ़ाया है...'

'आज जाने क्यों चिंता हो रही है राम कुमारी जी.'

'चाचा आपकी रामकुमारी तो उसी रोज़ मर गयी, जिस रोज़ उसके पति को सरेआम मारा गया और उसकी इज़्ज़त रईसों ने उतारी. अब जो राम कुमारी आपके सामने है... वह राम कुमारी नहीं है, राजू है. वह न तो मौत से डरती है और न पैसे के लिए जी रही है, वह तो बस एक आवाज़ है... ज़ुल्म के ख़िलाफ़...'

'राम कुमारी जी...?' वे भावुक हुए, 'आप इस बार मेरी बात मान जाइए. अगली बार नहीं मना करूंगा. तब वे शायद बिल में छिप जाएंगे.'

'चाचा जी मेरी समाधि पर फूल नहीं चढ़ाएंगे. मगर मैं जानती हूं कि आज नहीं, तो कल कोई रामकुमारी कामयाब होगी.. पर यह कामयाबी लड़ने से आएगी, पीछे हटने से नहीं...'

'राम कुमारी जी ..' वे भावुक हो आए.

'चाचा जी साफ़-साफ़ बोलिए.' वह बिफरी, 'वे लोग मुझे मार देंगे यही न कहने आए हैं आप? आप सजग करने आये हैं कि डराने? मुझे डर होता तो चुनाव नहीं लड़ती. मुंडा बाबू मुझमें एम. एल. ए. देखते थे, आप मौत... पर मैं ख़ुद में क्या देखती हूं कोई नहीं जानता. ...मैं ख़ुद में राजू को देखती हूं. कितनी राम कुमारियों की हत्या करेंगे वे...? उन्हें मेरा संदेश दीजिए कि एक दिन औरत के हाथों उन्हें हारना होगा... यह ज़ुल्म लोकतंत्र के पिछवाड़े में बैठ कर करना बंद हो जाएगा....' उसकी आंखों में कुछ पलों के लिए राजू का चेहरा उभर आया... गुंडों से मरने तक अकेले जूझता हुआ राजू!'

रात भीग रही थी. रामकुमारी प्रचार से थकी हुई थी. राम किंकर बाबू ने कहा,'ईश्वर आपकी रक्षा करें... सचेत रहिएगा.'

राज कुमारी ने यह बात किसी को नहीं बतायी. रात स्वप्न में उसने देखा कि एक लाल धब्बा बिखरा, फिर वह हवा में उड़ा और फिर नीले आसमान में बदल गया...

सितारों के बीच राजू ने उसे बांहों में भर लिया!

□

मित्रो राम कुमारी मारी गयी. चुनाव से दो दिन पूर्व उसे गोलियों से छलनी कर दिया गया. उसे किसने मारा? कैसे मारा ? चुनाव का क्या हुआ? अपराधी पकड़े गये कि नहीं? ...पर ये सब सवाल हैं, रहने दीजिए. इस कहानी का सबसे सकारात्मक पक्ष यह है कि आज भी जब चर्चा चलती है, तो लोग यही कहते हैं कि माधवपुरा के इतिहास की वह एक ऐसी पहली लोक-नायिका थी, जिसने एक बारगी लोगों को यह विश्वास दिलाया कि यहां से कोई औरत भी चुनाव जीत सकती है! कक्का का भी यही मानना है कि उसने अपनी हत्या के लहू से एक अपूर्व इतिहास रचा!

'कक्का ?' मैंने भारी मन से पूछा.

'क्या?' वे दुखी होकर बोले.

'माधवपुरा में कोई स्मारक तो होगा राम कुमारी जी का?'

'नहीं.' कक्का ने कहा, 'मगर राम कुमारी की चर्चा करो, तो दस बातें निकल आती हैं... आंसू की एक नदी बहने लगती है.'

'मतलब?'

'वह मरी नहीं है किसी की याद में.' कक्का ने उदास होकर कहा, 'गोलियों से छलनी उसकी शवयात्रा में लाखों लोग शामिल हुए थे... मैं भी गया था ...'

'कक्का मैं बड़ा होकर राम कुमारी पर फ़िल्म बनाऊंगा.'

'नाम क्या रखोगे?'

'आप कहिए?'

'अर्द्धनारीश्वर!'

'नहीं कक्का! हज़ार पंखों का एक आसमान.'

कक्का आसमान की ओर देखने लगे. उन्हें लगा, जैसे राम कुमारी कहानी सजीव हो उठी हो. नारी शक्ति की सशक्त प्रतिमा थी राम कुमारी. आसमान में पंख लगाकर उड़ने वाली नीलांशी!

अचानक किसी ने बगल के पेड़ पर पत्थर मारा, तो हज़ारों पंख आसमान में तैर गये!

प्रिंसिपल, आर. डी. एस. कॉलेज़
सालमारी, कटिहार.

परचा

नाद... घंटा नाद
निरंतर टकराता हुआ
नादब्रह्म का विस्तारित वृत्त
छू गया... कान... मन... अंगुली
क़लम के सिरे को...
आधा परचा हो गया लिखकर,

काफ़ी है इतना... पैंतीस अंकों के लिए
डिग्री और नौकरी हासिल करने के लिए
क्लर्क की.... या पियून की तो भी...
शेष परचा तौल पर है,
प्रतिकूल समय में दमाग्रस्त मम्मी के दुख पर
बढ़ी हुई आयु की बहन की धुंधुवाती उम्मीदों पर...
नन्हें भाई-बहनों के झुलसते हरित स्वप्नांकुरों पर...

पीछे के बेंच से कंपास की नोक सट गयी है पीठ में
बदलता जा रहा है उनका स्वरूप व्याकुल है वह
धारधार नुकीला छुरा बनने के लिए
पांव की पिंडली के पास उसके मालिक का
कोरा परचा फड़फड़ा रहा है.
सुपरवाइज़र की दक्ष-दृष्टि
क्लास रूम के दरवाज़े के पार टिकी हुई है
(इस देखने या न देखनी की होगी शायद
दस...बीस...चालीस...पचास...)
अब ले ही लेना चाहिए मुझे
पीछे का परचा लिखने के लिए
एक घंटा पचास मिनट हैं अभी शेष
होना ही चाहिए पूरा परचा लिखकर
उसके मालिक को प्रथम पांच में जो आना है.
कंपेटिटिव एक्जैम के लिए आजमाइश
कम-अज-कम एम. कॉम के लिए एडमिशन.
मुझे केवल इतना ही करना है
उसका परचा लिखकर देना है
उसके द्वारा दिये गये परीक्षा-शुल्क के एवज में...

मराठी से अनुवाद :

भगवान वैद्य 'प्रखर', *३० गुरुछाया कॉलोनी, साईनगर, अमरावती-४४४६०७.*
मो. ९४२२८५६७६७.

उज्ज्वला केलकर की कविताएं

पुण्य स्मरण

उस महापुरुष का पुण्यस्मरण
पुतले का अनावरण
चरित्र का गुणगान,
पिछले कई शतकों में
नहीं हुआ ऐसा महामानव
न होगा अगले कई शतकों में,

भीगे स्वर...
पनीली आंखें...
अभिभूत मन...

उनके बतलाए मार्ग पर चलने का
करें संकल्प...
तालियां... ज़ोरदार तालियां...

उनके कार्य की ज्योत
जलाए रखने का करें संकल्प...

फिर एक बार ज़ोरदार तालियां...

अनेक शब्द...
अनेक संकल्प
पुतले के चरणों में करके अर्पण
निकल गये सारे रिक्त नैनों में,
खुले मन से,
महापुरुष का पुतला
समेटता रहा उनके संकल्पों के क़फ़न.

१७६/२, 'गायत्री', प्लॉट नं. १२,
वसंत साखर कामगार भवन के पास,
सांगली-४१६४१६.
मो. : ९४०३३१०१७०

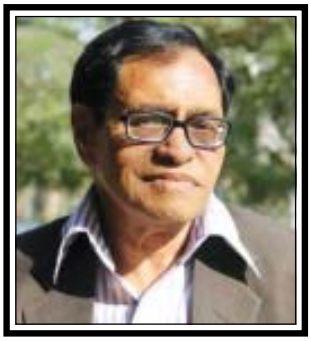

अपडेट

कमलेश भारतीय

१७ जनवरी १९५२; होशियारपुर (पंजाब).
छः कथा संग्रह, चार लघुकथा संग्रह. सत्रह वर्ष की उम्र से साहित्य लेखन की यात्रा जारी है. सन १९७३ से १९९० तक शिक्षक, प्राध्यापक व प्राचार्य के पद पर कार्य करने के बाद दैनिक ट्रिब्यून चंडीगढ़ में उपसंपादक के रूप में कार्य. ट्रिब्यून में कार्य करने के बाद हरियाणा ग्रंथ अकादमी के उपाध्यक्ष का कार्यभार संभाला. तीन वर्ष तक अकादमी की कथा पत्रिका 'कथा समय' का संपादन.

: प्रकाशित कृतियां :

महक से ऊपर, मस्त राम ज़िंदाबाद, मां और मिट्टी, इस बार, एक संवाददाता की डायरी, जादूगरनी, शो विंडो की गुड़िया, ऐसे थे तुम, इतनी-सी बात, दरवाज़ा कौन खोलेगा. देश के चर्चित साहित्यकारों से साक्षात्कारों की पुस्तक 'यादों की धरोहर.'

: पुरस्कार :

सन् २००३ में केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली द्वारा कथा कृति 'एक संवाददाता की डायरी' को तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पचार हज़ार रुपये की राशि से पुरस्कृत किया. पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड की पाठ्य पुस्तकों में लघुकथाएं शामिल. हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला की ओर से वर्ष २०१० में देशबंधु गुप्त साहित्यिक पत्रकारिता पुरस्कार और एक लाख रुपये की राशि. अनेक भाषाओं में रचनाएं अनूदित.

: संप्रति :

स्वतंत्र लेखन व पत्रकारिता. नभछोर सांध्य दैनिक से संबद्ध.

मैं एक पत्रकार हूं और वक़्त की हर करवट से अपडेट रहना यह मेरी आदत है. पाठक को अपडेट करना यह मेरी नौकरी है. यदि चौकन्ना न रहूं तो कुछ भी छूट जाये और एडीटर का एक्सप्लेनेशन लेटर मिल जाएगा कि तुम कहां थे? जब इतनी बड़ी घटना हो रही थी. सच. पूरी तरह चौकन्ना रहना एक पत्रकार की आदत भी है और मज़बूरी भी.

ऐसे ही एक दिन किसी सोर्स का फ़ोन आया कि मिर्चपुर गांव में दलित बस्ती में आग लगा दी गयी है. एक पिता और उसकी विकलांग बेटी इस आग में जल कर स्वाहा हो गये हैं. बहुत बड़ी घटना. बहुत बड़ी बात. एडीटर का ऑर्डर कि यदि कुछ बड़ा घट जाये तो वहां पहुंचने से पहले मुझे अपडेट कर दो ताकि मैं न्यूज़ रूम को अलर्ट रखूं कि भारती, बड़ी मछली मारने गया है. उसकी स्टोरी का इंतज़ार करो और कैरी करो. मैंने सूचित किया पर उस दिन एडीटर किस मूड में था. पता नहीं. पूछा — कितने किलोमीटर होगा यहां से वह मिर्चपुर गांव?

— कम से कम सत्तर किलोमीटर.

— नहीं. फिर ऑन द स्पॉट न जाकर जो अपडेट सोर्स से मिल रहा है उसी के आधार पर ख़बर बना दो. ख़र्च और टीए डीए से बचो.

मैं हैरान. क्या स्पॉट पर जाये बिना मैं इस ख़बर से कोई न्याय कर सकूंगा? नहीं. मुझे तो गुरूमंत्र ही मिला कि ऑन द स्पॉट जाकर ही इंसाफ़ कर सकोगे. सुनी-सुनायी बात से धोखा लग जायेगा. पर क्या करूं?

मैं सिविल अस्पताल चल दिया. मैं अपने अनुभव से जानता था कि शव पोस्टमार्टम के लिए सिविल अस्पताल ही लाये जायेंगे और मेरा अनुभव काम आया. सचमुच सिविल अस्पताल में इस बड़े कांड के बाद भीड़ थी छोटे–बड़े की. अंदर पोस्टमार्टम हो रहा था और बाहर बन रही थी रणनीति सरकार को घेरने की. ऐसा मौक़ा विपक्ष कैसे खो दे? क्यों हाथ से जाने दे? डीसी की गाड़ी भी लग गयी थी और दिवंगत का बड़ा

बेटा रोये जा रहा था.

पोस्टमार्टम पूरा हुआ. डीसी ने तुरंत दिवंगत के बेटे को अपनी लाल बत्ती वाली गाड़ी में खींच लिया और ऑर्डर दिया कि डैड बाडीज़ लेकर गांव आ जाओ ताकि जल्द से जल्द अंतिम संस्कार हो सके और मामला दबाया जा सके. इससे पहले कि गाड़ी को ड्राइवर स्टार्ट कर पाता छोटे-बड़े नेताओं ने गाड़ी का घेराव कर लिया और नारेबाजी के बीच बेटे को गाड़ी से बाहर खींच लिया. डीसी देखता ही रह गया और इतने में एक दलित की रक्षा के आंदोलन का जन्म हो गया. सरकार चौकन्नी रह कर भी फेल हो गयी. बड़ा बेटा जो सबसे बड़ा मोहरा था वह छिटक करके हाथ लग गया. नारेबाजी के बीच पोस्टमार्टम रूम से शव लेकर भीड़ गांव की ओर बढ़ चली. यानी साफ़ था कि अब इन शवों की माटी ख़राब होने वाली थी. इन शवों को तब तक रखा जाने वाला था जब तक कि बड़ी रक़म की घोषणा सरकार कर न दे और सरकार की इमेज़ को बट्टा न लग जाये. यह राजनीति का खेल शुरू हो गया था. कैसे एक घटना को आंदोलन में बदला जा सकता है यह जादूगरी मैंने अपने सामने होती देखी.

मैं एक रिपोर्टर हूं और मूकदर्शक भी. हमारा भविष्य तो महाभारत के संजय ने तय कर दिया था कि बस अच्छे और बुरे के बीच युद्ध सिर्फ़ देखना है और सुनाना है. ख़ुद कुछ नहीं करना है. वैसे यह कैसी भूमिका हुई?

महाभारत के समय से यही भूमिका चलती आ रही है पर मैं कभी-कभी इसका उल्लंघन कर जाता हूं. मैंने प्रदेश के सीएम को फ़ोन लगा दिया. ऐसा नहीं कि उनको अपडेट नहीं था. पूरा था और उनका कहना था कि लोग ग़ुस्से में होंगे और ऐसे में मैं गांव उनके घर गया तो क्या से क्या हो जाये? मैंने सुझाव दिया कि अभी तो शुरुआत है और ग़ुस्सा सह कर और जो भी राशि परिवार के लिए घोषित करनी है कर दीजिए तो मामला शांत होने की ओर बढ़ जायेगा. नहीं तो विरोधी इसे हथिया ही चुके हैं और फिर कहां से कहां पहुंच जाए यह कहना और कल्पना करना मुश्किल होगा. वे अपनी चापलूस एज़ेंसियों पर निर्भर थे और चापलूस मंत्री पर कि आपकी जगह मैं जाता हूं गांव. आप बाद में किसी दिन आ जाना. सारा ग़ुस्सा मैं सह लूंगा.

बस; यह चूक इतनी भारी पड़ेगी शायद सीएम ने भी सोचा न होगा. मंत्री महोदय को गांव वालों ने खदेड़ दिया बुरी तरह. वे अपना विश्वास बनाए न रख सके और उल्टे पांव लौट आये पर तब तक विरोधी पार्टियों को मोर्चा लगाने का पूरा समय मिल गया था. दूसरे दिन भी सीएम नहीं आये. राजधानी में बैठे-बैठे ही परिवार के लिए दस लाख रुपये की राहत घोषित कर दी और अग्निकांड के बाद गांव में हुई हिंसा में जो लोग गंभीर रूप से घायल हुए उनके लिए पचास हज़ार और जो कम से कम घायल हुए उन्हें पच्चीस-पच्चीस हज़ार रुपये की राशि देने की घोषणा कर दी.

इस घोषणा के बावजूद अंतिम संस्कार दूसरे दिन शाम को किया गया और तब तक गांव को दलित और दबंग के अखाड़े में बदल दिया गया था और चैनलों पर रिपोर्टर्स चीख़ चीख़ कर कह रहे थे कि दबंगों ने दलितों की बस्ती में आग लगा दी. देखते-देखते गांव का भाईचारा तहस-नहस हो गया. एक छोटा-सा, साधारण-सा गांव देश के चैनलों की सुर्खियां बन गया. हैडलाइन बन गया. इसी बीच विरोधी पार्टियों ने दलितों को उठा कर ज़िला सचिवालय के सामने प्रदर्शन और धरने पर पहुंचा दिया यानी मजमा पूरा जमा दिया.

आख़िरकार घटना थी क्या? गांव भर में सुना कि दबंगों के परिवार का एक दामाद मोटरसाइकिल के पीछे बैठा था और बाइक सवार उसका रिश्तेदार दलितों की बस्ती से निकल रहा था. इतने में एक पालतू कुतिया अपने जन्मजात स्वभाव से मोटरसाइकिल के पीछे भौंकती हुई दौड़ी. दामाद कुछ डरा और सोचा कि कहीं काट न ले सो एकदम से बूट की नोक उस पर मार दी. घायल कुतिया किकियाती हुई ग़रीब मालिक के पास पहुंची. मालिक को बहुत प्यार था अपनी रूबी कुतिया पर. दो चार लोग इकट्ठे किये और दबंगों के घर चला गया कि देखो कैसे आपके बटेऊ ने हमारी कुतिया को ठोकर मार कर घायल कर दिया. इतनी-सी बात का बतंगड़ बन गया और धक्कामुक्की कर दबंगों ने दलितों को वहां से निकाल दिया पर यह भी सोचा कि दलितों की इतनी हिम्मत कैसे? हमारे घर एक कुतिया के घायल होने का इल्ज़ाम लेकर आ गये? इनको इनकी औक़ात बतानी चाहिए. फिर कभी ऐसी हिम्मत न कर सकें. आंखों ही आंखों में इशारे हुए और कब दलित बस्ती धुआं धुआं हो गयी पता ही नहीं चला. वह तो विकलांग बेटी आग की लपटों से किसी तरह बच कर निकल नहीं सकती थी और बूढ़ा बाप बेटी को जलते देख नहीं सकता था और

मोह का मारा छोड़ कर जा भी नहीं सकता था. इससे पहले कि परिवार का ध्यान जाता बाप-बेटी आग की लपटों में स्वाहा हो गये. सिर्फ़ विकलांग की तिपहिया साइकिल इस बात की गवाह थी कि वहां कितनी निर्ममता हुई होगी. इस तरह एक कुतिया के काटने के भय मात्र से बड़ी घटना घट गयी कि देश की सुर्खियों में छा गयी. चैनल्स की ओर से लाइव टेलीकास्ट के प्रबंध आनन–फानन में हो गये. सबकी नज़रें मिर्चपुर के अपडेट पर टिकी थीं.

घायल अस्पताल में, और कम घायल घोषित राशि के लिए छोटी-मोटी चोट का प्रदर्शन करते घूम रहे थे या कुछ अपने आप पर चोट मार रहे थे कि एक पट्टी अगर कुछ दिन बंध भी गयी तो पच्चीस हज़ार तो कहीं नहीं गये.

गांव की दलित बस्ती में किसी के सिर, किसी के हाथ पर तो किसी के पैर पर पट्टियां ही पट्टियां दिख रही थीं यानी पच्चीस–पच्चीस हज़ार का सर्टिफ़िकेट. यह खेल अलग से शुरू हो गया था घायल होने का. सरकार इस घटना से छुटकारा पाना चाहती थी ताकि इसकी इमेज़ पर असर न पड़े और हाईकमान भी नाराज़ न हो लेकिन हाईकमान को पार्टी के विरोधी ही अपडेट करते जा रहे थे और इस तरह जहां सीएम को विरोधियों के प्रहार सहन करने पड़ रहे थे वहीं अपनी पार्टी के विरोधियों की चालों से भी सावधान रहना था. सच कितना बड़ा सच राजनीति का कि विरोधियों से तो बाद में निपट लेंगे पहले अंदर के लोगों से तो निपट लें.

डीसी ऑफ़िस के बाहर धरना और विरोधियों की बयानबाजी के बीच आख़िर सीएम ने गांव जाकर लोगों के बीच ढ़ाढ़स बंधाने का फ़ैसला किया.

सीएम गांव पहुंचे पूरे लाव लश्कर के साथ तो विरोधी पहले ही दलित बस्ती के लोगों को पट्टी पढ़ा चुके थे. सीएम के गाड़ी से उतरते ही घूंघट काढ़े महिलाओं की एक टोली ने छाती पीट-पीट कर स्यापा शुरू कर दिया. यह भी कहे जा रही थीं कि हमें इस गांव में नहीं रहना. चाहे पाकिस्तान भेज दो लेकिन यहां दबंगों के बीच नहीं रहना. एक चौपाल पर मुश्किल से बात के लिए दलितों को इकट्ठा किया जा सका. सीएम ने परिवार के एक लड़के को सरकारी नौकरी, दस लाख रुपये और दलितों को दो–दो क्विंटल गेहूं दिये जाने की घोषणाएं कीं. शोर-शराबे के बीच कुछ तालियां और फिर धूल उड़ाती गाड़ियां गांव की सीमा से ओझल हो गयीं.

अब एक और दिलचस्प बात सामने आयी कि जो वृद्ध व्यक्ति अग्निकांड में जलकर राख़ हुआ उसकी दो

ग़ज़लें

✍ राजेंद्र तिवारी

(१)

मुफ़सिल की जवानी के लिए सोचता है कौन।
अब आंख के पानी के लिए सोचता है कौन ।।
प्यास अपनी बुझाने में हैं मसरूफ़ सभी लोग,
दरिया की रवानी के लिए सोचता है कौन।।
बेताब नयी नस्ल है पहचान को अपनी,
पुरखों की निशानी के लिए सोचता है कौन ।।
मिट्टी के खिलौनों पे फिदा होती है दुनिया,
मिट्टी की कहानी के लिए सोचता है कौन ।।
सब अपने लिए करते हैं लफ़्ज़ों की तिजारत,
लफ़्ज़ों के मआनी के लिए सोचता है कौन ।।

(२)

यूं तो टूट है बारहा उम्मीद।
फिर भी ज़िंदा है बेहया उम्मीद।।
कामयाबी की इब्तिदा उम्मीद।
दिल के हर दर्द की दवा उम्मीद ।।
हौसले को बनाये रखती है,
इतना करती है फ़ायदा उम्मीद।।
कुछ तअल्लुक नहीं रहा फिर भी,
मेरा उसका है वास्ता उम्मीद ।।
आदमी बुत है एक मिट्टी का,
उससे रखते हैं आप क्या उम्मीद ।।
मुश्किलों में भी ढूंढ़ लाती है,
अपनी मंज़िल का रास्ता उम्मीद ।।
नाउम्मीदी तो मौत है 'राजेंद्र',
ज़िंदगी का है फ़लसफ़ा उम्मीद ।।

'तपोवन', ३८-बी,
गोविंद नगर, कानपुर
मो. : ६३८६६८०७६८/८३८१८२८९८८

शादियां हुई थीं. बड़े बेटे को तो सरकारी नौकरी की घोषणा हो गयी लेकिन वह विधवा बोली कि मुझे क्या मिला? वह तो दूसरी औरत का बेटा था. पति तो मैंने खोया. मेरे बेटों को सरकारी नौकरी दी जाये नहीं तो मैं धरने से नहीं उठूंगी. लो सरकार के हाथ पांव फूल गये. एक अजब उदाहरण बनने जा रहा था कि एक साथ तीन–तीन बेटों को नौकरी दी जाये. साथ ही सरकारी क्वार्टर भी दे दिये. उधर सचिवालय के सामने धरने पर बैठे लोगों को चंदा भी मिलने लगा और गांव का एक बेरोज़गार युवा, पढ़ा लिखा रातों-रात नेता बन कर उभरा. धुआंधार भाषण. चंदा ही चंदा. कवरेज़ ही कवरेज़. दिल्ली से नेता लोग रोज़ गांव के दौरे पर आने लगे. बहुत से संगठन रिपोर्ट लेने आते. मुझे भी कभी धरना छोड़ कर तो कभी दूसरी ख़बरें छोड़ कर गांव भागना पड़ता.

कम से कम आधा दर्ज़न बार तो गांव गया नेताओं की कवरेज़ करने. देश के सभी बड़े दलित नेता दौरे पर आये और हर बार वो छाती पीटती औरतें स्यापा करतीं. फिर टूटे और राख़ हुए मकानों का आंखों देखा हाल सुनाया जाता. बताते कि कैसे दहेज बना रखा था. संदूक खोल कर दिखाते, अधजली चुनरियां और लाल जोड़े वाले सूट.

क्या करें? कैसे शादी करें? कैसे टूटे मकान की दीवार बनायें? हर दलित नेता फ़ायर ब्रांड भाषण देकर चला जाता. आज कोई उन बड़े नेताओं से पूछे कि मिर्चपुर कहां है तो वे बड़े नेता याद कर बता भी न सकेंगे. सीएम ने मकानों के पुनर्वास और निर्माण का ख़र्च देने की घोषणा भी कर दी. पर धरना वहीं का वहीं. प्रदर्शन और नारेबाजी वहीं की वहीं. सीएम का पुतला जलाना ज़ारी. पार्टी के अंदर के विरोधी हाईकमान को भी ले ही आये. गांव और सीएम को कानों कान ख़बर तक नहीं होने दी. ये होती है राजनीतिक गोटियां चलने की चाल.

ख़ूब कैमरे फ़्लैश हुए और लगा कि सीएम तो गये. कुर्सी पर कोई और बैठेगा. पर सब अपनी अपनी चाल पर. कुर्सी सही सलामत. धरना लंबा खिंचता रहा. आख़िर चैनल्स वाले पीछे हटे और कवरेज़ कम होते ही युवा नेता बन कर उभरे व्यक्ति ने समझौता किया और अपनी पढ़ाई के आधार पर एक बढ़िया सरकारी नौकरी पायी और मैदान से कब हट गया किसी को कानों कान ख़बर भी न हुई. बल्कि ख़बर तब हुई जब मृतक के बड़े बेटे ने चंदा खा जाने का आरोप लगाया. यानी रंग चोखा. बेरोज़गारी में चंदा खाया और दबाब बना कर सरकारी नौकरी पायी. क्या खेल रहा फर्रुख़ाबादी.

इधर एक और नेता उठा. उसने गांव के प्रदर्शनकारियों को अपने फ़ार्म पर तंबुओं में ठिकाना बना दिया कि जब तक आप लोगों को कहीं और बसाया नहीं जाता तब तक मेरे फ़ार्म हॉउस में रहो. लो हमारी कवरेज़ में एक फ़ार्म हाउस भी जुड़ गया. अब हर दलित नेता उनकी दुर्दशा बयान करने के लिए उस फ़ार्म हॉउस को तीर्थ मान कर पहुंचने लगा. टीवी चैनल्स को भी नया ऐंगल मिल गया स्टोरी दिखाने का. गांव दृश्य से ग़ायब होने लगा और फ़ार्म हॉउस देने वाला नेता कवरेज़ पाकर बड़ा नेता बनने लगा. चुनाव लड़ने का आधार बनाने लगा. लड़ा भी. बेशक हार गया.

उधर गांव में दबंगों के लड़कों की धर–पकड़ बढ़ती गयी. बहुत से लड़के ग़ायब हो गये या गांव छोड़ गये और मांएं बेटों को देखने को तरस गयीं. बेटे गांव आते तो धर लिये जाते. गांव में दलितों की सुरक्षा के लिए पूरी एक फौजी टुकड़ी तैनात कर दी गयी. यानी करोड़ों रुपये ख़र्च सिर्फ़ सुरक्षा पर. सचमुच एक कुतिया को बूट की नोक से मारने की छोटी-सी घटना ने गांव की सारी शांति और भाईचारा ख़त्म कर दिया.

बहुत बार पंचायतें और खापें भी जुटीं लेकिन भाईचारा गांव से ऐसे खोया जैसे गधे के सिर से सींग जो फिर कभी नहीं दिखे. इस बीच पांच साल बीत गये. सरकार बदल गयी. और नयी सरकार ने भी गांव के भाईचारे को खोजने की बजाय नयी जगह बसाने का फ़ैसला सुनाया और नये सीएम महोदय उस एलॉट की हुई भूमि के पूजन के लिए पहुंचे और इस तरह दलितों के वोट अपने पक्ष में कर लेने की चाल पर मन ही मन मुस्कुराए.

गांव के दिन तो नहीं फिरे लेकिन राजनीतिक पार्टी के दिन ज़रूर फिर गये. जैसे इनके दिन फिरे वैसे सब पार्टियों के दिन फिरें... कहानी ख़त्म नहीं हुई लेकिन यह देश के दूसरे प्रदेशों और दूसरे गांवों में अक़्सर पढ़ने-सुनने और टीवी चैनल्स पर देखने को मिल जाती है लेकिन मिर्चपुर में भाईचारा क्यों नहीं लौटा यह कोई यह अपडेट क्यों नहीं कर पाता ...?

१०३४ बी, अरबन एस्टेट २,
हिसार १२५००५ (हरियाणा).
मो. : ९४१६०४७०७५

काल-कोठरी और कंदीलें

डॉ. शैलेंद्र शर्मा

शिक्षा : एम. बी. बी. एस.,
एम. डी. इन मेडिसिन.
१७ वर्ष की आयु में 'सारिका' में पहली कहानी प्रकाशित, फिर 'धर्मयुग' में लंबी कहानी का प्रकाशन. कुछ अन्य पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित. कई प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर के सम्मेलनों में पत्रिकाओं का संपादन व लेखन.
सांस्कृतिक एवं मंचीय गतिविधियों के संचालन में भी रुचि.
एक स्थानीय न्यूज़ चैनल पर पांच वर्षों तक स्वास्थ्य विषयक हिंदी में 'मेडीवर्ल्ड' कार्यक्रम का संचालन. 'कथाक्रम', तथा 'लमही' पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशनार्थ स्वीकृत.

बहुत सी ऐतिहासिक इमारतों से भरा-पूरा एक निर्जीव-सा शहर, जो हर लिहाज़ से एक मरुस्थल में बदलता जा रहा था. उस शहर की ज़िला जेल, और जेल की महिला बैरक.

दिन के दो बजना चाहते थे. इंतज़ार की हदें पार हो चुकने को थीं. महिला बैरक में निरुद्ध कुछ महिला बंदी, बैरक के बाहर अहाते में खड़ी थीं. माथे पर चिंता की लकीरें थीं. दरअसल बच्चे अभी तक लौटे नहीं थे. ये छोटे बच्चे, जिनकी उम्र छह साल से कम थी, अपनी मांओं की गुनाहगार परछाइयों तले, ग़लत सही, और अंधेरे उजाले की समझ से दूर, धीरे-धीरे बड़े हो रहे थे.

ये नन्ही पौध, जिसे अपराध की दुनिया का ज़रा भी भान न था, एक सरकारी नियम की सिंदूरी छांव के तहत, जेल में निरुद्ध थे. वह नियम था कि इतने छोटे बच्चे, अपनी अपराधिनी मांओं के साथ जेल में रह सकते थे. छह वर्ष की उम्र तक.

बड़े जेलर साहब के निरंतर और अथक प्रयासों से यह दिन संभव हुआ था, कि इनमें से सात बच्चे, शहर की बाहरी सीमा पर स्थित हिंदी माध्यम के एक निजी पब्लिक स्कूल में पढ़ने जाते थे. जेल की एक वैन इन बच्चों को लाती और ले जाती थी. अमूमन बच्चे साढ़े बारह बजे तक आ जाते थे, लेकिन आज तकरीबन डेढ़ घंटा ऊपर हो गया था.

'बड़ी बहन जी, ज़रा गेट तक जाकर देख लो, बच्चों की गाड़ी तो नहीं आयी है.' सुगना ने अनुनय-विनय करते हुए अहाते में बैठी एक महिला आरक्षी से कहा.

'मैं अभी तो झांक आयी लाली, गेट सूना पड़ा है.' अधेड़ उम्र की महिला सिपाही बोली.

'कलेजा डूबा जा रहा है, कुछ अनहोनी न हो गयी हो.' अब बारी गोमती की थी.

'अनहोनी होने को तो अब क्या बचा है.' सुगना बुदबुदाई.

'अपशकुन की बातें ना बोल, सुगना.' गोमती ने घुड़की लगायी.

अधेड़ उम्र की महिला आरक्षी, जो शिव-भजनों की एक चौपतिया पुस्तिका में डूबी थी, जोर से बोली, 'खाना ले लिया तुम सबन्न ने ?'

'बच्चन के बिना कौर गले से ना उतरेगा.' सुगना बोली.

'तू खाना ले आयी क्या?' गोमती ने सुगना से पूछा.

'हां, ले आयी हूं. कमरे में मेज़ पर ढक के रख दिया है.'

'मैं भी ले आऊं, फिर मेस बंद हो जायेगी.' कहकर गोमती मेस की ओर चल दी.

सुगना अहाते में ज़मीन पर बैठ गयी. उसके शिशु का नाम आरव था. यह नाम भी बड़े जेलर पवार साहब का दिया हुआ था. उसने सोचा, आरव आ जाये तो उसे खाना खिला कर कपड़े सिलाई का आज का बचा काम पूरा करूं. शाम तक का काम सुबह ही बता दिया जाता था. पूरा न होने पर रात को भी काम करना पड़ता था. कभी–कभी तो आधी रात तक.

सुगना अपने प्रेमी अमित के साथ मिल कर अपने पति की हत्या के अपराध में उस जेल में निरुद्ध थी. तीन साल के क़रीब हो चले थे. अदालत में सुनवाई चल रही थी. रेगिस्तान के छोर न दिखने वाले अंतहीन सफ़र के से दिन.

चिलचिलाती धूप और पपड़ाये सूखे होंठों पर पानी की चंद बूंदों–सा बच्चे का साथ.

जेल में बंद इन औरतों के लिए जैसे किसी ने घड़ी की सुइयां जकड़ कर रोक दी थीं. बंधी बंधाई उबाऊ दिनचर्या. सुबह-तड़के नहाना-धोना, फिर एक घंटे की प्रार्थना सभा का भजन-कीर्तन, फिर चाय, फिर आधे घंटे का योग और व्यायाम, उसके बाद बड़े हॉल में काम.

बीच में खाने की छुट्टी. फिर दोबारा काम शाम तक. शाम को एक घंटे का प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम. फिर शाम का खाना. फिर अगर दिन का बड़े हॉल वाला कोई काम बाक़ी रह गया हो तो उसे पूरा करना. नहीं तो बैरक में अगल–बगल लाइन से बिछे बिस्तरों पर सोना.

दूसरे दिन फिर वहीं से शुरू.

ऐसे में आरव का उसके पास होना, एक बहुत बड़ा संबल था, एक बहुत बड़ा सुकून. बैरक के बड़े वाले हॉल में अपनी और साथिनों के साथ उसको भी हाड़ तोड़ काम करना पड़ता था. उसके जैसी आठ-दस औरतों के ज़िम्मे कपड़े सिलाई का काम था.

सुगना को बच्चा साथ होने की वजह से काम में कुछ छूट मिल जाती थी. सुबह आरव को जल्दी उठाना, फिर तैयार करके स्कूल भेजना. दोपहर को वापस आने पर खाना खिलाना. शाम को उसे स्कूल में मिला गृह-कार्य पूरा कराने को शीला बहनजी के पास ले जाना, जो थीं तो उन सबकी तरह एक महिला बंदी, लेकिन बहुत पढ़ी-लिखी थीं.

शीला बहनजी की ड्यूटी ज़्यादातर पढ़ाई वाले कमरे में रहती थी. जो छोटे बच्चे स्कूल नहीं जाते थे, उनके खिलौने भी उसी कमरे में रखे रहते थे, और बहनजी स्कूल वाले बच्चों का गृह-कार्य भी उन्हें उसी कमरे में बैठा कर पूरा कराती थीं. एक तरह से जेल में पढ़ाई-लिखाई की ज़िम्मेदारी शीला बहनजी की ही थी. शाम को होने वाला प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम भी उनके ही ज़िम्मे था. क़रीब तीस-चालीस संवासिनियां उस कक्षा में जाती थीं.

सुगना की पढ़ाई दसवीं में फ़ेल होने के बाद बीच में छूट गयी थी. कई बार सोचती थी, जब आरव शाम को जाता है, तो वह भी और बंदिनियों की तरह जाकर कुछ टूटे हुए धागे उठा कर फिर से बुन ले, फिर से कागज़-पेन उठा ले.

जेल में इतने सब प्रयास, अंधेरी खोहों में जुगनुओं को भरने की कोशिश, पिछले जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट पवार साहब जी के प्रयासों से संभव हुई थी, जो एक विशेष सरकारी योजना के तहत, महाराष्ट्र से डेपुटेशन पर इस जेल में आये थे. ताज़ी बयार के एक झोंके की तरह, दो-ढाई साल के लिए.

उन्होंने सुबह का भजन-कीर्तन शुरू कराया, व्यायाम और योग की कक्षाएं शुरू करायीं. छोटे बच्चों के लिए प्ले-हॉउस बनवाया. पढ़ने वाले बच्चों का स्कूल में दाख़िला करवाया. स्वयंसेवी संस्थाओं से उनकी स्कूल की यूनिफ़ॉर्म, सुबह का टिफ़िन-बॉक्स और उसमें दिये जाने वाले नाश्ते का प्रबंध कराया. जेल के अहाते में खाली पड़ी जगह पर बागबानी शुरू करवायी, फूलों के पौधे लगवाये. सब्ज़ियों का किचेन-गार्डन बनवाया.

फिर अचानक जैसे अगस्त के बादलों में छुपे सूरज की तरह वे प्रकट हुए थे, वैसे ही लुप्त हो गये. उनके जाने के दिन, उनकी विदाई कार्यक्रम में कैसे बुक्का फाड़ कर रोये थे लोग. लगभग सारी संवासिनियां.

लेकिन अभी उन्हें गये ज़्यादा दिन नहीं हुए थे, इसलिए काम अभी उसी गति से चल रहा था. सुबह की प्रार्थना सभा, शिक्षा का कार्यक्रम, फूलों और सब्ज़ियों के बग़ीचे की देखभाल, अभी तो कमोबेश वैसी की वैसी थी.

और इधर रेतघड़ी की रेत की तरह सुगना के दिन-रात धीरे-धीरे बीत रहे थे. अक़्सर उसे अपने सह-अभियुक्त अमित की याद आती और कलेजा वितृष्णा से फटने लगता. कैसे कर सकी थी वह दिल दहला देने वाला काम, आज भी समझ नहीं पाती. कैसे अपने आरव के बाप की सांसों को एक झटके से ख़त्म कर दिया था, उसने और अमित ने!

जब कोई महिला बंदी या आरक्षी उससे पूछती कि उसने हत्या जैसा जघन्य अपराध कैसे किया, तो वह ठंडी सांस भर कर कहती, 'ग़लती हो गयी थी, बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी.'

शायद समझ कुछ राह भूल गयी हो उस पल में. किंतु अच्छी तरह याद है, अमित का जादू सर चढ़ कर बोलता था उन दिनों. ऐसा लगता था कोई वशीकरण मंत्र फूंक दिया हो, उसके कान में. बैठ जाओ कहता, तो बैठ जाती. खड़ी हो जाओ कहता, तो खड़ी हो जाती.

उन दिनों ऐसा लगता था उसकी देह, उसका मन बना ही अमित के लिए था. किसी और को देख कर क्यों नहीं शरीर की सारी शिराएं अंगड़ाई लेने लगतीं? अमित के साथ के सारे पल, वसंत के पल थे. फूलों के, परागकणों के, तितलियों के, ख़ुशबुओं के पल. पोर-पोर में सरसराहट भर जाने के पल.

दो साल साथ रह कर भी उसका पति उसके मन में कोई बीज नहीं रोप पाया था, भले ही शरीर में पौधा अंकुरित हो गया था. संसर्ग के आत्मीय क्षणों में भी उसे लगता था, एक निर्जीव काठ के बुत की तरह पाताल में पड़ी हुई हो. एक काम था, जो जल्दी से ख़त्म हो, तो छुट्टी मिले.

और इस बाड़े के दूसरी तरफ़ अमित का प्यार था, उफनते हुए उद्दाम आवेग की एक अंतहीन यात्रा, धमनियों में हज़ार-हज़ार ज्वालामुखियों के फटने का सफ़र लपटों वाला. एक आग का दरिया होता, जिसमें दोनों अपनी हिचकोले खाती नाव को एक साथ चप्पुओं से खेते, पसीने में डूबते, हांफते मगर खिलखिलाते हुए किनारे से आ लगते.

आज कभी-कभी सोचती है सुगना, कि जिसके साथ भांवरें पड़ी थीं, इतना बुरा आदमी नहीं था वह. कभी हाथ नहीं उठाया, शायद ही कभी बहुत तेज़ लड़ाई हुई हो. ख़र्चे-पानी के पैसे भी, मंडी से लौट कर उसके हाथों में धरता. फिर भी उससे छुटकारा पाने की जुगत अमित के साथ मिलकर क्यों करी उसने, इसका कोई उत्तर नहीं है उसके पास.

शादी के पहले उसके गांव में, अमित और उसके घर पास-पास ही थे. एक ही जात-बिरादरी के होने के बावजूद दोनों के घरवाले एक दूसरे को बेहद नापसंद करते थे. दोनों के घरवालों को अमित और सुगना के बीच उगते संबंधों का भान था. एक आध बार खेत में, हाट-बाज़ार में, उन्हें साथ पकड़ा भी था.

तभी तो सुगना की शादी आनन-फानन में तय हुई थी, और शादी के आस-पास अमित को दूर किसी रिश्तेदार के यहां भेज दिया गया था. ससुराल में एक-दो महीने तो ठीक-ठाक निकले, बात वहां से गड़बड़ हुई, जब एक दिन सुगना ने पति के काम पर जाने के बाद अमित को घर के पास खड़ी एक गाड़ी के पीछे से झांकते हुए पाया.

अमित अक़्सर उसके घर आने लगा था. फिर एक योजना के तहत अमित को पति के सामने घर पर बुलवाया गया और दूर का रिश्तेदार कहकर परिचय करवाया गया. अमित जब भी आता, शराब और नमकीन लेकर आता. उसका पति और प्रियतम, साथ बैठकर शराब पीते, और देर रात तक नशे में धुत्त होकर बक-बक करते रहते.

तीन-चार बार तो अमित रात में उसके घर रुक भी गया था. उसे दूसरे कमरे में सुला दिया गया, और रात में पति की नज़रों से बच कर उसने अमित से प्यार भी किया था. उसे याद है, आरव शायद दो-ढाई महीने का था, रात में रोने लगा था. पति कहीं जग न जाये, इस आशंका से उसे अमित को बीच में ही छोड़ कर आना पड़ा था. सब कल की सी बात लगती है.

पति को रास्ते से हटाने की योजना भी अमित ने ही बनायी थी. अब कभी सोचती है, कितनी मूर्ख थी वह. कैसे

विश्वास कर लिया था उसने, कि वे दोनों पकड़े नहीं जायेंगे.

योजना तो ऊपर से पक्की, त्रुटिरहित ही बनी थी. अमित चुपचाप आया था, बिना बाइक के. उसने ख़ुद तो शराब कम ही पी थी, मगर उसके पति को धुत्त कर दिया था. रांपी से पति को ठिकाने लगाने के बाद, उसने सुगना की पीठ पर रांपी से ही हल्का-सा वार किया था, जिससे सुगना शक के दायरे से बाहर रहे. बिलबिला गयी थी सुगना.

अमित रात के अंधेरे में चुपचाप निकल गया था. थोड़ी देर बाद सुगना ने दरवाज़ा खोल कर शोर मचा दिया था. मोहल्ले में तुरंत जगार हो गयी थी.

उसके बाद के दिन तो दु:स्वप्न की तरह थे. पुलिस, थाना, कचहरी, अस्पताल में मेडिकल, पूछताछ, महिला इंस्पेक्टर के खुरदुरे हाथों के थप्पड़, रूह कंपाने वाली यातना. उससे बर्दाश्त नहीं हुआ था, टूट गयी थी वह, और सब कुछ उगल दिया था उसने.

फिर थाने में ही उसका अमित से सामना कराकर, पुलिस के घेरे में कड़ाई से पूछताछ. अमित का लुटा-पिटा चेहरा, आश्चर्य, अविश्वास और हिकारत का मिला-जुला भाव, उसके अंदर भीतर तक बसा हुआ है.

एक-आध बार पेशी के दौरान अमित मिला भी था, मगर घृणा से मुंह फेर कर दूसरी तरफ़ देखने लगा था. शायद दोनों के मन में एक दूसरे के लिए यही भाव थे, जिस पर पश्चाताप भी हावी था. रस्सियां हाथ से छूट गयी थीं, और आगे ठंडे फर्श वाली एक अंधेरी अंधी सुरंग थी.

'सुगना, पांच-छः औरतों को लेकर बड़े साहब के कमरे में आओ, मेम साहब लोग मिलने आयी हैं.' एक महिला आरक्षी ने आकर सुगना से कहा तो वह जैसे नींद से जगी.

'जी बहनजी, आ रही हूं,' सुगना ने कहा, और कुछ महिला बंदियों को लेकर बड़े जेलर साहब के कमरे में पंहुची.

किसी स्वयंसेवी संस्थाओं की महिलाएं, बड़े साहब के साथ बैठी थीं. चाय नाश्ता चल रहा था. महिला बंदियों को देखकर एक मेम साहब, जो शायद संस्था की अध्यक्षा थीं, उठ खड़ी हुईं. 'देखिए, हमारे लोग पिछले दिनों सर्वे पर आये थे, तो पता चला था, आप लोग गर्मी में कंबल बिछा कर सोती हैं, क्योंकि चादर में ज़मीन चुभती है. हमारी संस्था ने आपके लिए दो सौ दरियों का इंतज़ाम किया है. इसे आप ग्रहण करें.'

एन. जी. ओ. वाली महिलाओं के साथ एक फ़ोटोग्राफ़र भी था. दरियों के एक-दो पैकेट महिला बंदियों को देते हुए फ़ोटो खिंचवायी गयी.

'कंबलों के पैकेट स्टोर में रखवाइए. कल सुबह प्रार्थना के बाद रज़िस्टर में चढ़ा कर सबमें बांटिए.' बड़े साहब महिला आरक्षी से बोल रहे थे.

सुगना का मन चिंता में घुला जा रहा था. बड़े साहब से बोली, 'साहब, बहुत देर हो गयी है आज. बच्चे अभी तक लौटे नहीं हैं.'

'बच्चे? स्कूल से?' जेलर साहब ने पूछा.

फिर बोले, 'बच्चे बाहर आ गये हैं. वैन अभी–अभी आयी है और देर इसलिए हो गयी है कि...' फिर रुक कर बोले, 'ख़ुशख़बरी है, ख़ास तौर से सुगना, तेरे लिए. लेकिन चल, बच्चों को ख़ुद ही बताने दे.'

इतने में सबने देखा, बच्चे गैलरी में दौड़ते-कूदते चले आ रहे थे. आरव तो आते ही सुगना से लिपट गया. उसके हाथ में अपना रिपोर्ट कार्ड देते हुए बोला, 'मम्मा, मैं फ़र्स्ट आया.' सुगना के आश्चर्य की सीमा न थी. रिपोर्ट कार्ड खोल कर देखा, लाल रंग से 'प्रथम' लिखा था.

'मतलब?' सुगना अभी भी भ्रमित-सी खड़ी थी. 'अरे मतलब यह है कि तेरे बच्चे ने क्लास में टॉप किया है. अव्वल आया है वो.' जेलर साहब हंसते हुए बोले.

फिर सुगना को समझाते हुए बोले, 'आज बच्चों का रिज़ल्ट आया है, इसीलिए देर हो गयी.'

एन. जी. ओ. वाली मेम साहब बोलीं, 'बड़ी ख़ुशी की बात है, और अचरज की भी.'

फिर दार्शनिक अंदाज़ में बोलीं, 'क्या चमत्कार है? काली कोठरी में रौशनी के फूल खिल रहे हैं...'

जेलर साहब उन्हें बताने लगे, 'मैडम, हमारे यहां से इन महिलाओं के सात बच्चे जाते हैं पब्लिक स्कूल में पढ़ने. एक ये बच्चा फ़र्स्ट आया है, और एक बच्चा फोर्थ आया है.'

सुगना ने आरव को गोदी में उठा कर भींच लिया. उसके मन में ढोल-ताशे बजे जा रहे थे.

जेलर साहब फिर बोले, 'प्रिंसिपल तो फ़ोन पर कह रही थी, मां है तो जेल में, मगर संस्कार कितने अच्छे मिले हैं.'

संस्कार? सुगना अंदर से घुमड़-घुमड़ आयी. याद

(शेष पृष्ठ ४६ पर...)

सांझी छत

✍ श्रीमती छाया सिंह

३ जनवरी १९७२, कानपुर (उ. प्र.);
स्नातक

: लेखन :
कहानी, लघुकथा, कविता एवं समसामयिक लेखन.

: विशेष :
अनेक कहानियां विभिन्न प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित; एक कहानी पर 'और्जित्या' नामक लघु फ़िल्म का निर्माण; आकाशवाणी छतरपुर से एक कहानी 'बैंड वाला' का प्रसारण; बांदा में सभी साहित्यिक एवं सामाजिक कार्यों में सक्रिय भागीदारी; वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संघ में महिला ज़िलाध्यक्ष, बांदा के पद पर कार्यरत; 'केदार स्मृति न्यास, बांदा' में कार्यकारिणी सदस्य के रूप में कार्यरत; एक कहानी प्रकाशनाधीन; 'एकेडमी ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स् एवं लिचरेचर' के तत्वाधान में नयी दिल्ली में आयोजित 'समकालीन कहानीकारों का कहानी पाठ एवं परिचर्चा' में नारी शोषण पर आधारित कहानी 'गिद्ध ही गिद्ध' का पाठ.

'धड़ाक' पुलिस वालों ने आख़िरकार दरवाज़ा तोड़ दिया. एक अजीब-सा सीलन ओर दुर्गंध भरा झोंका बाहर आया. सामने ही फ़र्श पर फूलदार गाउन में एक कंकाल पड़ा था. खिड़की के कांच से छन कर आया धूप का एक टुकड़ा उस कंकाल पर मानो कफ़न की तरह पड़ा था.

'मां ऽऽऽ' यह हृदयविदारक दृश्य देखकर अमित की चीख़ निकल गयी. पुलिस दल और पड़ोसी भी सहम कर पीछे हट गये थे.

भीड़ में चिमगोइयां हो रही थीं, 'कल से तो नहीं देखा था मिसेज़ सचदेव को...', 'मैं तो सोच रही थी कि बेटे के पास अमेरिका चली गयी होंगी' ... 'ऐसी नालायक औलाद देने से तो अच्छा भगवान बेऔलाद ही रखे...'

पुलिस ने ज़रूरी कार्यवाही करके जैसे ही उस कंकालनुमा लाश को उठाया वह कई हिस्सों में बिखर गयी. 'नहीं ऽऽऽ' एक डरावनी लंबी चीख़ के साथ उनकी नींद खुल गयी. पसीने से तरबतर शरीर और सांसें धौंकनी की तरह तेज़ चल रही थीं. एक गिलास पानी गटागट पी गयीं वे. लाइट ऑन करके घड़ी पर निग़ाह डाली... चार बज रहे थे. 'भोर के सपने सच होते हैं.' ...अपनी दादी की यह बात उन्हें याद आयी. शॉल लपेट कर बदहवास-सी अमिता बालकनी में आकर झूले पर बैठ गयी.

अभी बाहर अंधेरा ही था. कल दोपहर को ही तो उन्होंने बैंक में चर्चा सुनी थी और न्यूज़ चैनलों और अख़बारों में भी हाईलाइट हो रहा था कि मुंबई में एक अकेली अमीर वृद्ध महिला का कंकाल घर में पाया गया जिसका बेटा विदेश में रहता था और एक बड़े उद्योगपति को उनके बेटे ने सब हथिया कर बुढ़ापे में दरबदर की ठोकरें खाने के लिए मज़बूर कर दिया था... कि ... आज कल की औलादों पर विश्वास नहीं करना चाहिए.

कुछ ऐसी ही स्थिति तो उनकी भी है... दिल्ली में शानदार बंगला, बैंक बैलेंस और घर में सुख-सुविधा के सब साधन. इकलौता बेटा अमित अमेरिका में ही सेटल हो चुका है. अमित ... मुस्कान आ गयी उनके अधरों पर, 'तू मेरा

अंश है ... अमिता का अमित' ... अपने गोलमटोल बेटे का माथा चूमते हुए वे भाव विभोर हो गयी थीं, जब नर्स ने उनकी गोद में बेटे को दिया था.

पति राधा मोहन सरकारी विभाग में बड़े अधिकारी थे पर स्वभाव से बेहद रूखे और क्रोधी. किसी से प्रेम से बोलना तो जानते ही नहीं थे. उनके इसी स्वभाव के चलते रिश्तेदारों, परिचितों एवं पड़ोसियों ने उनसे किनारा कर लिया था. अमिता का भी कहीं आना–जाना या व्यवहार रखना उन्हें पसंद नहीं था. पति में परमेश्वर देखने वाली सीधी सरल अमिता ने भी उनके हिसाब से अपने को ढाल लिया था.

'इस साल से अमित देहरादून में पढ़ेगा.'

'क्या कह रहे हैं आप... अभी से बच्चे को हॉस्टल में डाल देंगे?' वे बदहवास–सी हो गयी थीं.

'बिल्कुल ... यहां तो तुम उसे अपने लाड़-प्यार से पूरी तरह चौपट कर दोगी. इतना भी छोटा नहीं है अमित छठी में आ गया है,' वे चाय का कप लगभग पटकते हुए बोले.

अमित के हॉस्टल चले जाने के बाद तो अमिता की हालत 'जल बिन मछली' वाली हो गयी थी. कहां तक टी. वी. देखें और कहां तक पत्रिकाएं पढ़ें. एक दिन सारी हिम्मत जुटाकर उन्होंने पति से पूछ ही लिया, 'आप तो दिन भर ऑफ़िस में रहते हैं ... अमित को आपने हॉस्टल भेज दिया. मैं घर में अकेले क्या करूं? अगर आप मुनासिब समझें तो मैं कोई जॉब...?

'क्या कहा तुमने? जॉब करोगी ... क्या मैं औरत की कमाई खाऊंगा. तुम्हें बाहर की हवा ज़्यादा लग गयी है ... आइंदा यह बात तुम्हारी ज़बान से ना निकले.' उनकी बात काटते हुए वे आगबबूला हो गये थे.

बुरी तरह सहम गयी थीं वे. उस दिन के बाद से उनकी यह प्रसंग उठाने की हिम्मत ही नहीं पड़ी. धीरे-धीरे अमित का घर से लगाव कम होने लगा था. छुट्टियों में वह अधिकतर स्कूल की तरफ़ से टूर पर चला जाता या कोई कोर्स या क्लासेज़ ज्वाइन कर लेता. समय पूरी रफ़्तार से आगे बढ़ रहा था. पढ़ने में बेहद ज़हीन था अमित लिहाजा बी. टेक. और एम. बी. ए. करके एक नामचीन मल्टीनेशनल कंपनी में बड़े पद पर चुन लिया गया था.

अमेरिका में नौकरी के दौरान ही उसने एक विजातीय लड़की से शादी कर ली थी. उन्हें तो केवल कार्ड भेज दिया था. बाहर से कठोर दिखने वाले राधामोहन यह सदमा बर्दाश्त नहीं कर पाये और दिल के मरीज़ हो गये थे. पोता पैदा होने के समय अमित के बहुत आग्रह करने पर वे तो दो महीने अमेरिका में रह भी आयी थीं पर राधा मोहन ने बच्चों को कभी माफ़ नहीं किया. दिल में दर्द लिये वे एक रात ऐसा सोये कि फिर कभी उठे ही नहीं. अमिता का तो बचा-खुचा सहारा भी छिन गया.

पिता की तेरहवी के बाद अमित ने कहा था, 'मम्मा ... आप अकेले कैसे रहोगे? आप हमारे साथ चलो.'

पर इसमें उन्हें आग्रह और आत्मीयता के बजाये औपचारिकता अधिक लगी तो समाज की दुहाई देकर उन्होंने घर छोड़कर विदेश जाने से मना कर दिया. पिछले तीन सालों से वे अकेले ही रह रही थीं. बेटे-बहू का फ़ोन दो चार महीने में एक बार आ जाता था. पोता आरव ज़रूर जब मौक़ा मिले उन्हें फ़ोन कर लेता था और अपनी प्यारी मीठी बातों से उनका मन जीत लेता था. उन्होंने भी अकेले जीने की आदत डाल ली थी पर आज के सपने ने उन्हें हिला कर रख दिया था. कहीं ऐसा ही अंजाम उनका भी तो नहीं होगा... बड़े-बड़े आंसू उनके गालों पर लुढ़कने लगे.

'आज अगर मैं होती तो आप अकेली ना होतीं मां... मैं करती आपकी सेवा ...'

अरे... यह बारीक-सी आवाज़ तो उनके ही अंदर से आयी थी. अनायास ही उनका हाथ अपने पेट पर पहुंच गया. जब वे पहली बार उम्मीद से थी तभी पति ने फरमान सुना दिया था, 'एक ही संतान रखनी है... वो भी लड़का.' बेचारी अमिता लाख गिड़गिड़ायीं पर जबरदस्ती सोनोग्राफ़ी कराके उस अजन्मी बेटी का कोख़ में ही कत्ल करा दिया था उन्होंने. अमित के पैदा होने पर बहुत बड़ा जलसा किया था.

'मेरी बच्ची... उस समय मैं मज़बूर थी... तुझे नहीं बचा पायी पर अब मैं दूसरी बच्चियों का जीवन संवारूंगी' पेट पर हाथ फेरते हुए उनके आंसू गिरने लगे थे.

पौ फटने लगी थी. सुदूर पूर्व में रात की कालिमा को चीर कर हल्की-सी लालिमा फैलने लगी थी. मंद-मंद बयार में फूलों की भीनी–सी सुंगध घुल रही थी. सामने पार्क के पेड़ों पर चिड़ियों का कलरव कानों को बड़ा भला लग रहा था. सड़क से कीर्तनियों का दल ढोलक मंजीरे की ताल पर रामधुन गाता हुआ निकल रहा था. हॉकरों की साइकिलों की घंटियां टनटनाने लगी थीं. बालकनी में रोज़ की तरह गौरैयों

का झुंड शोर मचाता हुआ हाज़िर हो गया. वे उठीं और प्यालों में दाना-पानी भरकर ले आयीं. सब गौरेयां चहकती हुई कलेवा करने लगीं. यह देखकर उनके अधरों पर स्मित हास्य की रेखा दौड़ गयी. तभी फ़ोन की लंबी घंटी ने उनका ध्यान आकृष्ट किया. ज़रूर अमेरिका से आरव का फ़ोन होगा... एक वही तो है जो नियम से हर हफ़्ते दादी को फ़ोन करता है.

'हैलो दादी... चरण स्पर्श... कैसे हो आप?' फ़ोन उठाते ही आरव की मीठी आवाज़ से उनका मन प्रफुल्लित हो गया.

'मैं बिल्कुल ठीक हूं बेटा ... तुम सब कैसे हो?'

'दादी .... कल ना ... हम लोगों को स्कूल की तरफ़ से एक ओल्ड पीपुल्स होम में ले गये थे. वहां बहुत सारे स्वीट-स्वीट ग्रैंड पा और ग्रैनी थे. उन्हें देखकर मुझे आपकी बहुत याद आयी. दादी... आपको एक बात बतानी है... कल रात में मॉम डैड आपस में बात कर रहे थे कि इंडिया वाला घर बेचकर यहां प्रॉपर्टी खरीदेंगे... आपको यहां ले आयेंगे तो आप केयरटेकर की तरह रहेंगी. मुझे हॉस्टल में डाल दिया जायेगा कि मैं आपके साथ बिगड़ ना जाऊं... दादी ... प्लीज़ ... मुझे हॉस्टल नहीं जाना ... मैं आप लोगों की सब बातें मानूंगा... या तो आप मुझे इंडिया बुला लो... ओ शिट्... मॉम इधर ही आ रही है... बाय दादी,' फ़ोन कट गया था.

रिसीवर हाथ में थामे वे बुत की तरह खड़ी रह गयी थीं... तो अमित और बहू के दिमाग़ में यह सब चल रहा है... तभी तो जल्दी-जल्दी फ़ोन करके मां की चिंता जताई जा रही है... गनीमत है कि यह बंगला आज भी अमिता के नाम पर ही है... मन ही मन कुछ सोचा उन्होंने.

फ़ोन रखकर वे अंदर आ गयीं... नहाकर हल्की गुलाबी रंग की सिल्क की साड़ी पहनी, सलीके से जूड़ा बनाया और छोटी-सी बिंदी भी लगायी. पूजा करते-करते काम वाली आ गयी.

'क्या बात है मेम साब... कितने दिन बाद आपको अइसा ख़ुश देखा... मेरे को बहुत अच्छा लगा.'

'हां... रमना... जल्दी से सफ़ाई ख़त्म करके आज नाश्ते में आप सूजी का हलवा बना लो... एक जगह चलना है.'

नाश्ता करके दोनों निकल पड़ीं. आगे चौराहे से बांयी तरफ़ जाने वाली सड़क पर वे मुड़ गयीं. कुछ एक गलियां पार करने के बाद एक पुरानी-सी इमारत पर टंगा, 'नन्हीं कलियां कन्या अनाथालय' का बोर्ड दिखने लगा.

'जी कहिए, मैं क्या सेवा कर सकती हूं आपकी?' अनाथालय की अधेड़ उम्र संचालिका ने नरमी से प्रश्न किया.

थोड़ी देर की बातचीत के बाद प्रसन्न मन से वे लोग संचालिका से बिदा लेकर चल दीं. चौराहे से टैक्सी लेकर उन्हें वृद्धाश्रम पहुंचने में आधा घंटा लगा. वृद्धाश्रम के संचालक से भी गहन मंत्रणा के बाद वे बेहद प्रसन्न थीं.

इसके बाद वे तीन महीने बहुत व्यस्त रहीं. बंगले में अपनी पूरी निगरानी में उन्होंने सारे काम करवाये. पैसों की चिंता न करके उन्होंने अपने मनमुताबिक काम कराया.

बसंत पंचमी का शुभ दिन. रोज़ की तरह मुंह अंधेरे उठ गयीं अमिता. प्राणायाम, स्नान और पूजा करने के बाद वे बालकनी में आकर खड़ी हो गयीं. आज उनकी शादी की सालगिरह भी थी. पुरानी यादें उनके मन और आंखों को भिगो गयीं. आज मौसम बेहद ख़ुशगवार था. पूरे बंगले और लॉन का उन्होंने मुआयना किया. बड़ी संतुष्टि महसूस हुई. जैसा वे चाहती थीं... सब उनके मनमुताबिक तैयार हुआ था. पति की तस्वीर के सामने थोड़ी देर खड़े रहने के बाद वे आज की तैयारियों में लग गयीं.

आज 'सांझी छत' का भव्य शुभारंभ था. उद्घाटन के लिए बड़ी हस्ती को न चुनकर उन्होंने बंगले के सामने सड़क पर रेहड़ी लगा कर छोटा-मोटा सामान बेचने वाली वृद्धा को चुना था. नयी साड़ी पहनाकर अमिता ने जब उनसे रिबन कटवाया तो वे बेचारी बहुत भावुक हो गयी थी. रंग-बिरंगे नये कपड़ों में सजी अनाथालय की बच्चियां चहकती हुई अंदर प्रवेश करने लगीं... पीछे-पीछे वृद्धाश्रम के बुज़ुर्ग भी अपने नये घर में प्रवेश कर गये.

पत्रकारों का हुजूम उमड़ पड़ा था. कैमरों के फ़्लैश चमक रहे थे.

'सांझी छत' का विचार कैसे आया आपके मन में?' एक पत्रकार ने पूछा.

'देखिए सहारे की ज़रूरत सबको होती है. हम सब एक-दूसरे का सहारा बनें तो सुख-दुख बांट सकते हैं. आप देखिए... अनाथ बच्चियों को अभिवावक मिल गये और परित्यक्त, बेघर बुज़ुर्गों को बच्चे. बस यही सोच थी मेरी.'

'व्यवस्थाएं कैसी हैं?' दूसरे ने सवाल उछाला.

'दो हॉल बच्चियों के लिए, एक हॉल वृद्धों और एक हॉल वृद्धाओं के लिए. सबमें अटैच्ड बॉथरूम हैं. एक लिविंग रूम जिसमें टी.वी., म्यूज़िक सिस्टम और इंडोर गेम्स हैं. बड़ा किचेन और डाइनिंग हॉल. बैकयार्ड में किचेन गार्डन. लॉन में आप देख ही रहे हैं झूले, बेंचें, फुलवारी और फौव्वारा है.'

'मैनेज़मेंट कैसे होगा?' एक महिला पत्रकार का सवाल था. 'वृद्धाश्रम के संचालक, अनाथालय की संचालिका और मैं तीनों लोग यहां रहकर सब व्यवस्थाएं देखेंगे. मुझे बड़ी ख़ुशी है कि शहर के बड़े फ़िज़ीशियन डॉ. अविनाश मोहन जी ने यहां मुफ़्त चिकित्सा सेवाएं देने की पेशकश की है.'

'आप तो इन बेसहारा लोगों के लिए साक्षात भगवान का रूप हैं अमिता जी.'

'नहीं नहीं... ऐसा मत कहिए. मैं तो ख़ुद अकेली और बेसहारा हूं. हम सब एक-दूसरे का सहारा बनेंगे. आप लोग जलपान अवश्य करके जायें. नमस्कार.'

अमिता के इस प्रयास की सबने मुक्त कंठ से प्रशंसा की. समाचार पत्रों ने इस ख़बर को ख़ूब हाइलाइट किया. अमिता ने अपने को पूरी तरह से समर्पित कर दिया. बहुत जल्दी बच्चियां और बुज़ुर्ग आपस में घुल मिल गये. एक संयुक्त परिवार जैसी व्यवस्था सुचारु रूप से चलने लगी थी. जो बंगला भूतों का डेरा लगता था वह अब चौबीसों घंटे गुलज़ार रहता था. अनुशासन के साथ-साथ प्रेम और सहयोग की भावना से सब काम होने लगे.

एक वृद्ध एवं एक वृद्धा रिटायर्ड टीचर थे तो उन्होंने बच्चियों को पढ़ाने की ज़िम्मेदारी संभाल ली. बच्चियां सब बुज़ुर्गों को दादा-दादी कहकर संबोधित करती थीं... यह संबोधन सुनकर वे अपना पिछला सब दुःख भूल जाते थे.

बंगले को हाथ से निकला देख बेटे-बहू ने भी अमिता से मुंह मोड़ लिया था पर अब उन्हें कोई परवाह नहीं थी... आरव ज़रूर नियम से दादी से बात करता था... दादी का काम जानकर वह बहुत ख़ुश हुआ था, 'दादी आप ग्रेट हो... ये तो बहुत अच्छा आइडिया है... मैं अपने फ्रेन्डस को बताऊंगा... टेक केयर दादी... बाय... लव यू.'

अमिता स्वयं बच्चियों के स्वास्थ्य, शिक्षा का बहुत ध्यान रखती थी... हर बच्ची उन्हें अपनी अजन्मी बेटी लगती.

'दादी ... दादी ...' कोमल हांफ रही थी.

'अरे क्या हुआ बेटी?' वे चौंक उठीं.

'दादी... आज एक गुंडा मुझे तंग कर रहा था ... मुझे बहुत डर लग रहा है.' वह कांप रही थी.

'नहीं बच्चे ... डरते नहीं हैं.' जाओ जाकर नाश्ता कर लो.

'ओह... मुझे कुछ करना पड़ेगा... अगले दिन से ही सब बच्चियों की मार्शल आर्ट्स की ट्रेनिंग शुरू हो गयी. ट्रेनर बड़ी ख़ुशी से बिना फ़ीस लिये ट्रेनिंग देने को तैयार था. बच्चियों को मनोयोग से सीखते देख वे बड़ी संतुष्ट थीं. समय अपनी निर्बाध गति से चलता रहा. तेरह वर्ष बीत गये थे. आज कोमल की शादी थी. एक स्कूल टीचर ने स्वयं उनसे कोमल का हाथ मांगा था. शाम को बारात आयी... बंगले की चौखट धन्य हो गयी थी... अमिता ने ही उसका कन्यादान किया. विदाई के समय सब फूट-फूटकर रोये पर संतोष भी था कि कोमल का जीवन संवर गया.

बहुत ही सुहावनी सुबह थी... प्राणायम करने के बाद वे पूजा के लिए फूल तोड़ रही थीं कि उन्हें खांसी आने लगी.

'ये क्या दादी... बिना शॉल के आप बाहर क्यों निकलीं?' नीता ने उन्हें मीठी डांट लगायी.

'आज बहुत ख़ुशी का दिन है कि अमिता बहन जी को सम्मान मिलने वाला है. हम सबके लिए तो वे साक्षात ईश्वर का रूप हैं....' नाश्ते के समय जब मोहन बाबू बोले तो हॉल तालियों से गूंज उठा.

'मोहन बाबू... मुझे शर्मिंदा न करें... आप सब ही मेरी ताकत... मेरा परिवार हैं...?' वे भावुक हो गयी थीं.

शाम चार बजे सम्मान समारोह में पहुंचते ही आयोजकों ने उन्हें फूल मालाओं से लाद दिया. दैनिक उजाला के ब्यूरो चीफ़ ने कहा, 'दैनिक उजाला की ओर से आयोजित सम्मान समारोह में आप सभी अतिथियों का स्वागत है. मुझे यह कहते हुए बड़ी खुशी है कि जिस हस्ती को हमने 'दीनदयाल सम्मान' के लिए चुना है वे एक दृढ़ संकल्प वाली महिला हैं जिन्होंने अपने बंगले, अपनी पूरी पूंजी और अपने जीवन को अनाथ बच्चियों और बेसहारा बुज़ुर्गों के नाम कर दिया. उनको इस सम्मान से नवाजने के लिए स्पेशली कनाडा से ए. ए. इंडस्ट्री के सी. ई. ओ. मि. ए. के. सचदेव हमारे

(शेष पृष्ठ ४६ पर...)

स्वतंत्र लेखिका व शिक्षाविद.

: कृतियां :

दो कविता संग्रह (लक्ष्य और कहीं कुछ रिक्त है) प्रकाशित. साझा कविता संग्रह (हृदय तारों का स्पंदन), (ख़ामोश, ख़ामोशी और हम), (शब्दों की चहल कदमी) और (सृजक) प्रकाशित. साझा ग़ज़ल संग्रह (परवाज़ ए ग़ज़ल) प्रकाशित. हंस, परिकथा, पाखी, वागर्थ, गगनांचल, आजकल, मधुमती, हरिगंधा, कथाक्रम, साहित्य अमृत, अक्षर पर्व और अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं व लघु पत्रिकाओं में कविताएं, कहानियां, लेख और विचार निरंतर प्रकाशित. दैनिक समाचार पत्र-पत्रिकाओं और ई-पत्रिकाओं में नियमित लेखन. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय श्रेणी के अनेक पुरस्कारों से सम्मानित. दैनिक समाचार-पत्रों, प्रभात-ख़बर और हिंदुस्तान में नियमित लेखन, झारखंड विमर्श पत्रिका की संपादिका और अनेक पत्रिकाओं के विशेषांक के लिए अतिथि संपादक का काम किया.

जॉली बुआ

डॉ. कविता विकास

आग की तरह फैल गयी घर में यह ख़बर कि जॉली बुआ ने कीमो लेने से इंकार कर दिया है. 'क्या...?' सबकी आंखें फैल जातीं और ख़ामोशी पसर जाती, पर कोई नहीं पूछता, आख़िर क्यों? मानो सब जानते थे, अब कोई फ़ायदा नहीं कीमो के दर्दीले अनुभव से गुज़रने का. जॉली बुआ का असली नाम ज्योति था. ज्योति वर्मा, एम. ए. इन इंग्लिश, यह उनका संपूर्ण और संक्षिप्त परिचय था. इतनी ख़ुशमिजाज़ और आत्मीयता से भरपूर कि जॉली के अलावा कोई और निकनेम उनके सास-ससुर को मिला ही नहीं. स्कूल में पढ़ाती थीं. आस-पास कोई घटना घट जाये तो कभी काउंसलर तो कभी इंस्पेक्टर बन जातीं. उनके विवाह के छह साल तक कोई बच्चा नहीं होने पर मुझे गोद ले लिया गया. मैं यानी उनकी भतीजी. शादी की दसवीं वर्षगांठ के बाद बुआ गर्भवती हुईं. घर-बिरादरी, समाज सभी जगह ख़ुशी की लहर फैल गयी. सारा और तुषार दो बच्चे हुए बुआ के, पर मेरी जगह उनकी पहली संतान की ही रही. सबसे ज़्यादा वह मुझे प्यार करते. फूफा जी एक कंपनी में सेल्स मैनेज़र थे. बहुत स्मार्ट, दरियादिल. मेरी मां बतलाती थीं कि यह संयोग दुर्लभ होता है कि पति-पत्नी एक ही स्वभाव वाले मिलें. दोनों दान-पुण्य, मदद-सरोकार से ओत-प्रोत थे. मददगार तो ऐसे कि सरकारी अतिक्रमण में जब विभा का घर टूट रहा था, और वह रोते-कलपते बुआ के पास आयी तो, फूफा ने दालान के पास वाला गार्ड का कमरा उनको दे दिया और कहा, 'इधर-उधर कहां रहोगी, यहीं रहो, कोई किराया-विराया नहीं लगेगा.' विभा हमारे बड़े से परिवार के लिए खाना बनाती थी, धीरे-धीरे हम सबकी वह ताई बन गयी.

समय अपनी रफ़्तार से चल रहा था. पढ़ाई के सिलसिले में मुझे गोरखपुर से मेरठ आना पड़ गया. दोनों भाई-बहन भी दिल्ली के हॉस्टल में चले गये. अब उनसे गर्मी की छुट्टी में मिलना होता केवल. पर मैं जब-

तब बुआ के पास चली जाती, जब मन नहीं लगता पढ़ाई में या बुआ की याद सताती. कुछ सालों से देख रही थी, बुआ अब पहले की तरह ठहाके नहीं लगाती थीं. चुप रहतीं. ख़ूब लिखती थीं. ऐसा लगता जैसे कोई दर्द उनके सीने में पल रहा था, जो जब भी हूक उठता, वह पन्नों पर उतार देतीं. मैं पूछती, 'क्या लिखती हो बुआ दिन भर? तुम तो सबकी पसंदीदा लेखक बनती जा रही हो. तुम्हारी कहानियां लोगों के जहन में घर जाती हैं. कहां से इतनी वेदना उमड़ रही है?' वह कुछ नहीं कहतीं. पर इस बार मैं उनकी चुप्पी का कारण जानने के लिए आतुर हो उठी. मेरी ज़िद के आगे उनकी एक न चली, मेरे कंधे टिक कर वह ख़ूब रोयीं. कारण तो फिर भी नहीं बताया उन्होंने, बस कह उठीं, 'विपरीत स्वभाव वाले ही अच्छे जीवन–साथी होते हैं. चाशनी में घुला रिश्ता अक्सर मधुमेह की भांति अंदर ही अंदर शरीर खा जाता है और किसी को पता भी नहीं चलता.' बच्ची तो अब मैं थी नहीं, मैंने कहा, 'फूफा जी के साथ कुछ हुआ क्या बुआ?' एक फीकी मुस्कान से इस बार भी टाल गयीं. कुछ समय के पश्चात मेरी शादी हो गयी. अचानक एक दिन रात को फूफा जी का फ़ोन आया, 'बन्नो, बुआ हॉस्पिटल में एडमिट हैं. लिवर कैंसर का थर्ड स्टेज़ है. कोई होप नहीं...' कहते-कहते रो पड़े फूफा जी. हमारा रोते–रोते बुरा हाल था. किसी तरह दूसरे दिन ही गाड़ी पकड़ के गोरखपुर आ गयी.

डॉक्टर के कहने पर हॉस्पिटल का ही एक कमरा ले लिया गया था. घर के सब लोग बारी–बारी से आते–जाते रहते. दो कीमो पड़ चुके थे पर जब तक सांस लिखी थी, चलनी ही थी. मैं रात में उनके पास अटेंडेंट के रूप में रहती. एक दिन वह नींद में कुछ बड़बड़ा रही थीं, 'मेरे दिल का एक कोना रिक्त ही रह गया. इसमें केवल तुम्हारे लिए जगह थी, पर तुमने तो अपने को बांट लिया. मैं तुम्हें संपूर्ण पाना चाहती थी, प्यार का कभी बंटवारा सुना है क्या?' मुझे लगा बुआ अपनी किसी कहानी का संवाद बड़बड़ा रही हैं जिसे सुबह उठते ही लिख डालेंगी. सुबह उनके उठने पर, डॉक्टरों की जांच–पड़ताल के बाद मैंने यह बात उन्हें बतायी. उन्होंने कहा, 'किसी और की कहानी क्या लिखूंगी, बन्नो? अपनी ही ज़िंदगी कहानी बन गयी है. पानी सैलाब तोड़ दे तो बाढ़ आ जाती है. इस बाढ़ को मैंने अपने सीने में दबा लिया है ताकि मेरी सृष्टि न डूब जाये. अब ख़ुद डूब जाऊंगी.' उनकी बात मुझे कुछ समझ में नहीं आयी. जब तक साफ़ तरीक़े से पूछती, फूफा जी आ गये. मुझे भी उनकी दवाइयां लाने कॉउंटर पे जाना था, सो उनको बैठा कर निकल गयी. जब दवाइयां ले कर लौटी, तो दरवाज़ा हल्का भिड़का हुआ था. मैं खोलना ही चाह रही थी कि बुआ की तेज़ आवाज़ सुनकर ठिठक गयी. इतनी तेज़ आवाज़ में उन्हे बोलते वर्षों बाद सुना था. बुआ कह रही थीं, 'अविनाश अब तो मैं कुछ ही दिनों की मेहमान हूं. एक बार बता दो क्या कमी थी मुझमें जो तुम हर रात विभा के पास चले जाते थे?'

'पागल मत बनो, पढ़ी–लिखी होकर ये क्या लांछन लगा रही हो?'

'पढ़ी–लिखी थी, इसलिए तो अपमान और तिरस्कार की आग में ख़ुद जल गयी, पर अपने बच्चों के पापा पर कोई आंच नहीं आने दी. और फिर लांछन मैं क्यों लगाऊंगी? विभा को अपने घर लाने के बाद, उस रात तेज़ बारिश हो रही थी... तो मेरी नींद खुली पर तुम बिस्तर पे नहीं थे. कुछ देर बाद भी नहीं लौटे, टॉयलेट भी खाली था तो तुम्हें खोजते हुए मैं नीचे गयी और फिर विभा के कमरे की ओर. अंदर से उहह–आह के उत्तेजित स्वर के साथ दोनों की दबी–दबी हंसी भी आ रही थी.' फूफा ने विरोध करते हुए बात काटनी चाही, 'विभा के कमरे की छत टपक रही थी. वह तुम्हें बुलाने आयी थी, तुम्हें गहरी नींद में देख कर मैं उसका सामान और खाट खिसकाने गया था.' अविश्वास की मुद्रा में बुआ ने फिर दलील दी, 'हम जब मसूरी गये थे, तुम ने बच्चों को बताया कि एक आकस्मिक बैठक के लिए तुम्हें बरेली जाना पड़ रहा है, इसलिए वे मम्मा के साथ एंजॉय करें, जब कि तुम्हें विभा के साथ वक़्त बिताना था. मैंने तुम्हारे कई साथियों को फ़ोन कर पूछा था, उन्होंने किसी मीटिंग की बात नहीं स्वीकार की थी.' बुआ थक रही थीं. आवाज़ धीमी पड़ रही थी. 'अविनाश तुम मेरा पहला और आख़िरी प्यार थे. धोखेबाज़ के साथ जीवन के तीस साल बिताना सब कुछ जानते हुए, रोज़–रोज़ ज़हर पीने के जैसा था. शायद इसलिए भगवान ने मुझे अपने पास बुलाने की ठान ली.'

फूफा जी भी शांत थे. अंदर शांति होते देख मैं सीढ़ी की ओर चली गयी. फूफा जी कभी भी निकल सकते थे. मेरे पैर थरथरा रहे थे पर मुझे नॉर्मल रहना था. फूफा जी के

निकलते ही मैं अंदर दाख़िल हुई. बुआ के माथे पर हाथ फेरते हुए मैंने पूछा, 'थकी-थकी क्यों लग रही हो बुआ?' बुआ ने मेरे हाथ को थाम कर चूम लिया. फिर मुझे अपने सीने से सटा कर देर तक मेरे सिर पे हाथ फेरती रहीं. उनसे छुपा कर मैं भी अपने आंसू पोछती रही. वो कठिन पल कैसे बीते मेरे लिए, मैं ही जानती हूं. उन्हें मैं आभास नहीं होने देना चाहती थी कि फूफा जी से उनकी बातें मैं सुन चुकी हूं. फिर मुझे अलग करते हुए पूछने लगीं, 'बन्नो तू ख़ुश है न राज से?' 'हां बुआ, बहुत ध्यान रखते हैं वो मेरा.'

'अच्छी बात है, पर याद रखना, साये की तरह रह कर भी पुरुषों का दोहरा चरित्र नहीं जान पाओगी. पुरुष आकाश है, नारी धरती. वह झुकता है, निहुरता है, चमकता है, गरजता, कुहराता है और अंतहीन विस्तार में जहां मन होता है, चला जाता है. स्त्री तो धरती मां है, सब सहती है; उसके भार को, आंधी-पानी और तेज़ को. अपनी गोल परिधि में वह वहीं पहुंच जाती है जहां से शुरुआत की थी. उसका जीवन एक चक्र की भांति है, कभी थोड़े बहुत परिवर्तन हुए तो हुए, नहीं तो कमोबेश एक-सा ही रहता है.'

मैं चाहती तो उन्हें फूफा जी के बारे में बताने को बाध्य कर सकती थी, पर मैं चाहती थी कि इस राज को राज ही रहने दिया जाये. बिन फूफा जी का नाम लिये आख़िर वह बता तो रही हैं, इससे उनका मन भी हल्का हो जायेगा. मैंने पूछा, 'ऐसा कैसे कह सकती हो, बुआ? सब पुरुष एक से नहीं होते और न सभी महिलाएं सहनशील, उन्हें अत्याचार का प्रतिरोध करना आता है.'

'प्रतिरोध तब करे न जब उसकी नज़रों से गुज़रे! कुत्ता जात है मरद. चार घर का खाना खा कर ही पेट भरता है दोनों का.' बुआ थक चुकी थीं. तभी उनके मेडिसिन के साथ डॉक्टर-नर्स दाख़िल हुए. उसके बाद बुआ देर तक सोती रहीं. मेरी बेचैनी बढ़ती जा रही थी. बार-बार फूफा जी का चेहरा आंखों के सामने आ जाता. बुआ जी को पाना किसी मर्द के लिए एक उपलब्धि थी. इतना शांत-सौम्य, ज्ञानी व्यक्तित्व. फूफा जी ने उन्हें धोखा दिया है. कितना कठिन होगा किसी स्त्री के लिए उस आदमी के साथ निभाना जो उसके दूसरे रिश्ते को भी जानती है. स्त्री-विमर्श पर ओजपूर्ण भाषण देने वाली बुआ ही छली गयी थीं. शायद इसलिए बाद के दिनों में वह ऐसे कार्यक्रमों में नहीं जाती थीं. आश्चर्य यह था कि घर में दादा-दादी की अनुभवी आंखें भी इसे ताड़ नहीं पायीं. थोड़ी दूर पर रहने वाले चाचा-चाची का सुबह-शाम आना-जाना था. पर सबकी नज़रों में उनके लल्ला के प्रति विश्वास का पानी किस कदर चढ़ा हुआ था! और हम लोग भी उसी घर में रहते थे, हमने भी कम जाना? विभा ताई के लिए कपड़े लाना, दवाई लाना, उन्हें छोटी-मोटी चीज़ें उपलब्ध कराना हमारे लिए उनका ध्यान रखने भर था. बुआ स्वाभिमान और विद्वता की प्रतिमूर्ति थीं. जिसने उनको मान-सम्मान दिया उनकी वह चहेती रहीं और जिसने देने से ज़्यादा लेने की अपेक्षा की उनसे मतलब भर ही रिश्ता रखा.

दूसरे दिन नियत समय पर फिर फूफा जी आये. मैं उस समय बालकॅनी में कपड़े डाल रही थी. फूफा जी आते ही बुआ के ललाट पर हाथ फेरते हुए वहीं बैठ गये. मुझे आज भी बाहर चले जाना था, कॉउंटर से कुछ लाने के बहाने फिर निकल गयी. दरवाज़े को हल्का खींचा कि अंदर की बातें सुन सकूं और देख भी सकूं. फूफा जी ने उनसे पूछा, 'रात नींद आयी थी? डॉक्टर ने मेडिसिन चेंज़ की?' 'हूं – हां, बुआ ने संक्षिप्त उत्तर दिया. फिर थोड़ा ठहर कर पूछा, 'अविनाश, सुलभा काकी की बेटी की गोद-भराई के समय जब बिजली चली गयी तो सभी अंधेरे में अपनी जगह पे थे. पर जब लाइट आयी तो तुम और विभा रूम में नहीं थे. कहां चले गये थे?', बिलकुल मासूम बच्चे की तरह बुआ ने पूछा जैसे कि फूफा जी सही उत्तर दे ही देंगे. खिसियाई बिल्ली-सा मुंह बना कर बोले, 'अब तक दिमाग़ नहीं शांत हुआ है तुम्हारा? ये फालतू बातें बंद नहीं होंगी तुम्हारी? यही सुनने आता हूं क्या तुम्हारे पास?'

आज बुआ के स्वर में घोर निराशा और टूटे हुए सब्र के भाव थे. बहुत शांत भाव से बोलीं, 'अब तो ये बातें सदा के लिए बंद हो जायेंगी. कुछेक दिन की ही तो मेहमान हूं. एक बार स्वीकार कर लो, मैं झूठ नहीं बोल रही, नहीं तो जान भी इस बोझ को लिये हुए नहीं निकलेगी.' फूफा जी सिर झुका के सुन रहे थे, जैसे मौन भाव से अपने अपराध कुबूल कर रहे हों.

बुआ ने कहा, मेरे मन का एक कोना मुद्दत से खाली है, तुम्हारे साथ की रूमानी कल्पनाएं भी क्षीण होती गयीं. तुम्हारे साथ अंतरंग संबंध बनाते समय यही भावना होती थी कि शायद इस बार तुम्हारे कपड़ों से तेल-मसालों की गंध

नहीं मिले. पर विभा के पसीने की गंध में तुम्हारे शेविंग लोशन की परिचित सी ख़ुशबू आती और तुम्हारी बनियानों से हल्दी के दाग दिखते. मेरे स्थान पर ख़ुद को रख कर देख लो, फिर बताओ क्या बाइस साल का लंबा सफ़र मेरे साथ निभा पाते तुम?' 'मैं भले ही दक़ियानूसी नहीं थी, पर अपने प्यार के अधिकार को बंटने भी नहीं देना चाहती हूं. मेरे विद्रोह पर बच्चे तनावग्रस्त हो जाते, उनकी पढ़ाई बाधित हो सकती थी. सास–ससुर के तुमको दिये हुए संस्कार झुठला जाते जिस पर उन्हें बहुत गर्व था. मैंने सब कुछ देखते हुए स्वयं को गूंगा–बहरा बना दिया. एक जीवंत आत्मा को मृतप्राय बना दिया. एक ज़माने में इस उक्ति का पुरजोर विरोध करती थी कि पुरुष सदा ही व्यक्त होते हैं, स्त्रियां अव्यक्त. पर ख़ुद पे पड़ा तब जान पायी कि पति–पत्नी के प्यार की थाह से ही संतुष्टि के मोती निकलते हैं. ये राज मेरे साथ दफ़न हो जायेगा. तुम अपने बच्चों के आदर्श पापा और अपने माता–पिता के संस्कारी पुत्र ही बने रहोगे.' अचानक फूफा जी ने मौन व्रत तोड़ते हुए अपराध मुद्रा में कहा, 'वो... व्वो... ग़लती हो गयी थी... मुझे माफ़ कर देना.'

बुआ जी ने झट अपना हाथ छुटाते हुए उनके होंठों पे अपनी अंगुली रख आगे बोलने से मना कर दिया. उन्हें जो सुनना था, सुन चुकी थीं. किसी दिलासे या किसी बहाने की कोई ज़रूरत नहीं थी अब उन्हें. 'अविनाश, तुम्हारे प्यार की कसक को मैंने अपने गीतों–नज़्मों में ढाला है. कभी पढ़ना उन्हें. बच्चों के सामने चेहरे पर एक शिकन नहीं आने देती थी मैं, पर उस मुस्कुराहट के पीछे तुम्हें खोने का दर्द मेरे इस कैंसर में ढल चुका है. शरीर से जल्द ही मुक्त हो जाऊंगी पर मन से तो तभी विरक्त हो चुकी थी जब विभा के कमरे से तुम्हें पहली बार पाजामे का नाड़ा बांधते हुए विजयी मुद्रा में बाहर आते देखा था. कहीं न कहीं हमारे अच्छे दिनों का एहसास मेरे मन के रिक्त कोने को सींचता रहा था, जिससे मुझे जीने की ऊर्जा मिलती थी. तुम्हारे प्रति मेरा समर्पण अपने बच्चों में मैं जीवित पाती थी. उन्हें बड़े होते देखना हम दोनों के प्यार को फलते–फूलते देखना था.' फूफा जी की आंखों से टप–टप आंसू बह रहे थे. मैं चुपचाप सीढ़ियों की तरफ़ बढ़ गयी कि मेरी सिसकियों की आवाज़ कोई सुन न सके.

डी-१५, सेक्टर -९,
पीओ-कोयलानग,
जिला-धनबाद-८२६००५, (झा. खं.)
मो.: ९४३१३२०२८८.
ईमेल-kavitavikas28@gmail.com

काल, कोठरी और कंदीलें

(पृष्ठ ३८ से आगे...)

आया, जब अमित उसके पति का रांपी से गला रेत रहा था, और उसने ख़ुद अपने पति के हाथ जोर से पकड़ रक्खे थे, लगभग उसके बदन पर बैठ कर, तो ख़ून का फव्वारा-सा छूटा था, और पास सो रहे इसी अबोध शिशु आरव के चेहरे पर पड़ा था. पूरा चेहरा ख़ून से सन गया था. नीले पाड़ वाली खादी की साड़ी का पल्लू मुंह में दबा कर जोर से बिलख पड़ी सुगना.

एन. जी. ओ. वाली मेमसाहब और बड़े जेलर साहब, उसके रोने को खुशी का रूदन समझ कर मुस्कुराये जा रहे थे.

आशीर्वाद नर्सिंग होम,
५१,न्यू शाहगंज, बोदला रोड,
आगरा २८२०१०
मो. : ९८३७०२५०३८

सांझी छत

(पृष्ठ ४२ पर आगे...)

बीच आ चुके हैं.

मंच पर अमिता को शाल ओढ़ाकर चीफ़ गेस्ट उनके पैरों में झुक गये.

'अरे अरे... क्या कर रहे हैं आप?' वे हड़बड़ा गयी थीं.

'दादी ... मैं आरव ...', उनके गले लगकर रो पड़ा आरव.

पोते को छाती से लगाकर वे भी रोती रहीं. हॉल में उपस्थित सभी लोग यह दृश्य देखकर भावुक थे.

डी. एम. कॉलोनी रोड,
सिविल लाइन्स,
बांदा (उ. प्र.) -२१०००१
मो.-९४१५१२३००८०

२० सितंबर १९५८
शिक्षा : एम. ए., एल. एल. बी.

: प्रकाशनः
तीन कविता पुस्तकें, पांच कविता संग्रह, तीन कहानी संग्रह प्रकाशित, पत्र-पत्रिकाओं में पचास से अधिक कहानियां व सैकड़ों कविताएं प्रकाशित.

: संप्रतिः
अध्यक्ष
ज़िला उपभोक्ता फोरम,
सागर (म. प्र.)

रुकी हुई यात्रा

निरुपम

यात्रा अचानक बीच में एक अजनबी जगह रुक गयी थी, अनिश्चित प्रतीक्षा में ठहरे हुए उसे ख़ुद पर ख़ीज उठ रही थी. मन तो आख़िर मन है वह स्मृतियों में कभी इतना आवेशित हो जाता है कि कहीं भी चलने की सोच लेता है उसे बिना सोचे–समझे इस अकारण यात्रा का फ़ैसला नहीं लेना चाहिए था. मन अचानक अतीत के उस हिस्से में चला गया जिस काल खंड का उसे कुछ ठीक से याद भी नहीं रहा था. उसके पूर्वजों के गांव के बारे में अक्सर घर में सुना था. माताजी जब ज़िंदा थीं तो हर साल वहां कुल देवता की पूजा करने जाती थीं. वह भी बचपन में शायद एक दो बार गया था. कुछ धुंधला–सा उसे याद भी है बकौल मां के बताये अनुसार स्मृति में छप गया था. वहां पहाड़ों के बीच झरना है, नीचे छोटा सा जलकुंड है. वहां एक पुराना जीर्णक्षीर्ण मंदिर है. गांव में एक आधा कच्चा, आधा पक्का मकान है जिसमें एक हवन वेदी है. मां इन्हीं दोनों स्थानों पर नारियल फोड़ने, प्रसाद चढ़ाने जाती थी. वह तीस साल से गांव नहीं गया. मां को गुज़रे भी दस बर्ष बीत चुके हैं. समय कुछ विपरीत चल रहा था. कल अचानक जब वह अपनी परेशानियों के बारे में सोच रहा था तो उसे याद आया कि लंबे समय से गांव में कुल देवता की पूजा करने घर से कोई नहीं गया. अचानक ही उसका मन जैसे उद्विग्नता से भर गया, उसने आनन-फानन में गांव जाने का निर्णय ले लिया.

ठहराव के अंदर फंसा वह ख़ुद को असहाय और बेचैन महसूस कर रहा था. उसे ख़ुद पर क्रोध आ रहा था कि निर्णय लेते समय उसने तार्किकता से क्यों नहीं सोचा. भगवान की पूजा ना करो तो वह नाराज़ हो जाता है. उसको कुल देवता की पूजा ना करने से जीवन में परेशानी आ रही है ऐसा उसने सोच भी कैसे लिया. देवता आख़िर देवता होता होगा कोई ऑफ़िस का बॉस नहीं कि जो बिना बात के जरा-जरा में परेशान करे और जरा सी श्रद्धा की चापलूसी और उपहार का प्रसाद चढ़ा दो ख़ुश हो जाये. उसने सोचा वह क्या

करे पूरा देश इसी नक़्शे क़दम पर है. इस देश में तो धर्म के उन्माद में सरकार तक बनती-बिगड़ती है वह कोई अलग तो नहीं, इसी देश में पला बढ़ा है. इन तर्कों से उसकी बेचैनी नहीं गयी तो वह सोचने लगा कि ईश्वर के दर्शन भी उसकी इच्छा से होते हैं.

वह अपने तर्क-वितर्क से किसी निष्कर्ष पर पहुंचता तब तक अनजान चौराहे पर बहुत से वाहन एकत्र हो गये थे और शोर-शराबा शुरू हो गया था. ट्रैफ़िक रुकने के साथ ही वाहन रूकने शुरू हुए. जिसको जहां जगह मिल रही थी वहां मनमाने ढंग से वाहन खड़ा कर रहा था. वाहन पूरी तरह बेतरतीब और अस्त–व्यस्त खड़े थे जिससे यह ठहराव और उलझ गया था. वहां शायद इस अव्यवस्था से कोई संतुष्ट नहीं था पर कोई ना तो व्यवस्था के लिए आगे आने की स्थिति में था ना ही कोई किसी की सुनने के लिए तैयार था. गनीमत है कि उस चौराहे पर एक दो जनरल स्टोर की छोटी-मोटी दुकानें थीं, पान के एक दो टपरे थे, चाय नाश्ते की एक दो टपरानुमा होटल थे. बढ़ती भीड़ को देखकर इतना कुछ पर्याप्त नहीं था पर यह सोचकर ख़ुश हुआ जा सकता था कि कुछ तो है.

यात्रा इस पड़ाव पर क्यों रुकी है किसी को स्पष्ट नहीं था, अस्पष्ट तौर पर ख़बर थी कि आगे हिंसा हो गयी है. किसी ने अपने स्रोत से ख़बर दी कि एक किलोमीटर आगे क़स्बे में एक आरक्षण समर्थक समूह का एक आरक्षण विरोधी समूह द्वारा विरोध किया, वहां झड़प के बाद हिंसा हुई, आगजनी हुई. कुछ वाहन जलाये गये हैं, एक दर्जन से ज़्यादा लोग घायल हैं. यह भी ख़बर थी कि एक दो की मृत्यु हो गयी है.

उसे लगा कि यह घटना कोई अनोखी नहीं है. मुद्दा कुछ भी हो सड़क पर जाम, आगजनी, हिंसा आम बात है. इस चौराहे तक क्षति होने का कोई आसार नहीं था इसलिए सब घटना को लेकर परेशान नहीं थे बल्कि यह सोचकर परेशान थे कि इस व्यवधान के कारण ना जाने कितनी देर उन्हें यहां ठहरना होगा. अनिश्चितता जस की तस बनी थी. उसके दिमाग़ में विचार चलने लगे, वह सोचने लगा कि हिंसा के लिए एकत्र भीड़ स्वयं एकत्रित होती है या प्रायोजित होती है? सवाल अनुत्तरित था. उसे लगा कि यह ठहराव शायद यहां रुके हुए सब लोगों की पिछली यात्राओं के अनुभव का रहा है तभी सब चुपचाप इस ठहराव को गुज़ारने की कोशिश में लगे हैं. किसी को देखकर उसे यह नहीं लग रहा था कि इस प्रकार के बलात ठहराव के इतने अनुभवों के बाद लोगों को ठहराव की आदत हो गयी है. सभी बेचैन में दिख रहे थे.

छोटे बड़े ये बलात ठहराव जैसे ज़िंदगी की यात्रा का हिस्सा हो गये हैं. बरसात में सड़क पर जाम तो जैसे आम बात है. सड़क पर दुर्घटना हो जाये तो जाम, हिंसा, आगजनी भी सामान्य सी प्रक्रिया है. व्ही. आई. पी. यात्रा हो, धार्मिक जुलूस हो, राजनैतिक रैली हो, मजदूर आंदोलन हो, छात्रों का आव्हान हो, ये सड़क का जाम हर समय जरूरी हिस्सा होता है. ना जाने कितने अनगिनत कारणों से यह यात्रा सत्तर सालों में केवल इस अनचाहे पड़ाव पर कसमसाती रही है. उसने सोचा वह तो मात्र पैंतीस साल का है शायद यह सत्तर साल की यात्रा देश की यात्रा के लिए उसके दिमाग़ में आया होगा.

किसी ने ख़बर दी कि राजधानी से अतिरिक्त पुलिस बुलायी गयी है. उसके आने के बाद ही व्यवस्था सामान्य होगी और आगे का सफ़र शुरू होगा. लोगों ने अंदाज़ा लगाया कि इस प्रक्रिया में दो-तीन घंटे लग सकते हैं लोगों की बेचैनी अब चरम पर थी. इस स्थिति में आधिकारिक ख़बर की कोई व्यवस्था नहीं थी. अतः जो भी यहां–वहां से ख़बर मिलती लोग उसी के आधार पर अपनी आगे की रणनीति तय करने में लग गये.

यहां रुके लोग परस्पर अजनबी थे अतः एक दूसरे से चर्चा करने में हिचकिचा रहे थे. अब समय बिताने के लिए बहुत से लोग पास की दुकानों पर चाय, नाश्ते, तंबाकू का आनंद लेने लगे. बच्चों ने भी वहां उपलब्ध चिप्स, टॉफी की ख़रीददारी शुरू कर दी. दुकानदारों ने मौक़ा देखकर चीज़ों के दाम बढ़ा दिये थे. कुछ लोगों ने दुकानदारों से कीमतों को लेकर आपत्ति दर्ज करायी, बहस भी की पर कोई फ़ायदा नही था क्योंकि क़ीमत हमेशा मांग और आपूर्ति के सिद्वांत पर तय होती है, व्यापार का अपना कोई नैतिकतावादी दृष्टिकोण नहीं होता है.

उसकी सिगरेट खत्म हो गयी थी, उसे सिगरेट की तलब लग रही थी. वह पान की दुकान पर गया. सिगरेट

खरीदते समय उसने दुकानदार से पूछा — 'इस जगह का क्या नाम है?'

'अहमदपुर चौराहा'

तभी वहां खड़े लोगों में से एक ने कहा — 'तुम्हें यह भी नहीं पता कि इस जगह का नाम सरकार ने बदलकर बसंत देव चौराहा कर दिया है.'

दुकानदार ने विनम्रता से कहा — 'हमें नहीं पता हम तो अनपढ़ आदमी हैं.'

उन सज्जन ने जैसे डॉटकर दुकानवाले से पूछा — 'क्या नाम है तुम्हारा?'

'रामदीन.'

'अब सबको इस जगह का सही नाम बताया करो. 'वहां खड़े एक अन्य व्यक्ति ने जिज्ञासा में प्रश्न किया — 'ये बसंत देव इस क्षेत्र के कोई क्रांतिकारी थे?

'वह व्यक्ति बेरुखी से बोला — 'इतिहास पढ़ा करो, देश की संस्कृति, धर्म और इतिहास के बारे में जानोगे तो सवाल नहीं करोगे? 'वह दुकान से चल पड़ा और कार में बैठ कर सिगरेट का धुंआ उड़ाने लगा, बेचैनी और तनाव से निजात पाने उसे यही उपाय आता था. उसका दिमाग़ शांत नहीं था वह संस्कृति, धर्म, इतिहास के बारे में मनन करने लगा. धर्म और संस्कृति तो शायद उसके लिए वही थी जो आम आदमी के लिए होती, धर्म अर्थात अपना धर्म और संस्कृति अर्थात् अपनी संस्कृति. प्राइमरी स्कूल में वह क्रिश्चियन कान्वेंट में पढ़ा ज़रूर था पर इसाईयत के बारे में शायद कुछ नहीं जानता और धर्मों के उसके मित्र है पर उनके धर्म से वह आज तक नहीं जुड़ पाया. हर साल ईद पर सिंवई खा लेने से ज़्यादा इस्लाम संस्कृति से उसका कोई संबंध नहीं बन पाया.

इतिहास को लेकर उसे हमेशा असमंजस रहा है. वह इतिहास विषय का नियमित छात्र नहीं रहा. जब भी कोई विचारक, ज्ञानी, इतिहास के विभिन्न काल खंडों से कुछ घटनाएं निकालकर कोई तर्क गढ़तें हैं उससे वह भले ही असहमत हो पर असहमति दर्ज कराने के लिए उसके पास तर्क नहीं होते हैं. आख़िर इतनी फ़ुर्सत और धैर्य उसके पास नहीं है वह धूल खाई इतिहास की मोटी-मोटी किताबों में तथ्यों के सत्यापन के लिए अपना समय गंवाए.

देश की आजादी का थोड़ा बहुत इतिहास उसने पढ़ा था, इतिहास की लड़ाई के नायकों के बारे में थोड़ा-बहुत उसने जाना था, सुना था. वह तो उसे सच ही लगता था फिर इस आजादी के इतिहास से असहमत लोगों ने इस इतिहास का निर्वचन शुरू किया. वह भी सोचने लगा कि कहीं आजादी के नायक गढ़े गये तो नहीं है? संविधान देश के प्रति षड़यंत्र तो नहीं है? कहीं कुछ लोगों ने अपनी महत्वाकांक्षाओं में इस देश के धर्म, संस्कृति की अवहलेना तो नहीं की? निष्कर्षहीन तर्क वितर्कों में उलझने से उसका सिर भारी होने लगा. उसने दूसरी सिगरेट जला ली और ख़ुद के विचारों से दूर जाने के लिए वहां एकत्र लोगों के बीच चल दिया.

अब तक अलग-अलग लोग समय बिताने की गरज से छोटे-छोटे समूहों में एकत्र होकर विमर्श कर रहे थे. ठहराव का कारण आरक्षण आंदोलन था अतः चर्चा इसी बिषय के इर्द-गिर्द हो रही थी. यहां एकत्र लोग परस्पर अपरिचित थे. वे यह नहीं जानते थे कि कौन आरक्षित वर्ग का है और कौन अनारक्षित वर्ग का है इसलिए चर्चा संयमित रूप से हो रही थी.

किसी का विचार था कि यह सारे मुद्दे चुनाव के समय उछलते हैं और बाद में ठंडे बस्ते में चले जाते हैं. किसी का मत था कि चुनाव के समय विपक्ष इस तरह के मुद्दे उछालकर अपनी जगह तलाशता है. किसी का वक्तव्य था कि सरकार ख़ुद इस तरह के मुद्दे उछालकर जनता को भ्रमित करने की कोशिश करती हैं ताकि असली मुद्दे दब जायें.

किसी ने पक्षधरता से बचते हुए कहा कि जो भी हो इन मुद्दों के उठाने से जो अराजकता फैलती है और हिंसा होती है उससे सभी का नुकसान होता है. आयकर दाताओं में से किसी ने अपनी चिंता प्रगट की कि हिंसा में नुकसान कोई भी करे उसकी भरपाई का बोझ तो आयकर दाताओं पर ही पड़ता है.

विमर्श संयमित सीमाओं में चल रहा था पर मुद्दे की उत्तेजना से लोग अछूते नहीं थे उनके अंदर विचार उफन रहे थे असहमतियां कसमसा रही थीं. सीमा लांघते हुए एक व्यक्ति ने अपना पक्ष रखा — ग़लती संविधान निर्माताओं की है जिन्होंने कथित समानता के नाम पर लोगों के बीच असमानता के बीज बोये हैं. यह स्थितियां इसी आक्रोश से उपजती हैं. संविधान निर्माताओं पर आक्षेप के साथ ही एक

व्यक्ति ने सीधा बचाव किया — 'उस समय की पृष्ठभूमि में जो जरूरी रहा होगा वो उन्होंने दिया होगा, आज की परिस्थितियों में उन्हें गलत ठहराना कहां तक सही है.'

पर आज ज़रूरी है तो संविधान में परिवर्तन होना चाहिए, अगर सरकार इसके लिए तैयार नहीं है तो प्रभावित लोगों को मांग तो उठानी ही पड़ेगी.

हर विमर्श की तरह यहां भी लोगों की उत्तेजना और आक्रोश बढ़ गया था. इस आक्रोश से शब्दों की मर्यादा नीचे की ओर जाने लगी. एक व्यक्ति ने तीख़े स्वर में कहा — 'हज़ारों साल तक कुछ लोग धर्म, वर्ण व्यवस्था के साथ कुछ लोगों का शोषण किया गया और उन्हें अधिकारों से वंचित रखा गया. संविधान ने शोषितों को अधिकार क्या दिये कुछ लोगों की तकलीफ़ बढ़ गयी वे संविधान निर्माताओं पर उंगली उठाने लगे.'

किसी ने हस्तक्षेप करते हुए कहा — 'छोड़ो भी इसे.' इसे अनसुना करते हुए एक व्यक्ति चीख़ा — 'इतिहास की आड़ लेकर इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को सही नहीं कहा जा सकता. असमानता मिटाने के लिए अक्षम लोगों को अवसर प्रदान करना ग़लत है.'

कई लोग ग़ुस्से में एक साथ बोल — 'अक्षम किसे कहा.'

समूह पक्ष-विपक्ष दो हिस्सों में बट गया. वाद-विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गयी. कुछ लोगों ने बीच-बचाव का प्रयास किया पर लग रहा था हाथापाई हो जायेगी. उसी समय एक पुलिस की गाड़ी वहां आयी और एकदम शांति हो गयी. पुलिस के प्रति लोगों का कुछ भी विचार हो पर ऐसे मौक़े पर पुलिस का आना हमेशा राहत भरा लगता है पुलिस के प्रति लोगों को आस्थावान बनाता है.

पुलिस बल ने सूचना दी कि अतिरिक्त पुलिस बल पहुंच गया है व स्थिति अब नियंत्रण में है पर सुरक्षा के लिए पुलिस बल गश्त लगाती रहेगी अब यात्रा शुरू की जा सकती है. सब जैसे अपनी कुंठाओं और बेचैनी से बाहर आकर यात्रा शुरू करने की तैयारी में लग गये. वाहन को सबसे पहले निकाल कर यात्रा शुरू करने की होड़ लग गयी. इस प्रक्रिया में बेतरतीब खड़े वाहन और उलझ गये. पुलिस ने ख़ड़े होकर व्यवस्था बनायी और एक-एक कर वाहन को रवाना किया.

लंबे ठहराव के बाद यात्रा फिर प्रारंभ हो गयी. वह कार में बैठकर सोचने लगा कि इस यात्रा के साथ कितनी अन्य स्थगित यात्राएं भी शुरू हो गयी होगीं. घायलों को पोस्टमार्टम के लिए भेजा जा रहा होगा. राजनैतिक दल इस घटना को लेकर अपनी आगे की रणनीति खोजने में लग गये होंगे. मीडियाकर्मी अपने-अपने अख़बार और न्यूज़ चैनल के लिए ख़बर और तस्वीरें भेजने में लग गये होंगे. पुलिस प्रशासन स्थिति सामान्य करने की प्रक्रिया में लग गयी होगी.

एक हादसा घटते प्रतिक्रियाएं शुरू होती है, आम आदमी की इसमें रुचि भी उत्पन्न होती है. जल्द ही लोग ऐसी घटनाओं की उत्तेजना से बाहर आकर अपनी दिनचर्या में शामिल हो जाते हैं. वह सोचने लगा कि आम आदमी करे भी तो क्या करे इस तरह की घटनाओं से इतनी बार गुज़रना पड़ता है वह सामान्यता में लौटने को अभ्यस्त हो जाता है. आख़िर आम-आदमी भी इन घटनाओं के अफ़सोस में जिए तो वह साल भर अफ़सोस में ही डूबा रहे.

कुछ देर तक वह इस घटना के बारे में सोचता रहा, फिर अनायास ही वह यात्रा के अगले हिस्से के बारे में सोचने लगा. उसके दिमाग़ में गांव पहुंचने का उतावलापन फिर भरने लगा. उसे ना जाने क्यों लगा कि अगर वे अपने गांव के मंदिर को पुनर्निर्माण कराके एक भव्य स्वरूप दे दें तो उसके जीवन की सारी परेशनियों का अंत हो सकता है. अब उसके दिमाग़ में सिर्फ़ मंदिर था. वह मंदिर के बारे में सोचते हुए अपनी यात्रा पर बढ़ता जा रहा था.

अध्यक्ष, जिला उपभोक्ता फ़ोरम,
सागर (म. प्र.)-४७०००२
मो.-९४२५९९२७५१.
ईमेल : anupam.srivastava02@gmail.com

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला, मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

एम. ए. (समाजशास्त्र) गोल्ड मेडल.

: व्यवसाय :

लेखन व चिकित्सा और सामाजिक क्षेत्र में मरीज़ों की कॉउंसिलिंग.

: प्रकाशन :

काव्यसंग्रह 'तुम कहते तो' सितंबर२०१७ (पुरस्कृत); 'शब्दों से परे' जनवरी २०१८(पुरस्कृत); 'सहेजे हुए अहसास' सितंबर (२०१८); मिलना मुझसे ई-पत्रिका अमेज़न जनवरी २०१९; 'अनुभूतियां प्रेम की' काव्य संकलन जनवरी (२०१९) (संपादन); सुलझे.. अनसुलझे...! (प्रेरक संस्मरणात्मक लेख) सितंबर २०१९; गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में देश-विदेश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, संस्मरण आलेख, लघुकथा व कहानियों, हाइकू का निरंतर प्रकाशन, आकाशवाणी से नियमित प्रसारण. हस्ताक्षर पत्रिका का नियमित स्तंभ 'जरा सोचिए' मेरा ही है. दैनिक ट्रिब्यून समाचार पत्र के लिए समीक्षाएं लिखना.

खिलवाड़

प्रगति गुप्ता

आज सुबह-सुबह विजया की स्कूल मित्र वृंदा का लगभग पांच बरस बाद फ़ोन आया तो अनायास ही विजया के चेहरे पर एक तरफ़ तो मुस्कराहट की लहर दौड़ गयी और दूसरी तरफ़ पांच साल पहले वृंदा के साथ हुए हादसे की कुछ-कुछ अधूरी-सी दुखद यादें भी साथ-साथ ही हरी हो गयीं.

एक दिन विजया को जब एक स्कूल मित्र से अनायास पता चला कि वृंदा की पच्चीस वर्षीया बेटी पंखुरी की एक एक्सीडेंट में मृत्यु हो गयी है. हम सभी मित्रों के लिए यह ख़बर बहुत झझकोरने वाली थी, क्योंकि सभी के बच्चों की उम्र लगभग एक-सी होने के कारण सबके सुख-दुःख साझे थे.

हादसे के तुरंत बाद विजया ने वृंदा से संपर्क साधने की बहुत बार कोशिश की पर शायद वृंदा ने अपना फ़ोन ही स्विच ऑफ़ करके रख दिया था. आज पांच साल बाद यूं अचानक से वृंदा का फ़ोन आते हुए देखकर विजया की आंखें नम हो गयी. शायद विजया वृंदा के हालचाल जानने के लिए बहुत समय से प्रतीक्षारत थी. स्कूल की मित्रता अक्सर भूले नहीं भूलती और छूटने के बाद भी नहीं छूटती.

'कैसी है वृंदा...? कब से तेरे फ़ोन के लिए प्रतीक्षारत थी... कहां से बोल रही है तू?... विजया ने फ़ोन को रिसीव करते ही जैसे ही वृंदा से पूछा उसकी आंखों में तैरती नमी ने मानो उसके शब्दों पर अचानक ही बाड़ लगा दी.

'मैं ठीक हूं विजया...तू कैसी है... आज तेरे शहर में ही मेरे पति के ऑफ़िस की एक मीटिंग है. आज रात को ही हमारी ट्रेन भी है.

बता कहां मिल सकती है तू? मैं अभी मिलने आ जाऊंगी. बाक़ी बातें वहीं करेंगे. वृंदा ने विजया से पता पूछा और वो घंटे भर में उसके पास पहुंच गयी.

इतने अरसे बाद जब विजया ने वृंदा को देखा तो कसकर गले लग कर

दोनों सखियां पहले तो न जाने कितनी देर तक एक दूसरे के कंधे पर आंसू बहाती रहीं फिर अनायास ही विजया ने पूछा...'कौन छोड़ने आया तुझे वृंदा...?'

'मेरे पति की ऑफ़िस की कार. बेटी के साथ हादसा होने के बाद से मेरे पति मुझे अकेला नहीं छोड़ते हैं. उनकी किसी भी शहर में मीटिंग हो हम दोनों साथ ही निकलते हैं.

इकलौती बेटी के जाने के बाद, कैसे मेरे पति सुरेश ने ख़ुद को संभाला, मैं नहीं जानती पर अगर सुरेश ख़ुद को समय पर नहीं संभालते तो घर चलाना मुश्किल हो जाता. शायद आदमियों का हृदय सूखी रेत-सा होता हैं. ख़ुशी हो या ग़म नमियों को चुपके से सोखता चलता है. उनके भीतरी नमी को छूने के लिए भी बहुत हौसला चाहिए विजया.'

वृंदा बोलकर चुप तो हो गयी. पर उसकी आंखों में तैरती नमी मुझे बार-बार महसूस करवा रही थी कि वृंदा अभी पूरी तरह संभली नहीं है.

अभी बहुत कुछ है जिसकी मरम्मत होना बाक़ी है. वृंदा की आंखों में पल-पल तैरती नमी विजया की आंखों को भी बार-बार नमी दे रही थी.

अनायास ही हादसों की शिकार हुई संतान समय के साथ मां-बाप को चलने-बढ़ने के लिए खड़ा तो कर देती है, पर एक टूटन सोते-जागते उनका कभी भी पीछा नहीं छोडती है. गये हुए बच्चे की सीने से चिपकी हुई कमी छूटती कब है. कुछ रिश्ते मन के समझाए से भी नहीं समझते.

'तूने घर के बाहर निकलना शुरू कर दिया है वृंदा इससे अच्छी क्या बात हो सकती है. सब धीरे-धीरे ही ठीक होगा न.' जैसे ही विजया ने वृंदा का हाथ अपने हाथों में लिया, वृंदा की आंखों से आंसुओं की धार टपटप विजया के हाथों पर गिरने लगी और उसने सुबकते हुए विजया से कहा...

'मेरी बेटी पंखुरी की असल कहानी नहीं सुनेगी तू विजया? मेरी बेटी के हादसे की कहानी आज तक किसी को नहीं पता विजया. मैंने किसी को बताया ही नहीं कभी... सुन ले तू भी... कैसे मेरी बेटी भी एक कहानी बन गयी.

विजया! तू ही बता कैसे मैं दिल्ली जैसे बड़े शहर में पली-बढ़ी अपनी बेटी की नादानियों को सबके सामने बताती. बहुत होशियार थी मेरी बेटी एम. बी. ए. करने के बाद बहुत अच्छी नौकरी मिल गयी थी उसको. कब कैसे उसकी संगत बदली मुझे पता ही नहीं चला विजया. मैं तो उसकी शादी की सोच रही थी.'

अब वृंदा बोलते-बोलते चुप होकर शून्य में ताकने लगी थी. शायद गुजरा हुआ एक-एक घटना क्रम उसकी आंखों के सामने से गुज़रने लगा था.

'अगर तेरा मन अच्छा नहीं है तो मत बता वृंदा हम कभी और सुनेंगे.' विजया ने उसकी मनःस्थिति पढ़ते हुए कहा.

'नहीं विजया तू सुन ले प्लीज़, शायद मैं कुछ हल्की हो जाऊं... मैं तुझे पंखुरी की नौकरी के बाद के उन सभी घटनाक्रमों को ज्यों का त्यों सुनाना चाहती हूं जिनको मैंने झेला है विजया. फिर तू बताना, कहां पर ग़लत थी मैं. क्या मेरी परवरिश में कोई कमी रह गयी...शायद हल्की हो जाऊंगी तुझको बताने से. आज भी जब अकेली बैठती हूं मेरी बेटी की बातें मूवी के जैसे चलने लगती हैं विजया...'

'मां! आज दोस्तों की होटल पार्क में ऑफ़िस के बाद पार्टी है. रात देर हो जायेगी आने में. हर बार की तरह इंतज़ार मत करना...' अक़्सर ही पंखुरी मुझे किसी भी पार्टी में जाने से पहले कुछ इस तरह ही बताया करती थी.

'कौन-कौन जा रहा है बताओगी या फिर हमेशा की तरह कहोगी, आप जानती तो हो मां मेरे सभी दोस्तों को, फिर बार-बार क्यों पूछती हो?'

...मेरे हर बार पूछने पर यही ज़वाब मिलता था...

'सही तो है मां! बड़ी हो गयी हूं अब मैं... कमाती है अब आपकी बेटी ...ऑफ़िस में काम करती है... अब बहुत सोचना बंद कर दें मेरे लिए ..मेरी ज़िंदगी है, मुझे मेरी तरह जीने दें. मैं अपनी नौकरी व दोस्तों के साथ को ख़ूब इन्जॉय करना चाहती हूं... ये समय वापस नहीं आयेगा मां...'

'जानती है विजया. उस समय मैं सिर्फ़ हम्म बोलकर चुप्पी साध लेती, क्योंकि जानती थी मेरा कुछ भी कहना इसको समझ नहीं आयेगा...

पंखुरी के ऑफ़िस के टाइमिंग और पार्टियों के टाइमिंग कुछ ऐसे थे कि कभी उसके साथ उसकी नौकरी के बाद बैठी हूं. मुझे याद नहीं आता.

'विजया! पंखुड़ी के हमेशा ही कहे हुए इस तरह के डॉयलाग मुझे बहुत आहत करते थे. वैसे भी पंखुड़ी की इस तरह की बातें बोलने पर यही लगने लगा था कि मुझे भी

सोच लेना चाहिए कि मेरी बेटी बड़ी हो गयी है और अपने निर्णय ले सकती है. सो मैंने भी हमेशा ही उससे उतना ही पूछने की कोशिश की जितना ज़रूरी था. पर मैं अक्सर दबी आवाज़ में ख़ुद से ही कहती थी...'जानती हूं बेटा! तुम्हारी ज़िंदगी है.' फिर मन ही मन मैं बुदबुदा जाती.. 'पर तुम भी तो मेरी बेटी हो ... मेरे शरीर का हिस्सा...मेरी ज़िंदगी का हिस्सा...शायद मेरा बहुत कुछ...'

गुज़रती रातों में कई-कई बार पंखुरी के कमरे के चक्कर लगाना, मैं कभी नहीं भूलती थी. पर कब पंखुड़ी का इंतज़ार करते-करते मेरी भी आंखें लग जातीं, पता ही नही चलता. कई-कई बार सवेरे हड़बड़ा कर उठती तो पंखुरी को सवेरे तक भी नदारद पाती. कुछ भी बोलने पर वही जवाब...

'फलां दोस्त के यहां थी मां... बहुत मत सोचा करो. समझ है मुझे अपने अच्छे-बुरे की, मुझे अपनी तरह जीने दो...

पंखुरी की समय के साथ रोज़-रोज़ की पार्टियां भी बढ़ती ही जा रही थीं. कभी नशे में धुत्त लौटती तो कभी चार-पांच लड़के-लड़कियों के साथ. सारे के सारे एक ही कमरे में बंद हो जाते और रात-रात भर हुड़दंग चलता. रसोई में उन सबका आना-जाना बना रहता. कभी कुछ बाहर से ऑर्डर किया जाता, तो कभी रसोई के फ्रिज़ से बर्फ़ निकालने की आवाज़ें आतीं...

चूंकि मेरा और सुरेश का कमरा नीचे ही था तो मुझे उन सभी की अस्पष्ट-सी आवाज़ें सुनायी देती थी. पर जानती है विजया जब पंखुरी के दोस्त घर में होते, मैं या रसोइया उसके कमरे में जाने का भी नहीं सोच पाती थी. मुझे लगता था कहीं पंखुरी अपने दोस्तों के सामने मुझ से कुछ ऐसा नहीं कह दे जो मुझे आहत करे.

पंखुरी के पिता सुरेश की नौकरी शहर से बाहर होने से, उनका आना-जाना महीने में दो या तीन बार ही होता था. मैं उनको कुछ बोलती-बताती तो, दूर से बैठकर वो बातों की गंभीरता को इतना नहीं सोच पाते. मैं भी पंखुड़ी को समझा-समझाकर थक चुकी थी...

अच्छी पढ़ाई–लिखाई करवाने के बाबजूद भी, ऐसा रूप सामने आयेगा मैंने कभी नहीं सोचा था. खाने-पीने वाले दोस्तों की सौबत और पंखुड़ी की उच्च पढ़ाई-लिखाई, सैलरी के बड़े पैकेज़ ने उसको सातवें आसमान पर बैठा दिया था...

बहुत अधिक शराब और ड्रग्स लेने से पंखुरी अब बीमार रहने लगी थी और मेरा कुछ भी बोलना समझाना, पंखुरी से मेरी बेइज़्ज़ती ही करवाता था. अब मूकदर्शक बनी मैं सिर्फ पंखुरी को आते-जाते देखती और उसके घर को लौटते क़दमों की राह देखती, तो कभी ईश्वर के आगे उसके लिए प्रार्थनाएं करती...

तभी एक दिन अचानक देर रात बजी फ़ोन की घंटी ने मुझे बहुत घबरा ही दिया. शहर के एक हॉस्पिटल से फ़ोन था...

'आपकी बेटी ने नशे की हालत में गाड़ी चलाते हुए एक एक्सीडेंट किया है. जल्दी ही हॉस्पिटल पहुंचें. काफ़ी सीरियस है वो. शायद किसी नर्सिंग स्टाफ का फ़ोन था. जैसे-तैसे अपनी कार को ड्राइव करके मैं हॉस्पिटल पहुंची तो ... ख़ून से लथपथ पंखुड़ी को आई. सी. यू. के बिस्तर पर देखा और एक बार तो मैं पूरी तरह हिल गयी फिर ख़ुद सयंत होकर नर्स से पूछा.

'इस एक्सीडेंट में और किसी को चोट तो नही आयी.'

'नही मैडम' बस नशे की हालत में पंखुरी की गाड़ी जिस रोड साइड पर खड़ी गाड़ी से टकरायी उस परिवार के लोग गाड़ी ख़राब हो जाने की वज़ह से गाड़ी के बाहर ही खड़े हो कर मैकेनिक का इंतज़ार कर रहे थे. शुक्र है उन लोगों की गाड़ी तो बुरी तरह टूट गयी है पर पूरा परिवार सही सलामत है. पर आपकी बेटी को कार की स्पीड बहुत तेज होने से काफ़ी सारी चोटें आयी हैं. काफ़ी सीरियस है वो...'

जानती है विजया उसी वक़्त मुझे अपने हाथों से सब कुछ छूटता नज़र आ गया था. हॉस्पिटल में आवाक् खड़ी मैं अपने आपको कुछ पागल-सी ही महसूस कर रही थी... तभी मुझे हॉस्पिटल में लगी भगवान की मूर्ति नज़र आयी तो धम्म से वहीं हाथ जोड़कर बैठ गयी.

उस समय जो भी मंत्र दिमाग़ में आते गये, बस बोलती गयी जब थोड़ा संभली, आई. सी. यू. की तरफ वापस बढ़ गयी... सुरेश भी नहीं थे मेरे पास. उनको भी फोन कर दिया था मैंने पर उनके पहुंचने में वक़्त लगना था...

विजया! पंखुरी उस समय लगातार मां, मां बड़बड़ा रही थी. कभी थोड़ा होश में आती तो कराहती हुई बोलती ... 'मुझे बचा लो मां... अपनी बेटी को बचा लो ...बहुत

दर्द है मेरे...सहन नहीं हो रहा...'

मैंने पंखुरी के माथे पर हाथ रखा और उसके बालों को जाने कब तक सहलाती रही. उस वक़्त मेरी आंखों से आंसू रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे. शब्द खो गये थे. बार-बार पंखुरी के कहे, वही वाक्य आस-पास से होकर गुज़र रहे थे. जिनकी वज़ह से मेरा पुत्री मोह टूटने लगा था...

'मेरी ज़िंदगी है मां मुझे अपनी तरह जीने दो. मुझे आपकी हर बात में दखलंदाज़ी करना बिल्कुल अच्छा नही लगता. आप बहुत परेशान मत हुआ करो मां... अपना कमाया हुआ ही ख़र्च करती हूं, आपसे तो नही मांगती, फिर क्यों मुझे इतना टोकती हो' नशे में धुत्त पंखुड़ी की बोली हुई बातें मेरे दिमाग़ से निकलती ही नहीं थीं विजया...

मैंने उस दिन पंखुरी की टूटती सांसों को बहुत क़रीब से महसूस किया और मैं मन ही मन बुदबुदाने लगी..

'पंखुरी मैंने तो तुमको तभी से धीरे-धीरे छोड़ना शुरू कर दिया था बेटा, जिस दिन से तुमने मुझे अपनी ज़िंदगी से हटाना शुरू कर दिया था.'

मैंने जन्म दिया था तुमको. तुम्हारी चिंता करना मेरी आदतों में था बेटा पर ज्यों-ज्यों तुम मुझे ख़ुद से अलग करती गयी, मैं अपनी उसी टूटन को साधकर तुमसे दूरी बनाने में इस्तेमाल करती गयी...

बहुत मुश्किल अभ्यास था मेरे लिए बेटा... आख़िरकार तुमको भी तो कभी बड़ा मानकर, मुझे तुम्हें अपने जीवन के निर्णय लेने के लिए छोड़ना ही था ... तुम्हारी ज़िंदगी ही थी बेटा. तुमने जो किया वो तुम्हारी ज़िंदगी की सोच से जुड़ा था. उसमें हमारी चिंताएं कहां थीं बेटा?

तुम्हारी ज़िंदगी थी, तभी तुम सिर्फ़ अपना सोच पायी.... ज़िंदगी अगर तुम्हारी भी थी तो उससे ना समझ-सा खिलवाड़ क्यों किया पंखुड़ी... सच कह रही हूं विजया उस दिन ना जाने कैसे मैं अपनी ही बेटी के लिए यह सब बुदबुदाती गयी. आज सोचती हूं तो लगता है मां होकर क्या मुझे इतना कठोर होना चाहिए था.

कब टूटती सांसो ने पंखुड़ी का साथ छोड़ा, यह मुझे मुआफ़ी मांगती पंखुड़ी की आंखों में नज़र आ गया था...

विजया! जो बच्चे मां-बाप को कमज़ोर बनाते हैं वही कई बार उनकी जिद्द की वजह से मज़बूत भी बना देते है. इसका अहसास उस दिन मुझे बख़ूबी हुआ विजया...

उस दिन हॉस्पिटल की सीढ़ियां पहले चढ़ते और फिर उतरते समय मैं, ईश्वर के आगे अपना सर झुकाना नहीं भूली. पर विजया नहीं भूल पाती हूं मैं अपनी बेटी को. मैंने स्वयं को ख़ूब समझा-बुझा लिया पर मैं ठीक नहीं हूं... बता न मैं क्या करूं विजया.'

'सब ठीक हो जायेगा वृंदा बस तू अपने मन से किसी भी तरह के अपराध बोध को मत पाल. ग़लत नहीं है तू...

'विजया! मेरी बेटी का हादसा बोझ था मुझ पर, इतनी सारी बातें मैंने सुरेश को भी नहीं बतायी थीं क्योंकि वो तो यही सोचते न, मेरी परवरिश में कमी रही होगी या मैंने ध्यान नहीं रखा होगा.'...अपनी बात ख़त्म कर न जाने कितनी देर तक वृंदा चुपचाप बैठी रही. फिर वृंदा ने उठकर विदा ली और कहा... 'तू कहानियां लिखती है न विजया, एक कहानी युवाओं की मनमानियों पर भी लिख. ताकि उनको पढ़कर महसूस हो कि परिवार में किसी की भी ज़िंदगी सिर्फ़ उन्हीं की नहीं होती, सभी की ज़िंदगी का मूल्य एक दूसरे के लिए होता है...

लिखेगी न विजया तू मेरी बेटी पर एक कहानी.'

मेरे सहमति में सिर हिलाते ही वृंदा ने सुकून की सांस ली.' और वो फिर से मिलने का वादा कर लौट गयी.

५८, सरदार क़्लब स्कीम,
जोधपुर - ३४२००१
फ़ोन: ०९४६०२४८३४८
मेल:pragatigupta.raj@gmail. com

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.
- संपादक

८ अक्तूबर, गया (बिहार)
एम. बी. बी. एस, रिम्स, रांची.

: प्रकाशन :
हंस, प्रभात ख़बर, हिंदुस्तान, संभवा इंजोर, गुंजन, साहित्य, नेस्ट में कविताएं, कहानी, लेख प्रकाशित.

: प्रकाशित :
तीन काव्य संग्रह : 'मैंने पाया है तुम्हे', 'तुम लौट आयो मां', 'तुंगभद्रा की व्यथा' प्रकाशित.

: पुरस्कार :
सृजन श्री वीरांगना सावित्री बाई फुले पुरस्कार, साहित्य सरिता सम्मान, प्रमोद वर्मा सम्मान, वैज्ञानिक राजभाषा विशिष्टता सम्मान, भारतीय भाषा एवं संस्कृति संगम द्वारा अमेरिका में सम्मानित, अखिल भारतीय डॉ. कुमुद टिक्कू कहानी प्रतियोगिता पुरस्कार.

: वर्तमान में कार्यरत :
चिकित्सा अधीक्षक, सेंट्रल हॉस्पिटल, डकरा, पो. डकरा, थाना- खलारी, जिला-रांची, झारखंड-८२९२१०

नैहर छूट गयो

डॉ. प्रभा कुमारी

ललिया रिश्ते में मेरी दूर की फुआ थी. सांवली, सलोनी, संवरी–संवरी–सी, हमेशा सुरुचिपूर्ण वस्त्र विन्यास में, फ़ोटो खिंचाने की शौक़ीन. उसकी कई तस्वीरें भिन्न पोज़ों और भिन्न परिधानों में दीवार पर लगी रहती. खाने-खिलाने, घूमने, सिनेमा देखने और फ़ैशन की दीवानी. रात में ज़्यादातर चीनी की चाशनी बना उसके साथ रोटी खाती. मीठे की इतनी शौक़ीन. मिठाई की ख़रीद को अगर ग़रीबी और महंगाई मार गयी तो क्या? मां-बाप की लाड़ली, मोहल्ले के ममताभरी शमियाने तले बढ़ती चली गयी, छतनार भयी. गर्मी के उमस भरे दिन जब रात का चंदोवा तन जाता. खाट पर लेटे-लेटे हम लोग तारों के समूह से बनी विचित्र आकृतियों का अवलोकन करते रहते, नीचे गली में ललिया और आस-पड़ोस घरों की बेटियां झूमर गातीं. एक पंक्ति में बद्ध, एक दूसरे को पीछे से कमर में हाथ डालकर एक लय में आगे बढ़ती और दूसरी तरफ़ की इसी तरह की पंक्ति के सामने पहुंचकर झुकती, फिर पीछे की ओर बिना मुड़े वापस लौट जाती. उनके लौटने के बाद दूसरी पंक्ति, इसी तरह एक दूसरे के कमर में हाथ डालकर पहली पंक्ति के पास आ झुकती फिर बिना मुड़े लौट जाती. इस लयात्मक प्रक्रिया के दौरान झूमर की सुरीली आवाज़ पूरे वातावरण में झरने–सी गूंजती रहती. मंद पवन की तरह बहती बारिश में भीगी मिट्टी की एक सोंधी ख़ुशबू हर घर में व्याप्त हो जाती.

'पटना के टिकवा रे बभना,
मांगिये शोभे रे तोर,
एतना सुरतिया रे अमलो
करेजवे सालोगे मोर,
पटना के नथिया रे बभना
नकिया शोभे रे तोर,
एतना सुरतिया रे अमलो
करेजवे सालोगे मोर....

उस संगीत लहरी में डूबते-उतराते कब पूरा मुहल्ला सो जाता, पता नहीं चलता था. कभी-कभी हम लोग भी पंक्तिबद्ध हो जाते थे. साथ चलते, धूल उड़ाते, बड़ा मजा आता था. किसी-किसी घर में जहां छत नहीं थी, उन घरों के आगे खटोला लगा रहता, जिन पर बच्चे कुनमुनाते रहते. बड़े लोग घर की सीढ़ी पर बैठकर झूमर का आनंद उठाते रहते. झूमर की स्वर लहरी पायल की झंकार के साथ रात की निस्तब्धता में रस घोलती रहती. पैर के चाप ताल देते.

दस-बारह साल की उम्र में ललिया का ब्याह हो गया. ससुराल ठेठ गांव. जहां शहर की कोई सुख-सुविधा, आकर्षण, लुब्बे-लुबाब नहीं. नमक तक के लिए कई कोस चलना पड़ता था. शादी कढुइये हुई थी, यानि कुंवारी ही ललिया ससुराल गयी. अग्नि फेरे और सिंदूर दान सब ससुराल में ही हुआ. दस बारह लोग ससुराल से आये थे. पूरी-कचौड़ी, सब्ज़ी, बुंदिया बना. रात में सब खाकर, दूसरी सुबह लड़की ले विदा हुए. खिलाते समय औरतों ने जी भर गाली सुनायी. यही रिवाज था. बराती सब नज़र नीची कर खाते जाते और गाली का मजा लेते जाते. दो दिन बाद ललिया लौट आयी. मांग में भखड़ा सिंदूर, हाथ में भर-भर चूड़ियां, गले में चंद्रहार, पैरों में बिछिया, पायल, ललाट पर गोल लाल बिंदी. रंग-रूप कितना बदल गया था. अब कूदने-फांदने, हर घर में डोलने वाली ललिया सलीके से साड़ी पहने रहती. बड़ों को देखते ही आंचल सर पर आ जाता. कुछ दिन बाद स्कूल खुल गया. ललिया ने स्कूल जाना नहीं छोड़ा. हां, स्कूल वह सलवार-कुर्ता पहन कर जाती थी. उसका फ़ोटो खिंचाने, सिनेमा देखने और दोस्तों के घर आने-जाने का सिलसिला बदस्तूर जारी रहा. इस बीच जो नया हुआ वह कि ललिया का दूल्हा 'रमन' अब गाहे-बगाहे घर आने लगा. जंवाई के होने के कारण कोई उसे मना तो नहीं कर सकता था. पढ़ाई अधूरी थी, उम्र भी कच्ची. गौना कैसे कराया जाता. ललिया तेरह-चौदह साल के खुमार, अलमस्त, ख़ुद में सिमट रहने वाले दौर से गुज़र रही थी. जिस दिन फूफा आते. ललिया फुआ ख़ूब सजती और चुपके से रात होने पर पति के कमरे में घुसती. हम लोग पहले से वहां मौजूद रहते. पूरा कमरा बच्चों के हुड़दंग से भरा रहता. मां चिल्लाती, सब आओ. बाहर निकलो.

ललिया सहमी, सकुचाई दरवाज़े से लगकर खड़ी रहती. उस समय वो दुल्हन–सी लगती. एक-एक कर हम लोग बाहर निकल जाते. बसंत के फूल यौवन की गंध पा प्रमुदित हो रहे थे. अभी प्रस्फुटित होने में वक़्त था, पर कामदेव के सान्निध्य से असमय फूल फल बना.

ललिया की मां ने अपनी गोतनी से धीरे से पूछा, 'देखी न ललिया के पैर भारी हो गइलई. का कहियई पहुना मानबे न करथीन.'

गोतनी 'अब तो बच्चा होगा तभी न गौना कराने सकेगी. कुछ महिना तो अब रुकना पड़ेगा.' पर असमय फूल का फल कहीं विकसित हो पाता है. फल डाली से गिर गया. दमकती-चमकती आंखें जब न तब डबडबा जातीं. ललिया कुमला गयी. मौसम जो महुआ के गंध से बौरा रहा था, बोझिल, गंधहीन हो गया. कई महीने लग गये, इस झंझावत से उबरने में. फुआ बिना झूमर, बिना पायल के छम-छम सुने, बिना हमारे पैरों की थाप की गुदगुदाहट महसूस किये सो जाती. समय धीरे-धीरे बदलने लगा. पाहुन फिर से आने-जाने लगे. ललिया फिर चहकने लगी. तारे कई कहानियों के ताने-बाने में फंसकर छत पर उसी तरह झिलमिलाने लगे.

ललिया का गौना करा दिया गया. ससुराल खाटी देहात. खपरैल के घर में ढेर सारी गायें, बैल और भैंस. सभी कमरों का मिट्टी का फ़र्श, बड़ा-सा आंगन. छप्पर पर दाल, जौ, मकई की कटी फ़सलें पसरी हुई रहतीं. नंगे-अधनंगे, नाक सुड़कते, आंखें मिचमिचाते, बच्चे उसे चारों तरफ़ से घेर लिये. 'कनाई आ गयी, कनाई आ गयी' शोर हुआ. बच्चे बड़ी हसरत से उसके गहने कपड़े देख रहे थे. छू रहे थे. गांव की औरतें परिछने आयीं. बड़े-बड़े छापों वाली मैली-कुचैली साड़ी में लिपटी. झुक-झुक कर चावल छिटी बलैया ली, नज़र उतारी. 'अरी शहर की कनाई है, देखो कितने सुंदर गहने और कपड़े.' सभी उसे लेकर ठिठोली कर रही थीं. उसके बाद लौट गयीं. दालान खाली हो गया. शहर की लड़की देहात में लोर टपकाती, गर्मी की उमस से बेचैन होती, शीत से कांपती, उपले थापती, गोबर से घर लीपती, लकड़ी पर खाना बनाती, धुंए से परेशान, अक-बकाती, ऊसर ज़मीन पर जीवन के हल से जोते जा रही थी. ऊसर ज़मीन पर धान की रोपनी होती है. मांसल शरीर सूख के कांटा हो गया. पनीली आंखें पथरा

गयीं. आंखों के किनारे काले घेरे पड़ गये.

एक दिन ललिया की मां बिंदेसरी उससे मिलने आयी. बेटी का यह हाल देख अंदर से हिल गयी. दूसरे ही दिन उसे लिवा लायी. घर आकर उसकी हालत सुधरने लगी. चेहरा भरने लगा. आंख फिर से चमकदार हो गयी. ललिया के पति का आना फिर से चालू हो गया. ललिया के पिता रिटायर्ड हो चुके थे. गृहस्थी डांवाडोल, दौड़-धूप करके बिंदेसरी ने पाहुन को एक फ़ैक्टरी में नौकरी दिला दी. क़िराये का एक कमरा भी दिलवा दिया. ललिया की गृहस्थी हिलते-डोलते डोंगी की तरह जीवन-सागर में तैरने लगी.

उस दिन बड़ी उमस थी. रविवार था. हम लोग घर में थे. ललिया अचानक रिक्शे से उतरी और ज़मीन पर पसर बिलख-बिलख कर रोने लगी. बिंदेसरी के हाथ के तोते उड़ गये. 'क्या हुआ ललिया?' बिंदेसरी ने आकुल हो पूछा. जबाब में ललिया हपसती रही. थरथराहट से होंठ हिलते थे, पर आवाज़ कंठ में ही अवरुद्ध हो जाती. बिंदेसरी का धैर्य टूटने लगा. कंधा हिलाकर बोली — 'बोलती क्यों नहीं हो?' जबाब में ललिया ने पीठ खोल कर दिखा दी. पूरी पीठ पर काले-नीले निशान. 'हाय रे माय, मार दिया मेरी बेटी को. किसने किया.' बिंदेसरी वहीं छाती पीट-पीट कर रोने लगी.

'ओ मां, हाय मां,' ललिया रोती जा रही थी. दर्द से चेहरा विवर्ण हो गया था. बाल बिखरे, कपड़े अस्त-व्यस्त. हमेशा टिप-टॉप रहने वाली ललिया मलिन और क्लांत, ज़मीन पर मुरझाए फूलों के मानिंद बिखरी पड़ी थी. 'मईया तोर दामाद की करतूत हईये' ललिया बोली.

बिंदेसरी — 'तुमने कुछ कहा था उसे.'

ललिया — 'नहीं माई वो तो फ़ैक्टरी मालिक की बेटी के साथ उसका कुछ चल रहा था. टोका तो ये हाल कर दिया.

बिंदेसरी — 'हाय निगोड़ा, निर्लज्ज को ज़रा भी दया नहीं आयी. मेरी ललिया का ये हाल कर दिया.' ...'हे देवी माई उसको बज़्ज़ड़ पड़े.'

हल्दी गरम कर पूरी पीठ पर मली. थोड़ी देर रोने के बाद ललिया शांत हुई पर लोर आंखों से टपकता ही रहा. बिंदेसरी ने सपने में भी नहीं सोचा था कि दामाद ऐसा निर्दयी और व्यसनी होगा. उस दिन चूल्हे के साथ सबका उपवास रहा. बिंदेसरी ललिया की तीमारदारी में व्यस्त. दु:ख का अलग आलम. खाना कौन बनाता. ललिया के भाई सूरज तक ख़बर हुई. तमतमाते हुए पहुंच गया रमन के पास. भरी सड़क पर साइकिल से उतरवा उसका गला पकड़ लिया. बोला — 'अगर दोबारा ये हरक़त की तो काट के रख दूंगा. मेरी बहिनिया को इतनी बेदर्दी से मारा है. तेरी बहिनिया को उठाकर ले आऊंगा.'

उस समय तो मामला यहीं शांत हो गया. पर ललिया पर जुल्मों सितम का जो दौर शुरू हुआ उसका तारतम्य कभी नहीं टूटा. निर्लज्ज उसका पति मारने-पीटने तक ही सीमित नहीं रहा. खाना-पीना देना भी बंद कर दिया. दुकानदारों को ललिया को उधार देने से मना कर दिया. ललिया तब ट्यूशन करने लगी, आस-पास के दो चार बच्चे उससे पढ़ने आने लगे. जाड़े में स्वेटर बुनती और बचे समय में लेमनचूस के रैपर लगाती. इस तरह ज़िंदगी धीरे-धीरे खींच रही थी. चूंकि ललिया रहती थी तो पति संग ही. अत: रमन पति होने का दर्प और अधिकार क्यों छोड़ता. उसकी भूख-प्यास के लिए ललिया का कलेवा मौजूद रहता. ऐसे में ही ललिया का पैर भारी हो गया. ख़बर सुनकर बिंदेसरी ललिया को घर लिवा लायी. ठीक समय पर एक प्यारी–सी बेटी ने जन्म लिया. सुनकर ससुराल वाले मुंह बिचकाए, रमन उस दिन बेटी को देखने भी नहीं आया. दूसरे दिन खाली हाथ डुलाते आया. बड़ी हुलस कर बिंदेसरी ने पाहुन को नातिन गोद में दी. गोद में ले रमन उसे निरखा, फिर बिना कोई प्रतिक्रिया के ललिया के बगल में सुला चला गया. नर्स दाई सब इनाम की बांट जोहती रह गयीं. ललिया की पनीली आंखें डबडबा गयीं. बिंदेसरी का मुख छोटा-सा हो गया, पिछवाड़े जा आंखें पोंछी. घर आकर थाली पीटकर बच्चे के होने का संदेश मुहल्ले को दिया. ललिया को पीढ़े पर बिठा नज़र उतारी. कमरे के अंदर ले गयी. कुछ दिन घर में ख़ूब चहल-पहल रही. छठी के दिन बिंदेसरी ने कई प्रकार की सब्ज़ी, साग, पूरी, भात-दाल पकाया और पूरे घर को खिलाया. संयुक्त परिवार था. सुख-दु:ख सब मिलकर झेलते थे. यहां से वहां तक सबका बराबर का आधिपत्य था. बच्चों की किलकारियां और रूदन सबको सामान रूप से आकर्षित और विचलित करता था. धूप और छांव के ख़ूबसूरत चित्र परिवार के हर सदस्य के जीवन पृष्ठ पर समान रूप से चित्रित होते थे.

दूसरे साल ललिया को बेटा हुआ. बेटा को ले रमन

सबको अपना पुरुषार्थ दिखाता फिरा. नर्स और काम करने वालों को दस-दस रुपये का नोट और पुरानी साड़ी दी गयी. ललिया के मुख पर भी संतोष और गौरव के रंग उभर आये. पूरे मुहल्ले में मिठाई बंटी. छठी में पूरा मुहल्ला खा अघाया. तीसरे साल कहर बनकर टूटा. ललिया के पिता को हार्टअटैक हुआ. वे बच न सके. जैसे-तैसे बरांडा में लिटाया गया. छाती को जोर-जोर से दबाया गया पर हृदय की गति जो थमी तो फिर न चली. अब तो जो सहारा था वह भी छिन गया. बिंदेसरी के आंसू थमते नहीं थे. चारों ओर अंधेरा. बेटी की दयनीय स्थिति, बेटा तैयार नहीं, आमदनी का कोई जरिया नहीं. बिंदेसरी बुक्का फाड़कर रो ही रही थी.

— हाय रे निर्मोहिया ख़ुद चल गेला और हमरा अकेले छोड़ देला रजवा. केकर आसरे अब हम सहबों गे माई.

उसकी रुलाई से पूरा मुहल्ला द्रवित हो रहा था. दशमी तक तो क्रिया-कर्म में व्यस्त होने के चलते उन लोगों के सामने दुःख का जो पहाड़ आ गया था, दिखाई नहीं पड़ा. ब्रह्मभोज के बाद अब काम कैसे चलेगा, का प्रश्न सामने खड़ा था. यहां से शुरू हुआ ललिया के भाई सूरज की स्ट्रगल. उस पर कोई भी काम पकड़ने का दबाव बढ़ने लगा. पारिवारिक तनाव और उलझनें भी. सूरज का ब्याह हो चुका था. दो छोटे बच्चे थे. छोटी तो मात्र छः महिने की थी. इतनी बड़ी गृहस्थी और पैसे का कोई आमद नहीं. सूरज की पढ़ाई-लिखाई छूट गयी. ट्यूशन लेना शुरू किया. कोयला ढुलाई का भी काम करने लगा. अब वे घर पर कम नज़र आते. उनके घर लौटने से पहले हम लोग सो जाते. एक-एक कर सूरज को छः बच्चे हुए. दो बेटों के लालच में चार बेटियां. ललिया को भी चार, दो बेटा और दो बेटी. ग़रीबी की चादर छोटी होने के बजाय बढ़ती गयी. और बढ़ती गयी उन पर मज़बूरियों, परेशानियों और बीमारियों की कढ़ी कशीदाकारी. ललिया का पति लेमनचूस बनाने की फ़ैक्टरी में काम करता था. तनख़्वाह छः सौ रुपया महीना. ख़ुद ललिया के जी-तोड़ कोशिश के बावजूद उसके सारे शौक़ ज़मीन पर औंधे-मुंह पड़े थे. ज़िंदगी की टूटी-फूटी छत के नीचे हर मौसम उन्हें अपने विकराल रूप से डराती, सहमाती रही. बच्चे बढ़ते चले गये. जंगल में उगे खर-पतवार की तरह. बड़े-बड़े वृक्ष हो गये पर छत फूटी की फूटी रही. ललिया की मां बूढ़ी हो चली. हाथ-पैर बरगद की शाखें, टटाइल, जिंगुराईल. बिंदेसरी को अपनी नतनी की शादी देखने का बहुत मन था. ललिया को भी लगा माई और सास के ज़िंदा रहते बेटी के ब्याह से निपट ले. भाग-दौड़ शुरू हो गयी. लड़का भी मिल गया. घर दूर नहीं था. संतोष हुआ कि बेटी पास ही रहेगी. लड़का अभी पढ़ ही रहा था. आनन-फानन में ललिया ने अपनी बेटी सीमा का ब्याह कर दिया. ललिया दस-बारह साल की उम्र में ब्याही गयी. सीमा पंद्रह में. सीमा भी देखने में सुंदर. नैन नक़्श तीखे, गेहुंआ रंग, दुबली-पतली. सुहागरात के दिन कमरे में रखी संदूकची उलट-पलट रही थी एक लड़की का फ़ोटो मिला उत्सुकतावश देख ही रही थी, तभी उसका पति कमरे में घुसा. फ़ोटो उसके हाथ में देखकर आग-बबूला हो गया. सुहाग सेज पर ही कई लात जमा दिये. ललिया की देह संभल नहीं पायी. ज़मीन पर गिर गयी. सुंदर वेणी बिख़र गयी. रोते-रोते बुरा हाल. काजल फैल गया, बिंदी कहीं गिर गयी. सुहाग सेज भला क्यों रोता? रोती-बिलखती सीमा पर अपनी मर्दागनी को साबित करने में उसका पति पीछे नहीं रहा.

सीमा को एक साल के अंदर बेटा हुआ. सोहर, मधुर गीत, चहल-पहल, धूम-धड़ाका. पीतल की थाली पीटी गयी. रसगुल्ले बांटे. सीमा की देख-भाल में कोई क़सर नहीं छोड़ी गयी. ललिया का दिल हुमड़ पड़ता था.

कैसे देख रहा है? दिन भर सोता रहता है. ललिया सभी को बताती रहती. चेहरे से कपड़ा हटा-हटा दिखाती, गोद में झुलाने से बच्चे के घुंघराले बाल ललाट पर बिखर जाते.

ललिया, 'देख तो सीमा बाबू कितने प्यार से मुझे देख रहा है. ललिया आत्मविभोर. दिन भर बच्चे को लिये फिरती. पांच बार शुद्ध सरसो के तेल से मालिश करती. उससे भी जी नहीं भरा तो लाल तेल मंगाया. इतनी ग़रीबी में भी उसके लिए जॉनसन बेबी सोप और बेबी क्रीम आता. वह हंसता तो ललिया हंसती, वह रोता तो उसे चुप कराने में ललिया बेहाल हो जाती. छठी ख़ूब धूमधाम से मनायी गयी. हैसियत से ज़्यादा ललिया ने ख़र्च किया. बिस्तौरी के बाद भी ललिया सीमा को पानी नहीं छूने देती थी. लाड़ले को सर्दी न हो जाये. इधर-उधर का खाने से भी कहीं बच्चे का पेट न दर्द कर जाये. कई महीने गुज़र गये. सीमा का ससुराल से बुलावा आया पर ललिया सीमा को ससुराल

भेजने को तैयार ही नहीं होती. अपने ससुराल का दिन याद कर उसकी रूह कांप जाती और फिर कोई न कोई बहाना कर देती. बिंदेसरी ने समझाया.

'ललिया बेटी को विदा करो. कितना घर में रखोगी. ज़्यादा दूर तो गयी नहीं है. जब मन करेगा, आ जायेगी.'

छाती पर पत्थर रख ललिया ने बेटी को विदा किया. जाने के बाद घर सूना हो गया. सब कुछ अस्त-व्यस्त, कुछ भी करने को जी नहीं करता. बौराई ललिया इस कमरे से उस कमरे चकराती फिरती. खाना भी नहीं निगला जाता. जैसे-तैसे खाना तो बना देती. तीसरे दिन ख़ुद सीमा की ससुराल धमक गयी. बाहर आंगन में ही बिटिया की सास चूल्हा जला रही थी. कोयले के टुकड़े को एक के ऊपर एक सजाती जा रही थी. नीचे से गोयठा का धुआं उसे परेशान कर रहा था. समधिन को असमय आते देख सशंकित हुई. काम ख़त्म ही हो गया था. हाथ झाड़कर समधिन को अंदर ले जाकर खटोला पर बिठाया.

'किसना कहां है?' ललिया ने पूछा.

समधिन उसे आंगन में ले गयी. किसना अंगूठा चूस रहा था. केंई-केंई किये जा रहा था. झट से ललिया ने सीने से उसे लगाया. चुंबन लिया.

'अरे भूखे बच्चे को छोड़ कहां है सीमा.' ललिया चिल्लायी.

सीमा पिछवाड़े कपड़े फैला रही थी. मां की आवाज़ सुन दौड़ी आयी.

'कहां थी री?' ललिया ने पूछा.

'कपड़े फैला रही थी. कितना तो गंदा करता है.'

ललिया, 'तू तीन दिन में ही सूख कैसे गयी,' धीरे से, 'खाना ठीक से मिलता है न?' 'ऐसे तो बच्चा भी कमज़ोर हो जायेगा.' 'दूध पीती है कि नहीं?' 'पानी ख़ूब पीती है?' 'बच्चा बीमार पड़ जायेगा.' ढेरों सवाल.

ललिया, 'चल मैं तुझे यहां न रहने दूंगी.' कुछ महीने मायके में रह किसना को संभाल लो. थोड़ा बड़ा हो जायेगा तो आ जाइयो? ओसारे आकर बड़ी कातर हो बोली, 'बहिन आज मेरी तबियत ठीक नहीं लग रही है.' सीमा को ले जा रही हूं. थोड़ी मेरी सेवा हो जायेगी.'

दीन-हीन ललिया की ममता देखकर समधिन पसीज गयी. 'अरी तेरी ही बेटी है ले जा.' उसे अपनी बेटी याद आयी.

ललिया फिर रुकी नहीं. जल्दी-जल्दी कपड़े समेटे. बच्चे को गोद लिया, सीमा ने एयरबैग. भरी दुपहरी भी अब बदली भरी हो गयी. सूरज की लंबवत पड़ रही किरणों से आकुल पसीना तन से बाहर निकल हर-हर बह रहा था. लपकते-हांफते दोनों घर पहुंचीं. बिछावन पर किसना को लिटा, ललिया शरबत बना लायी. बेटी को दिया फिर फटाफट रसोई घर में खाना बनाने में लग गयी. खाना बना, झाड़ू लगायी. घर चमक उठा. सब कपड़े तह किये. किसना का सारा सामान एक छोटी-सी अलमारी में रखा.

शाम को रमन आया तो उसे सीमा को देख अचरज हुआ.

रमन — 'कब आयी रे?'

सीमा — 'दोपहर में ही पापा.'

तब तक ललिया ने एक लोटा पानी ला पति को दिया.

रमन ने आकर किसना को निरखा. धीरे से गोद में ले बाहर आकर बैठ गया. रात में तारों तले सबका एक साथ बिछावन बिछाया. ललिया सीमा के साथ कमरे में ही सोयी. शीत में किसना बीमार हो सकता था.

फिर न जाने कितनी बार सीमा की ससुराल से बुलाहट हुई. सीमा जाती भी, पर कुछ दिन बाद ही ललिया उसे लिवा लाती. कभी रो-धोकर, चिरौरी कर कभी बहाना बना कर, कभी सच में सीमा का आना ज़रूरी होता. इस तरह कई साल बीत गये. किसना दस-बारह साल का हो गया. वह ज़्यादातर ललिया के साथ ही रहता था. मैं हर साल घर जाती ही थी. ललिया का समाचार भी ले लेती थी. ललिया इधर बीमार रहने लगी थी. बिंदेसरी तो बिस्तर पर पड़ गयी थी. एक दिन घर गयी तो बिंदेसरी खटिया पर निश्चेष्ट पड़ी थी. खाना-पीना भी कई दिन से छोड़े हुए थी. मुझे देखकर आंख खुली. ग़रीबी, लाचारी, बीमारी जीवन के कठोर थपेड़ों से मर्माहत, पूरा वजूद जर्जर. ज़िस्म में मांस तो था ही नहीं. मैंने कहा, 'मामा किसकी राह देख रही हो,' अब यहां का मोह छोड़ो. दूसरे दिन घर लौट आयी. रात में फ़ोन आया, बिंदेसरी अब इस दुनिया में नहीं रही. ललिया की चिर सखा चिरनिंद्रा में सो गयी. इतने सदस्य होते भी ललिया अब अकेली थी. मां के जाने का दु:ख चिरस्थायी शूल बन कर चुभता रहता.

जीवन की आपाधापी में समय की लहरें हज़ारों सीपियां रेत पर छोड़ती रहीं. बच्चे के मानिंद हम उन रंग-बिरंगी सीपियों को चुनने में मगन रहे. उम्र के फूल झड़ते रहे. बेटियों का मायका से रिश्ता तो तन और मन का है. उसके प्रति आकर्षण हर साल वहां खींच ले जाता और इस तरह ललिया से मुलाकात भी होती रही. बिंदेसरी के देहावसान के एक दो साल बाद ही ललिया को पीलिया हो गया. अल्ट्रा साउंड से पता चला कॉमन बाइल डक्ट में पत्थर का टुकड़ा है जिसका ऑपरेशन उस जगह संभव नहीं था. बाहर ले जाने के नाम पर फूफा तैयार नहीं हुए. उनका कहना था कि ललिया को कैंसर हो गया है. वह किसी भी तरह बच नहीं सकती, इसलिए ख़र्च करना बेकार है. पैसों के नाम पर बोले. 'एक घर है वह भी बेच दूं.' ललिया का भाई भी बहन के लिए दिलदार नहीं निकला. ये सब वही भाई थे जो बहनों के उपन्यास कहानी पढ़ने पर भी पाबंदी लगाते थे यानी थोड़ी-सी ख़ुशी भी मयस्सर नहीं पर बीमारी पर कुछ भी ख़र्च करने को तैयार नहीं.

मैं बोली — 'फूफा आठ हज़ार देती हूं. आप आठ हजार दीजिए. आठ हज़ार फ़ैक्टरी से लीजिए. ऑपरेशन हो जायेगा. मैं साथ चलती हूं.'

फूफा ने स्वीकार भी किया. सुबह बाट जोहती रही पर वे नहीं आये.

मैं इस बीच भाई के लिए लड़की खोजने में परेशान रही. कई बार मायका आना-जाना हुआ पर ललिया से मिलना न हो सका. बस हर बार उसके बीमार होने की ख़बर मिलती. इधर एक लड़की को देखने जाना हुआ. मायके पहुंची तो पता चला ललिया की हालत बहुत ख़राब है किसी तरह दूध और पानी पिलाया जा रहा था. हम लोग सभी उसके घर पहुंचे. उसकी खाट को घेरे सब खड़े थे. ताबूत के किनारे गड़े लंबे-लंबे पत्थर की तरह. निश्चेष्ट ललिया किस लोक में थी पता नहीं. आंखें बंद. सांस और धड़कन बांसुरी और नगाड़े की तरह लयबद्ध बज रहे थे. सांसों के चलने से ललिया की जीवन लीला का आभास मिल रहा था.

किसना भी किनारे खड़ा था. लंबा हो गया था. हिप्पी जैसे बाल. वहीं उसकी बहन दुप्पट्टा डाले सर नीचा किये खड़ी थी. ललिया का कितना बड़ा कुनबा था. चार बच्चे, नाती नातिन, दामाद, भाई-भौजाई, भांजा-भांजी पर फिर भी निपट अकेली. उसे बचाने कोई आगे नहीं आया. ललिया धीरे-धीरे काल के मुख में समाती चली गयी. इधर कुछ महीनों से कुछ भी नहीं पचता था. सब उल्टी हो जाता, काया कृष होती गयी. कुछ ही महीने पहले भांजे की शादी में कितना हुलस-हुलस के नाचा और गाया था. अब बिस्तर से उठने का भी दम नहीं. जी हमेशा मिचलाता रहता था. उठते ही बिस्तर से चक्कर आने लगते. आंखों से भी साफ़ नहीं दिखता था. आवाज़ लड़खड़ाने लगी थी. बेड पर लेटे-लेटे सुबह का सूरज पश्चिम में ढल जाता. रात की चादर तन जाती. हसरतें राख़. पेट-छाती बहुत दर्द करती. रात भर तड़पती रहती. नींद नहीं आती. बेचैनी से करवटें बदलती रहती. इधर अनाप-शनाप बड़बड़ाने लगी थी. आंखें बंद किये ही उसे कई लोग दिखते. 'माई अइलो सीमा, पानी दे ही. शरबत बना दे.'

'अरे बाबू अइलो बैठाही. कुछ खाइले दे हीं.'

'किसना नानी के पैर छू. ताड़ भर हो गइल इ लड़का के कुछ अक्ल नहीं.'

'चाची अइलो. देखी न रो रहले हैं.'

'सीमा देख तो लाल-लाल आंख करले कौन अइले हे.'

'इ तो यमराज है. अब हमरा ले जाइल आ गइलो बेटा.'

दर्द उठता तो बोली बंद हो जाती. दर्द से चेहरा विद्रूप हो जाता. पहले तो खाट पर बिठाने से बैठ जाती थी पर अब बैठना भी मुश्किल था. लेटी ही रहती थी. धीरे-धीरे चेतना लुप्त होती गयी. कैसे भी पानी और दूध हलक में डाल दिया जाता. उससे ही सांसों की सरगम अब तक बज रहा थी.

वहां खड़े हम लोग उनके श्वास-प्रश्वास के साथ उनकी यादों के लम्हें गुंथते जा रहे थे. उनका शृंगार, झूमर सभी याद आ रहे थे. गलियां तो ऐसे भी ललिया के वहां से जाने के बाद झूमर और पायल की झंकार से महरूम हो गयी थीं. सब ने एक-एक कर गंगा जल और तुलसी मुंह में डाला. विदा की बेला थी. दूर गगन का पंछी पंख समेट रहा था. बहुत दूर-बहुत दूर रैन बसेरा था.

मो. ८२९४३६१३१९

ईमेल- kumari.prabha98@yahoo.com

आमने-सामने - (१)

'और मैं उद्घोषक बन गया!'

✍ आनंद सिंह

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला, गिरीश पंकज, डॉ. हंसा दीप, कमलेश भारतीय, अजीत श्रीवास्तव, डॉ. अमिताभ शंकर रायचौधरी, श्याम सुंदर निगम और देवेंद्र कुमार पाठक से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है आनंद सिंह और डॉ. इंद्र कुमार शर्मा की आत्मरचनाएं.

मन के आकाश में कल्पनाओं के बादल जब पश्चिम से पूरब दिशा की ओर लंबी उड़ान भरते हैं तब उनमें बचपन से आज तक की स्मृतियां, स्वप्न, इच्छा–अभिलाषा और उत्कंठाओं के अनेक असंख्य वाष्पकण स्वयमेव सहेज उठते हैं. छोटी–छोटी सफलताओं की पुलक भरी ख़ुशियां उत्साहवर्धन के लिए सुगंधित हवा के झोंकों के साथ सहज सहगामी हो जाती हैं.

आनंद सिंह

वायु के ये झोंके जब अतीत के किसी पेड़ से टकराकर आगे बढ़ जाते हैं तो अनकही कथा की टहनी–टहनी पुलकित हो उठती है. शब्दों की सरसराती पत्तियां स्वयं आंदोलित हो उठती हैं. जैसे अतीत के उपवन से चुनकर नूतन शब्दों में एक नयी कहानी बुन रही हों.

किसी भी कहानी में कई शब्द होते हैं, कई सपने होते हैं. कल्पनाओं के पंख होते हैं, विचारों की उड़ान होती है. कहानी जब किसी जीवन–कथा की सच्चाई से संबद्ध हो तो उसमें सतरंगी सपनों के कई रंग और जुड़ जाते हैं. इनमें किस रंग के सपने आगे चलकर साकार होंगे, जान पाना बड़ा कठिन होता है. किंतु नियति रूपी नटी इशारों–इशारों में इंगित कर देती है. इन इशारों को जितना जल्दी समझ जाएं उतनी शीघ्रता से हम एक साकार मंच पर पहुंच जाते हैं, अपने जीवन–गंतव्य का सही चुनाव कर पाते हैं और लक्ष्य को हासिल कर लेते हैं.

सपने साकार अवश्य होते हैं, बशर्ते, उम्मीद, धीरज और मेहनत के जल से सींचे गये हों. सपने समय के सघन कुहासे में ठिठुरते हुए ख़ामोश बैठे थे. कोहरे की दीवार को भेदकर दूर क्षितिज पर

उगते सूरज की लालिमा को आशा भरी दृष्टि से निहार रहे थे. दूसरी ओर सूरज की सुनहली किरणों का मौन आमंत्रण भी था.

अधीर, उत्सुक और व्याकुल मन ने उस मौन निमंत्रण के पाठ में एक पल की भी देरी नहीं की. नियति के बस एक संकेत से सपनों के पंख लग गये. सपनों ने उड़ान भरी. लगन और परिश्रम परिणाम की ओर बढ़ चले. कल्पना को शब्द मिलने लगे. क़दम मंजिल की ओर बढ़ चले. ऐसे ही कुछ सपने समय के ढांचे में ढलकर अपना अलग ही आकार ले लेते हैं.

एक बार मैं मंच पर किसी कार्यक्रम का संचालन (एंकरिंग) कर रहा था. मशहूर ग़ज़ल गायक जगजीत सिंह भी कार्यक्रम में उपस्थित थे. उन्होंने मेरी प्रस्तुति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि, 'मैं तो तुम्हारा फ़ैन हो गया. फिर यूंही बातचीत के सिलसिले चल पड़े. मैंने उनसे बताया कि मैं तो प्रशासनिक अधिकारी बनना चाहता था. उन्होंने बड़े प्यार भरे अंदाज़ में कहा कि, 'ईश्वर ने तुम्हें इतनी अच्छी आवाज़ दी है, इतना मधुर, गंभीर और आकर्षक स्वर दिया है, रेडियो और मंच के इस लोकप्रिय मैदान को छोड़कर तुम नाहक यहां-वहां भटकना चाहते थे. इसी फ़ील्ड में तुम ईमानदारी से निष्ठापूर्वक मेहनत करो. तुम बहुत आगे जाओगे.' यह प्रेरणा मुझे ऊर्जावान बनाती रही.

बात उन दिनों की है जब मैं नौवीं कक्षा का छात्र था. गांधी जयंती का भव्य आयोजन विद्यालय प्रांगण में किया गया था. उसमें मुझे भी भाषण देने के लिए चुना गया था. जब मेरी बारी आयी तो मंच पर गया. डरा और सहमा हुआ-सा. जैसे ही माइक पर बोलना शुरू किया तो लगा कि आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया... हाथ-पैर थरथराने लगे. जो कुछ भी याद था, सब भूल गया. मन की ऐसी दशा हुई कि लगता था तेज़ी से भागकर कहीं छिप जाऊं. एक पल के लिए जैसे होश ही खो बैठा था. किंतु अगले ही पल किसी तरह ख़ुद को संभाला. सोचा कि कल इन्हीं लोगों के बीच आना होगा. मखौल उड़ाया जायेगा. बड़ी बेइज़्ज़ती होगी. अचानक साहस लौटा. गांधी जी के आरंभिक जीवन के प्रसंग याद आने लगे जो मैंने उनकी प्रसिद्ध आत्मकथा — 'मेरे सत्य के प्रयोग' में पढ़ रखे थे. इंग्लैंड से बैरिस्टर की डिग्री लेने के बाद जब वे भारत लौटे तो पहले मुक़दमे के दौरान उनकी क्या दशा हुई थी. जज के सामने खड़े होकर ज्यों ही बोलना शुरू किया, उन्हें भी सब कुछ भूल गया था. उनके भी हाथ-पैर कांपने लगे थे. लेकिन बाद में उनका प्रबल आत्मविश्वास लौटा और फिर वे विश्व के प्रसिद्ध वक्ता बने. एक पल में ही मेरे मस्तिष्क में ये सारे संस्मरण चलचित्र की भांति घूम गये.

हिम्मत जुटाकर मैंने बोलना शुरू किया. गांधी जी के जीवन के जो भी संस्मरण पढ़ रखे थे, धीरे-धीरे सब याद आने लगे. मैंने बोलना शुरू किया तो बोलता ही गया — स्पीकर से निकलने वाली अपनी ही आवाज़ के जादू में बंधता गया. उत्साह बढ़ता गया. भाषण संपन्न हुआ. ख़ूब तालियां बजीं. ख़ूब शाबासी और वाहवाही मिली. ख़ुशी के आंसू आंखों से छलक पड़े. किसी भी सभा या मंच पर सार्वजनिक रूप से बोलने का यह पहला अवसर था. मेरे जीवन पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा. एक बार किसी महिला को मैंने अपने विषय में बोलते हुए सुना कि, 'ये जब बोलता है तो सुनने में कितना अच्छा लगता है, जैसे रेडियो बोल रहा है.'

नियति ऐसे ही कई संकेत बार-बार दे रही थी. इन संकेतों को समझ नहीं पा रहा था. इस तरह के संकेत युवावस्था और बेरोज़गारी के नादान दिनों में भला कहां समझ में आते हैं. एक बार की घटना है. किसी नाटक का रिहर्सल चल रहा था. मेरे एक मित्र उसमें अभिनय कर रहे थे. उस दिन रिहर्सल देखने के लिए कौतुहलवश मैं भी चला गया था. नाटक में एक समूह गान का भी रिहर्सल हो रहा था. मैंने वाह-वाह करते हुए दाद दी. निर्देशक महोदय ने मेरी ओर ध्यान से देखा और मुझसे कहा, 'क्या तुम नाटक में काम करना चाहोगे. तुम्हारी आवाज़ बहुत अच्छी है, नाटक में जान आ जाएगी. अंधा क्या चाहे, दो आंखें. छूटते ही मैंने हां कर दी और मनोयोगपूर्वक नाटक में एक समाचार वाचक की भूमिका बड़े सुंदर ढंग से अदा की. मुझे मेरे समाचार वाचक की भूमिका को दर्शकों और निर्देशक, दोनों की ओर से प्रशंसा मिली. मन का उत्साह और बढ़ गया. लेकिन मुझे अच्छी और बुरी आवाज़ की समझ नहीं थी और न ही स्वर के मोड्युलेशन का ज्ञान था.

उन दिनों अक्सर दोस्त मेरी आवाज़ की प्रशंसा किया करते थे. आवाज़ की दुनिया में प्रवेश करने को मन लालायित होने लगा. इस दिशा में क़दम बढ़ाने की उमंग मन की ज़मीन पर पनपने लगी. कला, साहित्य और संगीत के प्रति

ललक बचपन से ही थी. माता–पिता के संस्कार थे. प्रेमचंद के लगभग सभी उपन्यास आठवीं कक्षा तक ही पढ़ डाले थे शहर के वाचनालय के हम सदस्य थे.

बचपन में ही रोज़ शाम को घंटे–दो घंटे के लिए वाचनालय (लाइब्रेरी) जाते थे. चंपक, नंदन, बाल भारती और चंदामामा जैसी पत्रिकाएं हम नियमित रूप से पढ़ा करते थे. मेरी माताजी ने अनेक उपन्यास और धर्म ग्रंथ पढ़ रखे थे. पिताजी भी साहित्यिक अभिरुचि के थे. वे भी हमें प्रेरित करते — बाद के दिनों में धर्मयुग, हिंदुस्तान और दिनमान जैसी साप्ताहिक पत्रिकाएं हम घर पर ही नियमित मंगाया करते और रुचिपूर्वक पढ़ा करते. कादंबिनी, नवनीत और रीडर्स डाइज़ेस्ट जैसी मासिक और पाक्षिक पत्रिकाओं के प्रति दीवानगी हुआ करती थी. मरफ़ी का बड़ा–सा रेडियो घर में था. विविध भारती के गाने, रेडियो रूपक, हवामहल जैसे रेडियो नाटकों के हम मुरीद थे. रेडियो सीलोन पर बिनाका गीत माला में अमीन सयानी की ज़ोरदार आवाज़ के हम दीवाने थे. साथ ही साथ घर में अच्छा–ख़ासा पठन–पाठन का माहौल भी था.

ये सारी बातें अलग–अलग प्रकार से कहीं न कहीं प्रेरणा की आधार बनीं. इसी बीच रेडियो पर ही आकस्मिक उद्घोषकों की नियुक्ति के लिए विज्ञापन प्रसारित किये गये. रेडियो का मतलब उन दिनों आकाशवाणी से ही था. व्यवसायिक एफ. एम. चैनलों का उदय नहीं हुआ था. रेडियो आवाज़ की वह दुनिया थी जिसमें अंतहीन बातें हैं, कहानियां हैं, गीत–संगीत हैं, रेडियो–नाटक व रेडियो रूपक हैं, युवाजनों और बच्चों के उपयोगी और रोचक कार्यक्रम हैं. किसानों और सैनिकों के भी अनेकानेक उपयोगी कार्यक्रम हैं. देश–प्रदेश और विदेश के समसामयिक समाचार हैं. रेडियो का मतलब आकाशवाणी है. उन दिनों रेडियो उद्घोषक किसी सेलिब्रिटी से कम नहीं हुआ करता था. नतीजतन मैंने भी डरते–सहमते हुए किंतु बड़ी ललक से आकस्मिक उद्घोषक पद हेतु आवेदन कर दिया.

स्वर परीक्षा हेतु आमंत्रण आया. रेडियो के ग्लैमर के भारी भरकम प्रभाव के कारण थोड़ा नर्वस भी था. स्वर परीक्षा के विषय में पहले से कुछ पता नहीं था. रेडियो स्टेशन पहुंचने पर सभी प्रत्याशियों को आठ–दस पृष्ठों का एक स्क्रिप्ट एक घंटा पहले अभ्यास के लिए दे दिया गया. स्क्रिप्ट में थे — आधुनिक और प्राचीन कविताओं के कुछ अंश, नाट्य–आलेख, समाचार, मौसम की जानकारी और रेडियो रूपक के कुछ संवाद. एक बार पढ़ते–पढ़ते ही मेरी बारी आ गयी. बड़े–से स्टूडियो कक्ष में प्रवेश किया. मद्धिम–सी रौशनी के साथ पसरा हुआ गहरा सन्नाटा — 'सांय–सांय' करता हुआ. मैं चौंक पड़ा जब अचानक कहीं से आवाज़ सुनाई पड़ी — 'अपना अनुक्रमांक बताइए.' कोई भी दिखाई नहीं पड़ रहा है और आवाज़ आ रही है. यही है आकाशवाणी.

मैंने अनुक्रमांक बताया. फिर वही आवाज़ — 'आपके हाथ में जो स्क्रिप्ट है, उसका तीसरा पृष्ठ खोलिए. इस पर मैंने तीसरा पृष्ठ पलटकर खोल लिया, जैसे किसी जादू के वशीभूत होकर. पुनः वही स्वर — 'इसमें लिखा हुआ शेर पढ़िए / लिखी हुई कविता पढ़िए. मैंने पढ़ दिया. आवाज़ फिर सुनाई पड़ी – 'जाइए.' अब तो मानो पैरों तले ज़मीन खिसक गयी. कई पृष्ठों का आलेख और केवल एक शेर पढ़ाया और कह दिया जाइए. निराशा ने मन पर अपनी जगह बना ली. अब तो बन चुका मैं उद्घोषक. हफ़्ते भर बाद आकाशवाणी की चिट्ठी आयी — 'आपका चयन हो गया है.' मन–मयूर खुशी से नाच उठा. अपार उत्साह से भर गया.

बस एक दिन का अनौपचारिक प्रशिक्षण और दूसरे ही दिन माइक्रोफ़ोन से सजीव प्रसारण. पहले दिन के पहले प्रसारण में भय और कौतूहल के साथ प्रवेश किया. किंतु संयोगवश दानेदार आवाज़ के मालिक कार्यक्रम निष्पादक, श्री महेंद्र मोदी के साहचर्य और स्नेहपूर्ण सहयोग ने सारा डर भगा दिया. उन्हीं के साथ कॉम्पेरिंग करनी थी. बड़े अच्छे से संपन्न हो गया.

यहीं से मन की धरती पर रचनाशीलता और सृजनधर्मिता के सोये हुए बीज ने आत्मविश्वास की बूंदों से मिलकर अंगड़ाई ली, स्वप्रेरणा का अंकुरण हुआ और सृजन का पौधा पनपने लगा. मेरे आंतरिक व्यक्तित्व में एक संपूर्ण उद्घोषक के निर्माण प्रक्रिया का यह आरंभिक पड़ाव था, आकाशवाणी इलाहाबाद में आकस्मिक उद्घोषक के पद पर कार्य करना. इस आरंभिक पड़ाव में एक लंबी सफल यात्रा की जितनी भी तैयारियां होती हैं, उन्हें पूरा करने का उपयुक्त अवसर मिल गया. एक उद्घोषक में जितने गुण होने चाहिए उन्हें अपने भीतर धारण करने में समर्थ हो गया. मुझे तराश कर एक कुशल उद्घोषक बनाने का श्रेय श्री महेंद्र मोदी को जाता है. अब मैं एक नियमित उद्घोषक पद के अवसर की

प्रतीक्षा में था.

यह संयोग ही था कि आकाशवाणी मुंबई में उद्घोषक पद हेतु विज्ञापन निकला. मैंने आवेदन कर दिया. तीन चरणों में चयन प्रक्रिया पूरी हुई. लिखित परीक्षा, स्वर परीक्षा और अंत में साक्षात्कार. अपनी लगन और परिश्रम से परीक्षाओं के तीनों चरणों में उत्तीर्ण हुआ. अनेक अभ्यार्थियों के बीच इस इकलौते पद के लिए मेरा चयन हुआ. इस तरह सपनों की नगरी मुंबई आगमन हुआ.

अब हमें उस रेडियो के साथ अपनी लंबी यात्रा आरंभ करनी थी जिसे आकाशवाणी कहते हैं. आकाशवाणी यानी... जब सूरज धरती पर अपनी पहली किरणें बिखेरता, क्षितिज के पूरे आकाश पर अपनी लालिमा फैलाता हुआ अपने आगमन की सूचना देता है और हम अपने बिस्तर पर अलसाई आंखों से करवट बदलते हैं, हमारी उंगलियां रेडियो के स्विच को स्पर्श करती हैं तो एक मधुर–सा संगीत उभरता है तो मन में कुछ कल्पनाएं उभरती हैं, कुछ शब्द सारथी बनकर उन कल्पनाओं को जैसे साकार करने लगते हैं. हमारा मन उन ध्वनि तरंगों पर सवार हो तैरता हुआ आनंद लोक की यात्रा पर निकल पड़ता है. इस सृष्टि में और मानव निर्मित प्रकृति में समय की हर धड़कन के साथ पल प्रतिपल कुछ नया सृजित होता है कुछ नया घटित होता रहता है. हम अपनी बाहें फैलाये इन्हें समेट लेने को उत्सुक हो उठते हैं.

बस, इन्हीं सब की बेहद रोचक ढंग से की जानेवाली अत्यंत आकर्षक और हृदयस्पर्शी प्रस्तुति ही वह जादुई माध्यम बन जाती है जो पूरी दुनिया को हमारे निकट ला खड़ा करती है. हम जहां कहीं भी हों, अपने घर, दफ़्तर या बाज़ार, ये हमारी उंगली थामे उसी दुनिया की सैर पर लिये चलती है. देर रात तक हमारी दैनिक क्रियाओं-व्यापारों के साथ जीवंत बनी रहती है. यही है आकाशवाणी.

आकाशवाणी का स्वरूप अत्यंत व्यापक है. यह विश्व भर में जानकारियां उपलब्ध कराता है. यह विचारों और सूचनाओं को नयी गति और दिशा प्रदान करती है जिससे समाज के विविध समुदाय सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से विकसित हो सकें. यह समाज के सम्यक विकास में सहयोगी बनती है. इसकी अपील व्यापक और विश्वसनीय है. यह लाखों लोगों के जीवन को स्पर्श करती है. अपने विविधतापूर्ण अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से इन्हीं अनुभवों को साझा करने के लिए एवं उन्हें रोचक शैली में आपके पास पहुंचाने के लिए एक सूत्रधार होता है.

रेडियो का स्विच ऑन करते ही आपके घर में एक नितांत अपरिचित व्यक्ति अपनी आवाज़ के माध्यम से आपके सामने उपस्थित हो जाता है जिसे आप जानते नहीं किंतु वह बड़ी ही आत्मीयता से आपसे संवाद करता है. कभी–कभी तो वह इतना अपना लगता है जैसे वह घर का सदस्य ही हो. यही सूत्रधार आकाशवाणी का उद्घोषक होता है जो कार्यक्रमों और श्रोता के बीच एक सशक्त कड़ी होता है. उद्घोषक के इस लोकप्रिय और ज़िम्मेदार स्वरूप को जीने के लिए, आगे बढ़ते हुए मुझे इस तंत्र से ही ग्रहण करना था और इसी तंत्र को लौटाना था. सामने सपने जैसा विस्तृत संसार था. इसमें व्याप्त होने के लिए हर सांस, हर शब्द में संतुलित रहना था. इसके लिए दो तथ्यों पर ध्यान देना अपेक्षित था कि रेडियो पर क्या बोलना है और किस प्रकार बोलना है. क्या बोलना है... जो आज तक पढ़ा–लिखा, अध्ययन से जो अर्जित किया, जो अनुभवों में ढलकर मूल तत्त्व के रूप में, भावात्मक रूप में मानस पटल पर विद्यमान है. इसी क्रम में आगामी समय में जो अध्ययन और अनुभवगम्य होगा और प्रस्तुति के योग्य होगा. दूसरा तथ्य था कि कैसे बोलना है! सामान्य रूप से बोलते तो सभी हैं किंतु माइक्रोफ़ोन पर उद्घोषक के रूप में बोलना बिल्कुल अलग हैं. ऐसी शैली में बोलना जिससे हर श्रोता प्रभावित हो सके, सुनने को लालायित और उत्सुक हो और वाह–वाह कर उठे. अब यह कला सीखनी थी दूसरों को सुनकर उनका अनुसरण और अनुकरण करके. इसमें एक आशंका थी कि दूसरों का अनुकरण करने के प्रयास में कहीं दूसरों की प्रतिलिपि न बन जाऊं. यह हास्यास्पद लगता.

एक घटना का उल्लेख प्रासंगिक होगा. प्रसिद्ध अभिनेता अशोक कुमार से भेंटवार्ता के दौरान अनुकरण और सीखने के संदर्भ में उन्होंने बताया कि आरंभ में आप किसी श्रेष्ठ कलाकार की कॉपी करें. धीरे–धीरे अभ्यास से उसे अपने अंदर उतारें. वह आपके अंदर के कलाकार से जब घुलमिल जाएगा तो धीरे–धीरे ही आपकी अपनी शैली बन जायेगी. बाद में वही शैली रूपांतरित होकर आपकी अपनी शैली बन जायेगी. आपको अपनी मौलिक शैली इस तरह विकसित करनी होगी कि श्रोता सुनकर ताज़गी का अनुभव करने लगे.

(शेष पृष्ठ ६७ पर...)

आमने-सामने– (२)

'अनुवादक की यायावरी ज़िंदगी!'

✍ डॉ. इंद्र कुमार शर्मा

हिंदी साहित्य के प्रति मेरा अनुराग ज़ूनियर हाई स्कूल से ही शुरू हो गया था. हमारे शास्त्रीजी ने संस्कृत और हिंदी के प्रति गहरी आस्था जागृत की. उन्होंने हिंदी में लेख और निबंध लिखने का भरपूर अभ्यास कराया. मैंने २६ जनवरी के अवसर पर एक कविता सुनाई जिस पर ख़ुश होकर हेड मास्टर जी ने एक ज्योमेट्री बॉक्स दिया. हाई स्कूल तक पहुंचते–पहुंचते हिंदी में सर्वाधिक अंक आने लगे लेकिन हिंदी माध्यम से पढ़ाई करने के कारण अंग्रेज़ी में रुचि नहीं जगी. हिंदी के शास्त्रीजी मुझसे बहुत स्नेह रखते थे उन्होंने आशीर्वाद दिया कि तुम हिंदी के क्षेत्र में प्रगति करोगे. इंटर कॉलेज़ बुलंदशहर पहुंचते ही कॉलेज़ की पत्रिका में मेरी दो कविताएं छप गयीं. उसके बाद मैंने बीए ऑनर्स राजनीति शास्त्र में किया परंतु हिंदी के प्रति रुचि बरक़रार रही. महाविद्यालय की वाद-विवाद प्रतियोगिता में अनेक बार सहभागिता की और पुरस्कार प्राप्त किये. इस दौरान मेरी एन सी सी की ट्रेनिंग भी जारी रही. उसके बाद मैंने एम. ए. हिंदी में प्रवेश ले लिया. मेरे मित्रों और अध्यापकों ने मुझ पर लानत भेजी. राजनीति शास्त्र में ऑनर्स करने के बाद हिंदी मे प्रवेश क्यों लिया? उनकी बात मैं हंसकर टाल देता था. इस बीच मैं दैनिक प्रभात मेरठ का बुलंदशहर से प्रतिनिधि नियुक्त हो गया. दैनिक प्रभात में मेरे समाचार और लेख प्रकाशित होने लगे. इस क्षेत्र में मेरे मामाजी स्वर्गीय सत्यदेव शर्माजी ने बहुत प्रोत्साहन प्रदान किया. एक बार उन्होंने अपने कॉलेज़ के वार्षिक कार्यक्रम में मेरा कामायनी पर सस्वर पाठ कराया. जिस पर ख़ुश होकर मुख्य अतिथि ने मुझे ७५ रुपये प्रदान किये. महाविद्यालय की पत्रिका में 'उत्तररामचरितम में करुणा' लेख प्रकाशित हुआ. इस पत्रिका का मैं छात्र संपादक नियुक्त किया गया. इसी दौरान नवभारत टाइम्स के बाल जगत स्तंभ में एक कहानी 'बहादुर बच्चा' प्रकाशित हुई. उसी समय अंडमान निकोबार प्रशासन की पत्रिका इंदुमणि में एक लेख 'हिंदी साहित्य के विकास में अहिंदी विद्वानों का योगदान' प्रकाशित हुआ.

डॉ. इंद्रकुमार शर्मा

एम ए हिंदी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के उपरांत मेरी नियुक्ति हिंदी अनुवादक के रूप में सेंट्रल बैंक ऑफ़ इंडिया के मुख्यालय मुंबई में हुई. मेरा एक लेख कलकत्ता से प्रकाशित 'आर्थिक जगत' में प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक 'हिंदी के प्रगामी प्रयोग में सेंट्रल बैंक ऑफ़ इंडिया का योगदान' था. इसके उपरांत तीन वर्ष के लिए साहित्य से मेरा नाता टूट गया. इस दौरान मैंने हिंदी अनुवाद का अभ्यास किया. चूंकि हिंदी अनुवाद का मैंने कोई प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया था अत: अनुवाद को अभ्यास के माध्यम से ही सीखना उचित समझा. तीन वर्ष बाद मेरी पदोन्नति राजभाषा अधिकारी के रूप में हो गयी.

अब मैं राजभाषा नीति पर व्याख्यान देने लगा. मेरा बैंकिंग पर पहला लेख आई बी ए बुलेटिन में प्रकाशित हुआ 'मानव शक्ति विकास और कार्मिक' इसका पारिश्रमिक मुझे १५० रुपए मिले. अब मेरे लेख भारतीय रिज़र्व बैंक की बैंकिंग चिंतन अनुचिंतन पत्रिका में और बैंक की पत्रिका सेन्टरलाइट में प्रकाशित होने लगे.

इसके उपरांत मेरी पदोन्नति हो गयी और स्थानांतरण पटना हो गया. मेरा मानना है कि दूसरे स्थान स्थानांतरण होने पर मनुष्य का दूसरा जन्म होता है. नयी सभ्यता, नयी संस्कृति और नयी बोली. यहां पर मैंने 'परिचय' पत्रिका का संपादन किया. कार्यालयीन कार्यों के सिलसिले में मैं गया, पूर्णिया, सहरसा, रांची और जमशेदपुर भी गया. मुझे बिहार में काफ़ी निराशा हाथ लगी. वहां हिंदी भाषा में व्याकरण का

ध्यान नहीं रखा जाता. एकवचन और बहुवचन में बहुत भ्रांति है, क्रिया का प्रयोग नहीं दुरुपयोग है. बिहार में तीन वर्ष रहा. मेरा स्थानांतरण दिल्ली हो गया. यहां आकर मैंने साहित्यिक संस्था से जुड़कर साहित्यिक वातावरण में सांस ली. यहां मेरा परिचय डॉ. संतोष शर्मा से हुआ. उन्होंने मुझे एक रेडियो परिचर्चा में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जिसमें मेरे साथ डॉ. पूरनचंद टंडन जी थे. ये वार्ता क्रेडिट कार्ड पर आधारित थी. इसी दौरान मैंने एक पुस्तक लिखी 'बैंकिंग निबंधवली' जिसे भावना प्रकाशन दिल्ली ने प्रकाशित किया, इसमें बैंकिंग से संबंधित एक दर्ज़न लेख हैं. इसकी भूमिका तत्कालीन क्षेत्रीय प्रबंधक श्री विजय प्रकाश ने लिखी. इस पुस्तक को दिल्ली बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति ने पुरस्कृत किया. यह पुरस्कार अध्यक्ष महोदय ने प्रदान किया. इसी दौरान बैंक के लिए 'काव्यांजलि' का संपादन किया. मुझे हिंदी अकादमी द्वारा आयोजित प्रश्न मंच का द्वितीय पुरस्कार प्रदान किया गया. इसी बीच राष्ट्रीय बैंक प्रबंध संस्थान पुणे द्वारा आयोजित आलेख प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ.

भारतीय बैंक संघ के दिल्ली चैप्टर द्वारा आयोजित अंतर बैंक निबंध प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ. दिल्ली बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा आयोजित बैंकिंग ज्ञान प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ. दिल्ली क्षेत्रीय कार्यालय को सर्वश्रेष्ठ कार्य निष्पादन के लिए भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा द्वितीय पुरस्कार प्रदान किया गया. हिंदी अकादमी दिल्ली ने राजभाषा स्वर्ण जयंती निबंध प्रतियोगिता में विशिष्ट पुरस्कार प्रदान किया गया.

इसके उपरांत मेरी पदोन्नति मुख्य राजभाषा अधिकारी के रूप में स्थानांतरण चेन्नई में हो गया. यहां पहुंचकर मेरे अंदर धर्म और साहित्य के प्रति विशेष अनुराग हुआ. मैंने महात्मा गांधी जी द्वारा स्थापित राष्ट्रीय महत्व की संस्था दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा में विश्व विद्यालय विभाग में पीएच. डी. के लिए पंजीकरण करा लिया. डॉ. निर्मला एस मौर्य के मार्गदर्शन में मैंने 'तमिलनाडु में हिंदी प्रचार प्रसार के विविध आयाम' विषय पर तीन वर्ष शोध कार्य किया इसके लिए मैंने दक्षिण के अनेक नगरों जैसे मदुरै, कांचीपुरम, त्रिची, कोयंबत्तूर, त्रिवेंद्रम और एर्नाकुलम की अध्ययन यात्रा की. मैं चेन्नई में राजस्थान पत्रिका से भी संबद्ध हो गया जिसमें मेरे अनेक लेख और समाचार प्रकाशित हुए. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की सेमिनार में 'हरिबंश रॉय बच्चन के काव्य में गेयता' विषय पर प्रपत्र वाचन किया. इसके अतिरिक्त कृषि बैंकिंग महाविद्यालय द्वारा आयोजित सेमिनार में 'रिटेल बैंकिंग विशिष्ट विपणन' पर प्रपत्र वाचन किया. इस कार्यक्रम का आयोजन बैंक ऑफ बड़ौदा ने मुंबई में किया.

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के उच्च शिक्षा और शोध संस्थान की सेमिनार में टिप्पण तथा प्रारूपण संबंधी कार्यालयी अनुवाद पर प्रपत्र वाचन किया. मद्रास के सत्य शीलता ज्ञानालय द्वारा आयोजित विचार गोष्ठी में 'प्रसाद काव्य में करुणा' विषय पर व्याख्यान दिया.

मुझे हिंदी हृदय के डॉ. सुब्रमनियम विष्णुप्रिया जी ने मद्रास में हिंदी के श्रेष्ठ कार्य निष्पादन के लिए ताम्रपत्र प्रदान किया. इस दौरान मैंने तमिल भाषा सीखी और एक हजार तमिल भाषियों को हिंदी का ज्ञान तमिल और अंग्रेज़ी माध्यम से कराया कराया. मेरे जीवन का वह सबसे स्वर्णिम दिवस था जब दीक्षांत समारोह में मुझे पीएच. डी. की उपाधि प्रदान की गयी.

छह वर्ष चेन्नै में रहने के बाद मेरा स्थानांतरण पुनः दिल्ली में हो गया. इस दौरान बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति दिल्ली में मेरी सक्रियता बढ़ गयी.

इस दौरान आकाशवाणी दिल्ली की अंतर माध्यम प्रचार समिति में मैंने सक्रिय भूमिका निभाई. भारतीय अनुवाद परिषद के अतिथि वक्ता के रूप में संबद्ध रहा. इसके बाद पुनः मेरा स्थानांतरण मुंबई को हो गया. मुंबई महानगर में मुझे जन संपर्क अधिकारी के रूप में अतिरिक्त प्रभार दिया गया. इस दौरान हमारे मुंबई अंचल को श्रेष्ठ राजभाषा कार्य निष्पादन के लिए प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया. यहां पर आशीर्वाद संस्था द्वारा वर्ष २००९ में बैंक में श्रेष्ठ राजभाषा कार्यान्वयन के लिए पुरस्कृत किया गया.

इसके उपरांत मैं पुनः दिल्ली आ गया. इस दौरान भी मेरी साहित्यिक गतिविधियां जारी रहीं. यहां मैंने सेंट्रलवाणी पत्रिका का संपादन किया. बैंक की सेंटरलाइट पत्रिका तथा बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैंक भारती में अनेक लेख प्रकाशित हुए. इसी दौरान अप्रैल २०१६ में राजभाषा स्वाभिमान न्यास गाजियाबाद द्वारा अखिल भारतीय राजभाषा विकास एवं सम्मान समारोह में राजभाषा भूषण सम्मान प्रदान किया गया. फरवरी २०१७ में 'कृति शैक्षिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक संस्थान' ने कृति उत्कृष्टता सम्मान प्रदान किया. अक्तूबर २०१७ को पंडित हर प्रसाद पाठक स्मृति बाल साहित्य पुरस्कार समिति मथुरा ने साहित्य,

संस्कृति एवं समाज सेवा के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु राजभाषा भूषण पुरस्कार से सम्मानित किया. सेवा निवर्तमान होने के उपरांत दिल्ली विकास प्राधिकरण में परामर्शदाता के रूप में सेवाएं दे रहा हूं. तुलसी साहित्य संस्कृति अकादमी न्यास मथुरा द्वारा विशिष्ट अतिथि के रूप में अक्तूबर २०१९ को आमंत्रित किया गया. मेरा नाम राजभाषा विभाग की हिंदी विद्वानों की दूसरी सूची में सम्मिलित है. दिल्ली संस्कृत अकादमी के त्रिदिवसीय अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन में शोधलेख का वाचन किया. इसके अतिरिक्त मुझे मार्च २०२० में आदर्श संस्कृत महाविद्यालय में संस्कृत विद्वत सम्मेलन एवं दीक्षांत प्रमाणपत्र समारोह में दीक्षांत भाषण के लिए आमंत्रित किया गया.

राजभाषा परामर्श दाता,
दिल्ली विकास प्राधिकरण
खेलगांव, दिल्ली-११००४९
sharmaindra@yahoo.com
मो. : ८३७६९०९६४७

'और मैं उद्घोषक बन गया'

(पृष्ठ ६४ से आगे)

एक छोटा बच्चा पहले उंगली पकड़कर चलना सीखता है. बाद में धीरे–धीरे स्वयं चलने लगता है. वह उसकी अपनी चाल होती है. यदि बचपन के बाद भी उंगली पकड़े किसी के सहारे चलता रहेगा तो उसकी अपनी चाल कभी विकसित नहीं हो सकेगी. वह असहज कहलाएगा.

मौलिकता बनाये रखते हुए इस तरह से डूबकर बोलना चाहिए कि श्रोता को यह अनुभव होने लगे कि कोई उसके कानों में शहद घोलते हुए उनके दिलों की गहराइयों में उतरता जा रहा है. शोरगुल भरी दुनिया से वह दूर हटकर शांति का अनुभव करने लगे. यह उसे उत्साहजन्य ऊर्जा से भर दे. यह तब संभव होगा जब वाणी में विनम्रता और आत्मीयता का पुट हो. व्यक्ति की विनम्रता उसकी वाणी में ही झलकती है. यही अपील करती है.

बोलने की कलात्मक शैली विकसित करने के लिए मैं श्रेष्ठ उद्घोषकों, उत्तम कलाकारों और वक्ताओं को नियमित रूप से सुनता रहा. इस प्रक्रिया के दौरान अपने अंदर मंथन और विश्लेषण करता रहा कि कैसे बोलने की सर्वोत्तम कला हासिल कर सकूं. चेतन मस्तिष्क की सक्रियता अधिक बनी रही. बोलने की प्रक्रिया में अपनी आवाज़ को किस तरह आरोह–अवरोह, यति–गति, बलाघात और स्वराघात से सुसज्जित कर सकूं कि बोला हुआ नीरस गद्य भी किसी सुंदर, मधुर गीत की तरह लयबद्ध काव्य सरीखा बन जाए कि श्रोता के मन के कैनवास पर एक सुंदर सजीव चित्र उकेर उठे. आवाज़ की मधुरता उसमें नया रंग भर दे.

मुंबई के भागदौड़ भरे जीवन में गति की किस तीव्रता के साथ बोलें कि सुननेवालों को शांति प्रदान करे. यह भी समझना था और यह सब बहुत आसान भी नहीं था. अनेक वक्ताओं और उद्घोषकों के बीच अपनी समुचित श्रेष्ठतम जगह बनानी थी. यह सब मैंने अपने चिंतन–मनन, मंथन, आत्म–विश्लेषण, आत्म–परीक्षण, निरंतर परिश्रम, लगन और साधना से अर्जित किया. कोई भी व्यक्ति दृढ़ संकल्प लेकर उपर्युक्त गुणों के साथ क्रियाशील होकर अपने जीवन का मूल्यांकन करता चले तो वह प्रगति पथ पर बहुत आगे बढ़ सकता है.

एक उद्घोषक के नाते मैं अपनी आवाज़ की गुणवत्ता के प्रति सदा सजग और सतर्क रहा. अपने शब्दकोष को विकसित करना, शब्दों के उच्चारण पर विशेष ध्यान देना मेरी पूजा थी. किसी शब्द का ग़लत उच्चारण भाषा के सौंदर्य को उसी तरह बाधित करता है जैसे स्वादिष्ट व्यंजन में छोटे से कंकड़ का आ जाना या आंख में किरकिरी का पड़ जाना. सुंदर और लालित्यपूर्ण शब्दों से मैंने अपनी भाषा को संवारा. अपनी शैली का निरंतर श्रृंगार किया. परिणाम स्वरूप अभिव्यक्ति का स्वरूप निखरता चला गया.

समृद्ध भाषा की सशक्त अभिव्यक्ति का श्रोताओं के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है. श्रोतागण कभी–कभी किसी न किसी न रूप में इसे व्यक्त भी करते हैं. एक बार एक श्रोता ने कहा, मैं आनंद सिंह बनना चाहता हूं. मैं आपकी तरह बोलना चाहता हूं. एक ने कहा, मैं आपकी तरह सीखना चाहता हूं. एकलव्य की तरह. उद्घोषक अपना कार्य करते हुए अपनी एक लुभावनी छवि भी बना लेता है.

२०२ बी, कंट्री पार्क,
दत्तापाड़ा रोड, बोरीवली (पू.),
मुंबई-४०००६६.
मो. : ९८६९१८२१३६

लघुकथा

अंधी सुरंग

✍ आनंद बिल्थरे

रात्रि में ज़ोर से द्वार खटखटाने की आवाज़ सुनकर वर्मा दंपत्ति हड़बड़ाकर जाग उठे. उन्होंने भीतर से ही पूछा — कौन ?

- पुलिस, दरवाज़ा खोलिए.

वर्मा साहब ने दरवाज़ा खोल दिया. बग़ल में उनकी पत्नी कमला भी थी. पुलिस की ओर उन्होंने सवालिया निग़ाहों से देखा. उन्हें डी. एस. पी. शर्मा कुछ परिचित से लगे.

- आपका पुत्र लोकेश कहां हैं? जरा बुलवाइए उसे.

- शर्मा साहब क्या किया है लोकेश ने? वह तो इंज़ीनियरिंग का अंतिम वर्ष का छात्र है. दिन रात, पढ़ाई में लगा रहता है.

- आप मुझे क्या पूछ रहे हैं. अपने पुत्र से ही पूछ लीजिए.

तब तक लोकेश भी उठकर आ गया था. उसके सिर और हाथों में पट्टियां बंधी थीं. शर्मा साहब ने इशारा किया. पुलिस वालों ने लपक कर उसे पकड़ लिया.

- शर्मा साहब, कुछ तो बताइए?

- आपका पुत्र उपद्रवी छात्रों का नेता है. पिछले चार दिनों में अपने दोस्तों के साथ मिलकर शासकीय संपत्ति का बहुत नुकसान किया है. आग लगायी है. गाड़ियां तोड़ी हैं. पत्थरबाजी कर पुलिसवालों को घायल किया है.

- क्यों लोकेश, शर्मा साहब क्या कह रहे हैं?

- हां हम आज़ाद भारत के नवयुवक हैं. संविधान का अपमान बर्दाश्त नहीं करेंगे. अभिव्यक्ति पर पहरा हमें पसंद नहीं है. सरकार लोगों पर काले क़ानून थोपने जा रही है. हम इसका विरोध करते हैं.

- वर्मा साहब इससे पूछिए, इन्हें भड़काया किसने है? हमें तो भड़काने वालों का नाम भी पता है. स्वयं इसने भड़काऊ भाषणों से लड़कों का ब्रेनवाश कर दंगे में शामिल किया है. अब आप कोर्ट में लड़ते रहिए. लड़के का फ़्यूचर तो बर्बाद हुआ ही, शासकीय संपत्ति की नुकसान की भरपाई भी आपसे होगी.

पुलिस लोकेश को लेकर चली गयी. कमला रोने लगी. वर्मा साहब ने अपने परिचित एडवोकेट चौधरी को फ़ोन लगाया. चौधरी ने नींद में ही जवाब दिया कि रात्रि में कुछ नहीं हो सकता. सुबह बात करेंगे.

- मैं कहती हूं, लोकेश तो बहुत सीधा है. वह दंगा-फ़साद कर ही नहीं सकता.

- कमला, तुम घर में व्यस्त रहती हो, मैं कॉलेज़ में. हमें यही पता नहीं चलता कि हमारा बेटा क्या कर रहा है. उसकी संगति, गतिविधियां क्या हैं. उसने जब जो जितना मांगा, बग़ैर पूछे हमने दे दिया. हमारी झूठी बेपरवाह परवरिश ने ही आज हमें यह दिन दिखाया है.

- नाश हो इन दंगा भड़काने वाले नेताओं का. उनका कुछ नहीं जायेगा, लेकिन हमारी तो रही सही उम्मीद भी ख़त्म हो गयी.

-इसे ही कहते हैं, गेहूं के साथ घुन पिसना. नेताओं ने तो अपनी नेतागिरी चमका ली. बेटी का ससुराल से बार-बार फ़ोन आ रहा है कि लोकेश कहां है? उसे कुछ हुआ तो नहीं. उसने टी. वी. पर दंगाईयों के साथ उसे पहचान लिया था. अब क्या जवाब दूं उसे. हम दोनों असफल माता-पिता हैं कमला. अपने बच्चे को हम न तो संस्कारित बना सके और ना ही उसके बहकते क़दमों को पहचान सके.

- सोचा नहीं था, गऊ की तरह सीधा पढ़ाकू लड़का भीतर से ऐसा निकलेगा. बच्चे को आज़ादी देकर हमने ठीक नहीं किया. पुलिस उसका मोबाइल और लैपटॉप भी उठाकर ले गयी है. जाने उनमें क्या-क्या होगा.

बस शांत हो जाओ कमला. एक बार इस अंधी सुरंग में जाने के बाद कोई लौटकर वापिस नहीं आया है. सब कुछ ईश्वर पर छोड़ दो. यहां हर एक को अपने कर्मों का हिसाब स्वयं ही देना होता है. सुबह चौधरी साहब से बात करूंगा.

✍ प्रेमनगर, बालाघाट (म. प्र.)-४८१००१. मो. : ७९९९७८५८०८

सागर/सीपी

'भाषा तो बहता पानी है, बहनो दो!'

मनमोहन 'सरल'

(हिंदी पत्रकारिता के सागर में एक अनमोल सीपीः मनमोहन 'सरल' खन्ना से सविता मनचंदा की बातचीत)

▸ सरल जी, आप कवि, कहानीकार, शिक्षक, वकील, पत्रकार, संपादक, कला समीक्षक आदि, आदि, आदि हैं; तो, होनहार बिरवान के होते चीकने पात वाली बात?

अरे नहीं. बिल्कुल नहीं. ना होनहार, ना चिकने पात! बात सिर्फ़ अभिरुचि की है. उसे जब-जब आबोहवा और ख़ुली रोशनी मिली वह ख़ुद-बख़ुद बढ़ती गयी. जैसा हर किसी के साथ होता है. घर पर कोई साहित्यिक माहौल तो था नहीं. अगर होता भी, तो ऐसा कब हुआ कि महान साहित्यकार की संतान भी साहित्यकार बनी हो. बचपन में पाठ्यपुस्तकों में कविताएं-कहानियां पढ़ता था या मां से कुछ सुनता था तो ख़ुद भी वैसा ही कुछ लिखना चाहता था और लिखता था. बस, यहीं से प्रस्फुटित होते हैं लेखक के लक्षण. इन्हीं शुरुआती रचनाओं से स्वयं को भी उन कवियों और कहानीकारों-सा समझने लगता और बहुत ख़ुश होता. भले ही दूसरों की दृष्टि में वह केवल अधकचरी तुकबंदी ही होती पर अपना जोश शिखर पर! कभी कोई फ़िल्म, नाटक या कोई सुंदर प्राकृतिक दृश्य देखता तो स्वतः क़लम चलने लगती और कहानी बन जाती. मैं दोस्तों-मित्रों के बीच या मेले में हीरो बनकर अपनी कविताएं सुनाने लगा. फिर ये रचनाएं छपने लगीं, लोग पढ़ने लगे, समीक्षा भी होने लगी तो लगा, भई कोई बात तो होगी वरना क्यों कोई पाठक अपना वक़्त बर्बाद करेगा. ये बातें हैं १९४९ और उससे कुछ पहले की. तब मैं क़रीब पंद्रह वर्ष का था. अब तो उन कहानियों और तब की सभी पत्रिकाओं के नाम भी याद नहीं. घर पर दो पत्रिकाएं आती थीं, 'कल्याण' और 'मस्ताना जोगी'. एक कहानी किसी हस्तलिखित पत्रिका में भी छपी थी. लिखने और छपने का सिलसिला शुरू हो चुका था. नवभारत टाइम्स दिल्ली के संस्करण में भी तब एक कहानी छपी थी 'भाग्य चक्र'. लगभग सभी कहानियां व्यक्तिगत अनुभवों, आसपास के माहौल और पात्रों पर आधारित थीं. पूर्णतः वास्तविक, स्वयं का झेला और अपने नज़रिए से बयान किया हुआ सत्य!! ये पुराने अनुभव ही बार-बार किसी न किसी रूप में हमारे विचारों का हिस्सा बनते रहते हैं और लेखकों के लिए उनके लेखन का. फिर क़रीब दस साल बाद मेरा पहला कहानी संग्रह 'प्यास एक : रूप दो' छपा — क़रीब १९५९ में. एक बात बताऊं, उस समय भी प्रकाशक कहानी संग्रह छापने के लिए तैयार नहीं होते थे. ये तब भी अमीरों के चोंचले थे. पैसा लगाओ और संग्रह छपवाओ. यह तो महज इत्तेफ़ाक था कि मेरा एक मित्र जिसकी प्रेस थी और वह प्रकाशक बनना चाहता था तो पहली क़िताब मेरी छाप दी. ऐसे ही तमाम इत्तेफ़ाकों का पुलिंदा है मेरा जीवन.

▸ कोई ख़ास लेखक जिसने आपको लड़कपन में प्रभावित किया हो?

लेखक...? रवींद्रनाथ ठाकुर कह सकते हैं... मां उन्हें पढ़ा करती थी और फिर हम बच्चों को सुनाती थी. स्कूल में भी उनकी कहानियां पढ़ता था इसलिए उनका नाम ज़हन में बैठ गया था. 'काबुलीवाला' किसे नहीं याद होगी! मेरे नाना विद्वान थे और उनका प्रभाव मेरी मां पर भी था. बहुत संस्कारी थी वे. नाना जी, जो देखने-सुनने में तो सख़्त मिजाज के थे, पर हमें रात को तिलिस्मी कहानियां सुनाते थे. उन्हीं कहानियों का सादृश्य बाद में 'चंद्रकांता' पढ़ने पर महसूस हुआ. शायद वे डायरी भी लिखते थे, गुप्त रूप से. डायरी लेखन में गोपनीयता की बात सदा से ही प्रचलन में रही है और रहेगी. शायद यही उसकी ख़ासियत है. हर व्यक्ति गोपनीयता को भेदना चाहता है, दूसरों के जीवन में झांकना चाहता है. इसलिए जब कोई डायरी, और वह भी किसी नामी-गिरामी व्यक्ति की छपती है तो ख़ूब चर्चा होती है.

▸ किसी लेखक का व्यावसायिक दृष्टि से 'बिकाऊ' या 'हॉट केक' होना, कहीं न कहीं असंगतिपूर्ण या अनैतिक क्यों लगने लगता है?

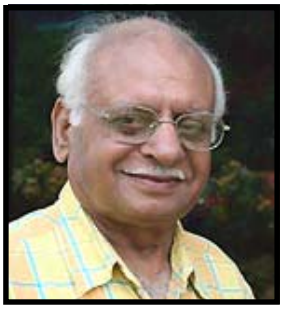

मनमोहन 'सरल'

सविता मनचंदा

बात तो ठीक है और सटीक भी. किसी भी व्यवसाय का मूल मंत्र होता है,'मुनाफ़ा'! इसके लिए क़ानूनी हद के भीतर जो कुछ किया जाये वह सब वाजिब है. इसके कार्यान्वयन की शिक्षा तमाम व्यवसाय प्रबंधन संस्थानों में भी लोग हासिल कर रहे हैं. पर जब हम साहित्य से बतौर लेखक जुड़ते हैं तो शुरुआत होती है 'सच्चाई' से. वह शुरुआती लेखन व्यवसायी लेखन से कोसों दूर होता है. क़रीब होता है तो अपने जीवन के, व्यक्तित्व के, मूल्यों और मूल्यांकनों के. यह लेखन शुद्ध होता है, बिल्कुल खालिस! शत-प्रतिशत सत्य!! वह सत्य जिसे हम देखना चाहते हैं. वह होना ही चाहिए ख़ुशहाली के लिए. पर जैसे-जैसे लेखक के प्रकाशन बढ़ने लगते हैं वह व्यवसायी होने लगता है. वह बिकता है. तुम्हारे शब्दों में जब वह 'हॉट केक' बन जाता है तो लेखन में कई समझौते, दाव-पेंच, इकड़म-तिकड़म समाने लगते हैं जो नैतिक तौर पर शायद बहुतों को अमान्य हो. तब लग जाता है उस साहित्यकार की निष्ठा और व्यक्तित्व पर प्रश्न चिह्न! अनुभवी रचनाकार इसकी परवाह नहीं करता. वह जानता है कि परख उसी लेखक की होती है जो बाज़ार में मौजूद है. जो छपा नहीं, बाज़ार में बिका नहीं, चाहे कारण कोई रहे हों, वह पीछे छूटता चला जाता है. उसका मूल्यांकन कैसे हो और कौन करे?

▸ ऐसे लेखकों के लिए आज 'सोशल मीडिया' एक क्रांति बनकर उभर चुका है. इसके बारे में आपका क्या मत है?

मेरा मत 'सोशल मीडिया' के इस संदर्भ में बहुत सकारात्मक है. बात वही है, 'पहुंच' की. बहती गंगा है सोशल मीडिया. निष्ठावान समर्पित लेखन, चाटुकारिता भरा लेखन, मन की भड़ास और गाली-गलौज भरी भाषा (जिसे मैं 'लेखन' कभी नहीं कहूंगा), गंभीर साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक-सामाजिक मुद्दों पर मत व मतांतर, समीक्षा व प्रतिक्रिया, रिपोर्ट आदि के अलावा न जाने कितनी नयी विधाओं को जन्म दे रहा है यह डिज़ीटल मीडिया. पर यदि कहो कि यह प्रिंट मीडिया की जगह ले लेगा तो वह बात ग़लत है. बिल्कुल ग़लत. हां, यह अलग बात है कि कुछ अच्छे अख़बार और पत्रिकाएं ही बाजार का मिजाज झेल पायें. छंटनी तो लाजमी है ही, मीडिया चाहे जो हो और इसे पाठक या ग्राहक ही तय करता है.

▸ आज हिंदी भाषा के प्रति युवा पीढ़ी उदासीन है. फिर भी आप हिंदी लेखन के प्रति इतने आशावादी कैसे?

मैं समझता हूं कि उदासीनता भाषा के प्रति नहीं बल्कि उसकी क्लिष्टता और जटिलता के प्रति है. भारत में हिंदी-बेल्ट के लोगों की शब्दावली और उच्चारण वे समझ नहीं पाते. उसमें आंचलिक, देहाती या कई ऐसे स्थानीय शब्द होते हैं जो हिंदी प्रदेशों से बाहर लोग जानते ही नहीं. वे तो भाषा के उसी स्वरूप से वाकिफ़ हैं जो उनके आसपास बोली जाती है या स्कूलों में पढ़ाई जाती है. यहां भी एक अंतर है. एक शुद्ध क़िताबी भाषा है तो दूसरी बोलचाल की सरल, सुगम्य भाषा जो कई भाषाओं के शब्दों का मिलाजुला स्वरूप है. आज का शहरी युवा स्कूल-कॉलेज़ में, नुक्कड़-चौराहों पर, दोस्तों-हमउम्र के साथ यही भाषा बोलता है. वह जब हिंदी फ़िल्में देखता है तो भाषा आड़े नहीं आती. तो समस्या का केंद्र बिंदु कुछ और है जिसे हम हिंदी लेखकों को समझना होगा और समयानुसार स्वयं की दृढ़ व जटिल सोच में बदलाव लाना होगा. भाषा को सर्वग्राह्य बनाना होगा. मैंने एक स्टैंड-अप कॉमेडी शो देखा. लोग हंस रहे थे, ठहाके लगा कर. भाषा वही बोलचाल की खिचड़ी थी

पर मुझ जैसे लोग उतनी सरलता से नहीं समझ पा रहे थे. वहां मैं पिछड़ा-सा था. इस नयी हास्य-व्यंग्य प्रधान विधा के नाकाबिल. तो कौन किसे दोष दे? भाषा तो बहता पानी है, बहने दो. जकड़ो मत. लादो मत. शुद्ध, अशुद्ध, जिसे जो ग्राह्य हो बस रमने दो. हम नहीं होंगे पर 'हिंदी' होगी. शायद फिर नये कलेवर में.

▸ साहित्य-क्षेत्र में मान्यता प्राप्त वरिष्ठ लेखक नयी पीढ़ी को लेखन संबंधी औपचारिक या अनौपचारिक मार्गदर्शन दें, ऐसी कोई व्यवस्था कारगर सिद्ध होगी क्या?

हां बिल्कुल. आज के कई वरिष्ठ लेखक कुछ दशक पहले के जाने-माने लेखकों और संपादकों के मार्गदर्शन में राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं और अख़बारों में छपते रहे हैं. लेखन और प्रकाशन की तकनीकी बारीक़ियों की समझ आने से उनकी रचनाओं में क्रमशः सुधार दिखाई देता रहा है. हां, जबसे ये पत्रिकाएं बंद हुई हैं, नये लेखकों का रोष साफ़ दिखाई देता है. पत्रकारिता देखें तो कितने लोग बड़े-बड़े संस्थानों से पढ़-सीख रहे हैं पर उनकी रिपोर्टिंग का हाल...? खुदा बचाये! तो यह वह कला है जो व्यक्ति के भीतर ही विद्यमान होती है. उसे निखारा जा सकता है कई तरीकों से. अच्छे लेखकों को पढ़ कर भी बहुत कुछ सीखने को मिलता है. ज़रूरी है इसकी अभिरुचि होना वरना आज इसकी भी ढेरों कोचिंग क्लासेज़ दिखाई देतीं, अन्य कलाओं की तरह! इससे पहले कि ऐसा कुछ होने लगे; वरिष्ठ लेखकों, समीक्षकों, प्रकाशकों आदि को सामने आना होगा. मैंने स्वयं मुंबई विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग में मानद प्राध्यापक के तौर पर युवाओं का मार्गदर्शन किया है. उनसे अपने ज्ञान और अनुभव को साझा किया है. चुनौतियों से भी अवगत कराया और उनका सामना करने के लिए धैर्यपूर्वक तैयार रहने का भी मशविरा दिया.

▸ अन्य कलाओं का जब जिक्र किया है आपने, तो आपको चित्रकला की रिपोर्टिंग का शौक़ कैसे हुआ?

बात १९६८ की है. मैं 'धर्मयुग' में था. भारती जी ने सोचा कि एक रंगीन पृष्ठ चित्रकला को दिया जाये जिस पर तत्कालीन चर्चित चित्रकार की पेंटिंग एक टिप्पणी के साथ हो. इस श्रृंखला को 'चित्रवीथी' नाम दिया गया और इस पृष्ठ का काम मुझे सौंपा गया. आपको समझने में देर नहीं लगेगी कि इसकी शुरूआत एम. एफ. हुसैन जी से हुई. अब उनका मिलना, उनसे बातचीत करना कोई खाला जी का बाड़ा नहीं था. उन दिनों हिंदी में समकालीन कला पर लिखने की परंपरा ही नहीं थी. हमारे पास इस कला से संबंधित हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली भी नहीं थी. सरल भाषा में इस कला के भाव पक्ष और कला पक्ष को लिखित शब्दों द्वारा पाठक को समझा पाना टेढ़ी खीर था.

मेरा लक्ष्य स्पष्ट था. पारिभाषिक शब्दावली की व्याख्या करते हुए कला की बारीक़ियों से पाठक को अवगत कराना. मैं आलंकारिक लफ़्फ़ाजी में विश्वास नहीं रखता और ना ही उसमें पाठक को उलझाता हूं. बस, पाठकों को पृष्ठ पसंद आने लगा. चित्रकला में उनकी रुचि बढ़ने लगी और इसी स्तंभ के कारण कला-विषयक मेरा लेखन मेरा शौक़ बन गया. कला पर लिखने की मांग बढ़ने लगी. मुझे नवभारत टाइम्स ने चित्र प्रदर्शनी के रिव्यू का ज़िम्मा सौंप दिया जो मैं अंत तक प्रति सप्ताह लिखता रहा. चोटी के कला संस्थानों द्वारा आयोजित सेमिनारों के लिए आमंत्रित किया जाने लगा. प्रतियोगिताओं में निर्णायक के तौर पर बुलाया जाने लगा. राष्ट्रीय कला अकादमी की समिति में चुना गया. महात्मा गांधी पत्रकारिता विश्वविद्यालय ने फ़ेलोशिप दी और मैं इस विधा से जुड़ता चला गया. युवा चित्रकारों के साक्षात्कारों का संकलन 'कलाक्षेत्रे' प्रकाशित हुआ और बहुत सराहना मिली. कलापक्ष को गहनता से समझने के लिए माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय की फ़ेलोशिप के साथ 'पत्रकारिता में कलापक्ष' विषय पर अध्ययन किया. जब तक 'रविवार' छपता रहा तब तक कला और रंगमंच के आयोजनों पर मैं 'रंगमोहन' नाम से लिखता रहा. क़रीब चार दशकों तक मैं कला विषयक लेखन से जुड़ा रहा और यह शौक़ आज भी जीवित है.

▸ चित्रकला और साहित्य में कहीं कोई समानता?

चित्रकला और साहित्य दोनों ही अन्य कलाओं की तरह ललित कला के अंग हैं. ज़रूरत है समकालीन कला को समकालीन साहित्य से जोड़ने की. ज्वलंत सामयिक साहित्यिक मुद्दे चित्रकला या अन्य कलाओं में भी दिखाई देते हैं. दोनों ही समाज से जुड़े हैं. अब दृश्य कला संबंधी कृतियों की बिक्री अनेकों बार बड़ी-बड़ी नीलामियों के माध्यम से भी होती है. ऐसी कृपा दृष्टि हिंदी साहित्य पर कहां? कारण शायद यह कि ख़रीददार साहित्यिक कृति का लालित्य तब तक समझ नहीं सकता जब तक वह उस कृति को पूरा न पढ़ ले. इसमें समय लगता है इसलिए काफ़ी पहले से तैयारी की ज़रूरत होती है जबकि चित्रकला की कृति और चित्रकार की सोच का आकलन वहीं, उसी क्षण

किया जा सकता है. ख़ैर, अलग-अलग विधाएं हैं तो अंतर होगा ही. पर इतना ज़रूर कहूंगा कि हर रचनाकार को नकल के लोभ से बाहर निकलना होगा. तो ही विश्व स्तर पर हम अपना झंडा गाड़ पायेंगे.

▸ आपका कहना है कि आप बचपन से ही शांत स्वभाव के रहे हैं पर आपके कारनामे और भी बहुत कुछ बयान करते हैं. यह विरोधाभास कैसा?

स्वभाव से शांत ही था पर उम्र का हर पड़ाव अपना रंग दिखाता है. वही बात मुझ पर भी लागू होती है. तुम्हारा इशारा वैसे मैं समझ गया हूं. साहित्यकार हूं, कला प्रेमी हूं तो सौंदर्य या लालित्य मुझे आकर्षित करता है और तब भी करता था. ख़ुद भी माशा अल्ला गोरा चिट्टा तो था ही. रूमानी कविताएं भी लिखता था और सुनाता था. ख़्वाब ऊंचे थे. मैं डॉक्टर बनना चाहता था क्योंकि नाम के पहले 'डॉ.' बहुत भाता था. यह कब संभव होता या नहीं भी होता इसलिए मैंने ख़ुद ही चॉक से अपने दरवाज़े पर डॉ. मनमोहन खन्ना एम बी बी एस लिख दिया और उसे बहुत देर तक निहारता रहा. दरअसल मेरे बाबा घरेलू उपचारों जैसे पेडू बाथ, पंडौल मिट्टी और एनीमा से ही निमोनिया तक ठाक कर देते थे. उनसे मैं बहुत प्रभावित था. लड़कियां तो आकर्षित करती ही थीं, ख़ासकर मेरी उम्र से बड़ी लड़कियां. यह मैं इसलिए कहा रहा हूं कि कोई ऐसी-वैसी बात बिल्कुल नहीं थी.

▸ तब तक सरला यानी अपनी 'सरल' से नहीं मिले थे?

नहीं, (दबी मुस्कुराहट के साथ) वह बहुत बाद की बात है. सरला जिसे सब 'सरल' पुकारते थे, मेरे एक दोस्त की बुआ थी और हमारी पारिवारिक मित्रता थी. वह भी मुझसे काफ़ी बड़ी थी. एक बार प्रगतिशील साहित्य परिषद के कुछ सदस्यों ने मुझे सरल के साथ नौचंदी मेले में देख लिया और मसखरी में 'सरल' उपनाम दे दिया. मैंने भी उनका मान रखा और 'सरल' को हमेशा के लिए अपने साथ जोड़ लिया.

▸ आपने ख़ूब बाल साहित्य रचा है. उस तरफ झुकाव कैसे हो आया?

धर्मयुग के शुरुआती दिनों में मुझे बच्चों का कॉलम दिया गया था. मैं प्रति सप्ताह 'सरल भैया की चिट्ठी' लिखता था. फिर बच्चों से संबंधित कई श्रृंखलाएं शुरू कीं. इसके अलावा बाल साहित्य के कई संकलन संपादित किये. १९६१ से लेकर १९८९ तक लगभग २८ वर्ष धर्मयुग के साथ बिताये हर स्तंभ का स्मरण और संस्मरण अंकित है मानस पटल पर. मेरी एक पुस्तक-श्रृंखला 'बाल उपहार माला' छपी जिसमें विज्ञान की कहानियां पुरस्कृत भी हुईं. 'मनुज साहसी जिसने पगतल से नापी दुनिया सारी', 'धनुष-बाण का पेड़', 'अर्वाचीन लोक कथाएं' और बहुत-सा साहित्य बच्चों को अर्पित किया.

▸ वर्ष १९८९ के बाद...?

१९८९ से १९९३ तक हिंदी फ़िल्मफ़ेयर और १९९३ से १९९५ तक नवभारत टाइम्स में सहायक संपादक का कार्यभार संभाला. इस बीच दो और कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए : 'एक अचानक शाम' और 'मेरी इक्कीस कहानियां'. देशभर की सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं तो छपती रहीं.

▸ क्या यह कहना सही होगा कि १९६१ से १९८९ तक का धर्मयुग समय आपके स्वतंत्र लेखन के लिए सूखा रहा?

एक तरह से आप यह कह सकती हैं लेकिन व्यक्तिगत तौर पर मैं नहीं मानता. वह मेरा कार्यालय था. समय के साथ मेरा उत्तरदायित्व भी बढ़ गया. विभागीय कामों के अलावा प्रोडक्शन की ज़िम्मेवारी भी आ गयी जो मुख्यतः मुझ पर ही रही. उन्हीं दिनों हमने 'कथादशक' आरंभ किया था. इसकी भी पूरी ज़िम्मेदारी और बाद में सफलता का पूरा क्रेडिट भारती जी ने मुझे ही दिया. इसके बाद ७० के दशक के बाद उभरे महत्वपूर्ण युवा कथाकारों की नयी श्रृंखला का भी पूरा दायित्व मुझे सौंपा गया. मैं हर स्तर के कथाकार से मिलता तो था ही, लेखन संबंधी गुर सीखता भी था. 'महानगर में लेखन की समस्याएं' इन गोष्ठियों के दौरान तो कई प्रख्यात हिंदी-इतर लेखकों से भी परिचय हुआ. राजनेताओं और धर्मगुरुओं से मिला. ये सभी अनुभव मेरे मार्गदर्शक बनते गये. मैं नोट्स और टिप्पणियों के रूप में उन्हें संजो लेता जिसका बाद में मुझे साहित्यिक लाभ हुआ. विद्वानों के सान्निध्य का असर मेरी सोच और लेखन पर पड़ा. यहीं से शायद मेरे लेखन, संपादन और संकलन की योजनाएं बननी शुरू हो गयी थीं. विदेशों में भी दुर्लभ मौक़े व अनुभव हासिल हुए. क्या यह सब एक साहित्यकार के लिए बंजर है?

▸ सपना डॉक्टरी का और बन गये वकील! यह कैसे?

ना! वकील बनने से पहले; हालांकि मैंने वकालत कभी की नहीं, मैं प्राध्यापक बना. फ़िज़िक्स, कैमिस्ट्री और मैथ्स में बी. एस. सी. करते वक़्त ही सच्चाई सामने आने लगी थी. लेखक तो था ही इसलिए हिंदी में एम. ए. करने का निर्णय लिया. एक बात और थी. एम. ए. के साथ-साथ मैं एल. एल. बी. भी कर सकता था. कहीं कोई नौकरी तो मिलेगी! काफ़ी जद्दोजहद के बाद महानंद मिशन कॉलेज़ गाज़ियाबाद में शिक्षक की नौकरी मिली. वकालत की डिग्री भी ज़रूर हासिल हुई थी. तो प्रतिभा और अभिरुचि जीत गयी, सपना पीछे घर के दरवाज़े पर ही छूट गया.

▸ आपको धर्मयुग के हर अंक व स्तंभ का स्मरण है और संस्मरण भी. कुछ अंदर की चटपटी बातें?

बहुत हैं. वे चटपटी तब तक ही रहती हैं जब तक 'अंदर की' ही हों. अब तो गांठ ख़ुल चुकी है और 'गांठें' भी. मैं स्वयं कई बातों का पर्दाफाश कर चुका हूं और कइयों का ख़ुलासा. धर्मयुग का एक अपना ग्लैमर था. जिसकी मुख्य कड़ी भारती जी स्वयं थे. उनके अपने मित्रों, लेखकों, सहयोगियों, प्रकाशकों, फ़िल्मी व ख़ेलकूद सितारों, नयी मॉडलों आदि से बनते-बिगड़ते रिश्ते ही फुसफुसाहट को आमंत्रित करते थे. इसके अलावा कौन पृष्ठ ग़लत छप गया, कौन ग़लती ऐन मौक़े पर पकड़ी गयी, कौन नज़र से छूट गयी और भद्दी भूल हो गयी, ग़लती किसने की और कितनी बार की, किसे 'कारण बताओ' नोटिस मिला, कौन गुप्त रूप से कहां क्या लिख रहा है, कौन किसे अपने विभाग में खींच रहा है, वी आई पी निमंत्रण किसे नहीं मिला, कौन षड्यंत्र रच रहा है, कौन किसके विरोध में हस्ताक्षर अभियान चला रहा है, शीर्षस्थ प्रबंधकों की क्या नयी चाल या नीति है, वग़ैरह-वग़ैरह. एक विलक्षणता जो हर आगंतुक को आकर्षित करती थी वह थी, वहां का अनुशासन! कुछ तो इसकी भी खिल्ली उड़ाते थे. छोड़ो, अब सब बेकार की बातें हैं. समय बीत गया. गर्व है मुझे कि मैंने धर्मयुग का गरिमामय समय देखा है.

▸ हिंदी लेखन, पत्रकारिता और फ़िल्मों आदि के लिए पुरस्कार व सम्मान देनेवाले कई 'घराने' चल निकले हैं. इस संदर्भ में आपके क्या विचार हैं?

आप जिन्हें 'घराना' कह रही हैं उनसे कई तथाकथित रचनाकार और कलाकार जुड़े हैं और सम्मान पाते हैं. वहां पारदर्शिता है कहां? वही बूढ़ी गधी और वही रामदयाल! कुछ बदला है क्या? हम तुम्हारे लिए, तुम हमारे लिए! नैतिकता तो रही ही नहीं है. हाल ही की, शाहिद कपूर और रणवीर सिंह वाली ख़बर पर ग़ौर करें तो आगे कुछ कहने-लिखने की ज़रूरत ही नहीं. कई बहुत ऊंचे घराने हैं जिनसे जुड़ना हर किसी के बस की बात नहीं. अधिकतर घराने तो ऐसे हैं जो प्रतिस्पर्धियों से एंट्री-फी भी बटोरते हैं उसी में से कुछ राशि पुरस्कारों पर ख़र्चते हैं और मुनाफ़ा भी हथियाते हैं. उस पर मुफ़्त की क़िताबें भी इकट्ठी कर लेते हैं. सही वरिष्ठ ताकते रह जाते हैं और कमतर पुरस्कार-सम्मान पाकर अपना डंका पीटते नहीं थकते. एक-दूसरे को ही राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय स्तर का तमगा बांटते फिरते हैं.

▸ 'मनस्वी' की बात मन में कब और कैसे आयी?

'मनस्वी' तो मुरली मोहन जी की है और रहेगी. वे मेरे अतिथि संपादन में मुझसे एक अंक निकलवाना चाहते थे. मैंने रचनाएं मंगवायी और अंक निकाला पर वे मेरा नाम आगामी अंकों में भी छापते रहे. मैंने इस बारे में उनसे बात की तो वे नहीं माने. अब मेरी ज़िम्मेदारी बढ़ गयी. सुधा अरोड़ा पर दो अंक निकाले. सूर्यबाला पर भी एक और अंक निकालने की बात हुई. सिलसिला ज़ारी रहा. मैंने देखा कि एक अंक में मेरा नाम प्रधान संपादक के रूप में था. अचंभा हुआ पर उन्होंने 'मनस्वी' से मुझे मिला दिया.

▸ आपकी दृष्टि में अच्छी रचना का क्या मापदंड होना चाहिए?

नवीनता, सहजता और ताज़गी.

▸ बंबई जिसने आपको नाम, शोहरत और ज़मीन दी; उस मायानगरी के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

आज वह बंबई मेरी मुंबई है. इसी ने मुझे भरी लोकल में अडिग हो सफ़र करना सिखाया, महंगाई को झेलना सिखाया. अपनापन दिया. महान लोगों का सान्निध्य दिया. मित्र-संबंधी दिये. चुनौतियां दीं तो उनका सामना करने का धैर्य और शक्ति भी दी. तज़ुर्बे दिये. उन्हीं की बदौलत आज मेरा अस्तित्व है.

७६, पत्रकार नगर, मधुसूदन कालेलकर मार्ग, बांद्रा (पू.), मुंबई-४०००५१.
मो. : ९८२१२७५५६८

सविता मनचंदा,
पी-२८३, ज़रीना पार्क, अणुशक्तिनगर गेट के सामने, मानखुर्द, मुंबई-४०००८८.
मो. : ९९६९४८३०२५

लघुकथा

बूढ़ा होना पाप तो नहीं

✍ सिद्धेश्वर

'आपके पिताजी की आयु कितनी है?' डॉक्टर साहब ने, बेड पर पड़े बीमार लक्ष्मण के बेटे से पूछा.

'८५ वर्ष.'

'तब तो उन पर दवा का असर भी ठीक से नहीं हो सकता. उनकी ख़राब किडनी भी बदली नहीं जा सकती है. दोनों किडनियों ने काम करना बंद कर दिया है. आपके पिताजी पर टी. बी. का भी असर है. फेफड़ा निमोनिया से ग्रस्त है...' डॉक्टर ने समझाते हुए कहा.

'अब मैं क्या करूं, डॉक्टर साहब? पिताजी को मरते हुए देखता रहूं और अपना हाथ-पांव बांधे रखूं?'

'ऐसा कब कहा मैंने? किंतु, आप उनकी बीमारी पर और कितना ख़र्च कर सकते हैं, यह जान लेना भी ज़रूरी है मेरे लिए. ताकि आगे का इलाज उसी के हिसाब से कर सकूं. उनका रोग मिटाना संभव नहीं. बस, कुछ दिनों तक उनकी मौत को टाला जा सकता है...' कुछ देर रुकने के बाद, पुन: डॉक्टर साहब ने कहा — 'कहीं ऐसा न हो, आपकी घर-ज़मीन भी बिक जाये और उनकी जान भी न बचे. दोनों में से एक को तो बचाना होगा न...?'

'डॉक्टर साहब. पिताजी की पेंशन की जमा पूंजी यानी सत्तर हज़ार रुपये बचे हुए हैं मेरे पास...' बीमार लक्ष्मण का इलाज करा रहे बेटे सत्येंद्र ने कहा.

'सत्तर हज़ार रुपये ख़र्च कर, उन्हें एक महीने तक किसी तरह बचा सकते हैं. वह भी बिस्तर से उठ नहीं सकेंगे...'

'... मैं तो आपको यही सलाह दूंगा कि ८५ साल के इस बूढ़े पर, इतनी भारी रक़म बर्बाद करने से अच्छा है कि आप लोग अपनी जीवन सुरक्षा के लिए सत्तर हज़ार रुपये बचा लीजिए और...'

'बस भी कीजिए. अब और आगे मत बोलिए डॉक्टर साहब. मैं यदि अपना पैसा उन पर लुटा नहीं सकता, तो उनका पैसा, उनकी सांसों की कीमत पर हड़प भी नहीं सकता...' पूरे आवेश और तेवरपूर्ण मुद्रा में सत्येंद्र ने कहा.

अपने बेटे सत्येंद्र और डॉक्टर साहब की बातों को, पलक बंद किये, बेड पर पड़ा हुआ बीमार लक्ष्मण सुन रहा था. वह भीतर से और भयभीत हुआ जा रहा था. कुछ बोलना चाहकर भी, शब्द कंठ से बाहर निकल नहीं पा रहे थे. अर्धचेतन अवस्था में, कुछ न बोल पाने की बेबसी उसकी आंखों से स्पष्ट झलक रही थी. ऐसा लग रहा था कि ज़िंदगी और मौत से लड़ रहे लक्ष्मण की भीगी आंखें डॉक्टर से पूछ रही हों — 'मेरी सांसों की क़ीमत, मेरी उम्र से क्यों लगाते हो डॉक्टर साहब? मैं अभी भी जीना चाहता हूं. मौत के पहले मैं ज़िंदगी से हारना नहीं चाहता. ८५ वर्ष की उम्र हुई तो क्या, बूढ़ा होना पाप तो नहीं...?'

'सिद्धेश सदन', द्वारिकापुरी, रोड नं- २,
हनुमाननगर, कंकड़बाग,
पटना- ८०००२६ (बिहार).
मो. ९२३४७६०३६५.

नवाब फ़ैज़ुन्निसा चौधुरानी : कुशल प्रशासक दूरदर्शी समाजसेवी

✍ डॉ. राजम पिल्लै

सन १८८९ को ब्रिटिश सरकार ने एक महिला प्रशासक ज़मींदार को 'नवाब' का ख़िताब दिया और वह सबसे पहली महिला थी जिसे ब्रिटिश हुकूमत के दौरान यह गौरव मिला था. यह महिला थी — 'फ़ैज़ुन्निसा चौधुरानी'. यह गौरव उसने ख़ुद अर्जित किया था अपनी प्रशासन कुशलता, सामाजिक दायित्वबोध और गहरे सामाजिक सरोकारों की वजह से! ज़मींदारी, भले ही उसे विरासत में मिली थी लेकिन समाज के पिछड़े वर्गों — स्त्रियों आदि के प्रति संवेदना और उनकी तक़लीफ़ों को दूर करने और उनके विकास के लिए अवसर पैदा करने की गंभीर ज़िम्मेदारी का भाव उसने ख़ुद अर्जित किया था. नवाब फ़ैज़ुन्निसा चौधुरानी का पूरा जीवन ही जैसे एक 'मिशन' था.

उसने ख़ुद अपनी ज़िंदगी की नाव को बड़े-बड़े थपेड़ों से जूझते हुए आगे बढ़ाया था, किनारे पहुंचाया था सो जैसे किसी आधुनिक शायर के शब्दों में उसने बस इतना किया कि 'जगह-जगह फूलों का गुलशन नहीं भी बनाया हो लेकिन बस यह ज़िम्मेदारी ज़रूर निभायी कि जहां तक हो सका रास्तों पर बिखरे पड़े कांटों को हटाया ताकि बाद में आने वालों का सफ़र कम दर्द-भरा हो.'

ज्वार-भाटों भरा जीवन-सागर :

नवाब फ़ैज़ुन्निसा चौधुरानी का जन्म सन १८३४ को कोमिल्ला ज़िले के लक्षम के क़रीब के पश्चिम गांव में हुआ. उस समय पश्चिम गांव होमनाबाद परगना, बंगाल प्रेसिडेंसी के तहत था और वहां ईस्ट इंडिया कंपनी का राज था. जिसे 'कंपनी राज' भी कहा जाता है. उनके पिता अहमद अली चौधुरी, अमीर आगा खान की चौथी पीढ़ी के थे और मां का नाम था बेगम अराफ उन-निसा चौधुरानी. फ़ैज़ुन्निसा के जन्म के समय उनका परिवार समृद्ध संपन्न था और कुलीन रईसों में उसका शुमार होता था. उनकी ज़मींदारी बड़ी थी, रुतबा बड़ा था लेकिन... पिता बच्ची के शैशव-काल में ही गुज़र गये. किसी प्रकार की व्यवस्थित पढ़ाई-लिखाई नहीं हो सकी. बस, घर में एक उस्ताद आते थे उन्होंने जितना सिखाया उतना ही नन्ही मुट्ठियों में बंध सका. पारंपरिक मुस्लिम खानदान था; परदा प्रथा भी थी. और फिर उसकी शादी दूर के रिश्तेदार, पास ही के एक ज़मींदार — मुहम्मद ग़ाजी से हो गयी लेकिन शादी बहुत साल नहीं चल पायी; दो बेटियां हो गयी थीं लेकिन फिर फ़ैज़ुन्निसा ने तलाक ले लिया और अपने मायके लौट आयी और यहीं से ज़िंदगी ने एक नया मोड़ ले लिया.

ज़मींदार फ़ैज़ुन्निसा :

सन १८८३ में फ़ैज़ुन्निसा की मां का देहांत हो गया और उसने अपनी मां की ज़मींदारी विरासत में पायी और वह पश्चिम गांव की ज़मींदार हो गयी.

फ़ैज़ुन्निसा की ज़िंदगी अब प्रशासक और जनता की हमदर्द सेविका के रूप में एक बहुरंगी शक़्ल लेने लगी. उन्हें इस बात का मलाल था कि वे औपचारिक पढ़ाई-लिखाई से वंचित रहीं. उन्होंने संस्कृत सीखने के लिए अपने ही घर में एक पारंपरिक पाठशाला की शुरुआत की.

समाजसेवा की राह पर :

फ़ैज़ुन्निसा को इस बात का एहसास था कि उन्हें जिन-जिन शैक्षणिक-सामाजिक सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा वह उस समय की लगभग सभी जाति-धर्म की औरतों की नियति थी. अब जब वे स्वयं अर्थ संपन्न और शक्ति संपन्न हो गयी थीं तो उन्होंने विशेष रूप से लड़कियों-औरतों के लिए विकास के अवसर प्रस्तुत करने का काम करना शुरू किया. उन्होंने कोमिल्ला में लड़कियों के लिए एक स्कूल की स्थापना की जो भारतीय प्रायद्वीप में स्थापित निजी स्कूल नवाब फ़ैज़ुन्निसा गवर्नमेंट गर्ल्स हाईस्कूल कहलाता है. उन्होंने पश्चिम गांव में भी एक स्कूल की स्थापना की जो बाद में कॉलेज़ के रूप में विकसित हुआ और आज नवाब फ़ैज़ुन्निसा डिग्री कॉलेज़ कहलाता है.

डॉ. राजम पिल्लै

परदा-प्रथा और फिर आर्थिक तंगी की वजह से अक्सर औरतें, ख़ासकर बेसहारा बीमार औरतें ठीक-ठाक इलाज नहीं करवा पातीं सो फ़ैज़ुन्निसा ने अपने गांव में एक धर्मादा डिस्पेंसरी की स्थापना की और कोमिल्ला में एक अस्पताल भी बनवाया जो 'फ़ैज़ुन्निसा ज़नाना अस्पताल' कहलाता है.

फ़ैज़ुन्निसा ने सारी प्रशासकीय व्यस्त ज़िंदगी के बावजूद आत्म-विकास के कार्य को भी जारी रखा. उस समय का समाज स्त्री-शिक्षा को न सिर्फ़ अनावश्यक मानता था बल्कि उसे घर–परिवार, समाज, धर्म-परंपरा आदि के लिए घातक भी मानता था. पर चंद महामना व्यक्ति थे, चंद जागरूक परिवार थे जो यह मानते भी थे और उसके लिए जूझने के लिए भी तैयार थे कि पढ़ाई — आधुनिक शिक्षा के दरवाज़े स्त्री-पुरुष दोनों के लिए खुले होने चाहिए. समाज के सर्वांगीण विकास के लिए यह एक अनिवार्य शर्त है.

फ़ैज़ुन्निसा ने ज़मींदारी से जुड़ी सभी प्रशासकीय ज़िम्मेदारियों को बख़ूबी निभाया, अपने दायरों को लांघकर वृहत्तर समाज की समस्याओं को समझा और उनके निदान के लिए भरसक कार्य किया. और इन सबके साथ-साथ वे साहित्य-सर्जन, साहित्य-पठन और भाषा अध्ययन का अपना दायरा भी बढ़ाती रहीं. ज़िंदगी के उन सालों में जब उन्हें सही-व्यवस्थित पढ़ाई-लिखाई करनी चाहिए थी वे ज़िंदगी से दो-दो हाथ लड़ रही थीं. दो-दो बच्चियों की मां बन जाने के बाद, वैवाहिक जीवन के सुरक्षित किले से बाहर निकलने के बाद उन्होंने शुरू न की गयी अपनी पढ़ाई की फिर से शुरुआत की. उन्होंने अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और बांग्ला भाषाएं सीखीं. यहां तक कि बांग्ला भाषा में साहित्य रचना भी की.

फ़ैज़ुन्निसा ने साहित्य-रचना में भी महत्वपूर्ण योगदान किया. 'रूप जलाल' नामक एक रूमानी कथा/उपन्यास की रचना कर उन्होंने बांग्ला महिला कथाकारों में अपने लिए सुनिश्चित स्थान बनाया है. इस रचना की मूल भाषा बांग्ला थी लेकिन बाद में इंग्लिश में इसका अनुवाद हुआ और सन १८७६ में ढाका से इसका प्रकाशन हुआ. इस रचना का बांग्ला महिला कथाकारों में ऐतिहासिक महत्व है और लोकप्रियता के पैमाने पर भी यह खरा उतरता है.

'नवाब' फ़ैज़ुन्निसा चौधुरानी,
कुशल प्रशासक दूरदर्शी समाजसेवी :

ज़िंदगी के समंदर में लगातार आये ज्वार-भाटों के बावजूद फ़ैज़ुन्निसा के दिलो-दिमाग़ में कडुआहट नहीं आयी, संकीर्णता नहीं आयी, स्वार्थपरकता नहीं आयी. अपनी ज़मींदारी से बाहर के सामाजिक जीवन में वह योगदान करती रहीं, जनता की सुख-सुविधा के लिए किये जाते प्रशासकीय कार्यों से जुड़ी रहीं. यह कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अपनी सदाशयता और दूरंदेशी, प्रशासकीय सरोकारों की वजह से उसने 'कंपनी सरकार' के कामों में भी सहयोग दिया. कोमिल्ला के डिस्ट्रिक्ट मज़िस्ट्रेट मिस्टर डगलस ने ज़िले में सड़कों के निर्माण और रखरखाव के लिए आस-पास के कई रईसों और ज़मीदारों से अपील की थी लेकिन उन्हें अनुकूल सहयोग नहीं मिल पाया. फ़ैज़ुन्निसा ने लगातार आर्थिक अनुदान और सहयोग प्रदान किया.

फ़ैज़ुन्निसा के कुशल प्रशासन तथा गहन सामाजिक सरोकारों ने उन्हें केंद्रीय प्रशासकों की दृष्टि में भी सम्माननीय स्थान प्रदान किया. सन १८८९ में 'नवाब' की उपाधि से उन्हें विभूषित किया गया और ब्रिटिश शासन-काल में वे प्रथम महिला ज़मींदार थीं जिन्हें इतना बड़ा सार्वजनिक सम्मान मिला.

आज २१वीं सदी की दूसरी दहाही में औरतों को

(...शेष पृष्ठ ८५ पर)

उत्कृष्ट कहानियों का संकलन : 'कथा समय'

✍ शशि कांडपाल

कथा समय *(कथा-संग्रह)* **— *संपादक***
—रूपसिंह चंदेल/ डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'
प्रकाशक : *के. एल. पचौरी प्रकाशन, डी-८, इंद्रापुरी, लोनी, गाज़ियाबाद-२०११०२.*
मूल्य : *२५०/- (पेपर बैक) व ४००/-(हार्ड बाउंड)*

कथाकार बहुत रचनात्मक होते हैं. वे अपनी रचनाएं ही नहीं बल्कि अन्य रचनाकारों की सोच की भी चिंता करते हैं. ताज़गी चाहते हैं ताकि साहित्य का प्रवाह बना रहे और इसमें इजाफ़ा भी हो. वे साहित्य प्रेमियों को कुछ नया देने की ज़िम्मेदारी अनुभव करते हैं और नयी योजनाएं लेकर उपस्थित होते हैं. तब 'कथा समय' जैसी पुस्तक पाठकों के हाथ में होती है. कथा समय का संपादन वरिष्ठ कथाकार रूपसिंह चंदेल और डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' ने किया है. पुस्तक में अट्ठारह कहानियां संकलित हैं. संकलनों के लिए रचनाओं का चुनाव निश्चित ही एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता है. पाठकों की रुचि और रचना की उत्कृष्टता आदि को ध्यान में रखकर ही रचनाओं का चयन किया जाता है. इस दृष्टि से 'कथा समय' के संपादक-द्वय सफल रहे हैं.

संकलन में कमलेश्वर जैसे दिग्गज कहानीकार हैं तो एकदम नवोदित रचनाकार भी है. एनआरआई अर्चना पेन्यूली हैं तो बेहद आंचलिक कहानी के साथ द्रोणवीर कोहली भी हैं. बल्लभ डोभाल उत्तरांचल को उतार लाये तो 'बद्री सिंह भाटिया' हिमांचल को. माधव सक्सेना 'अरविंद' अमेरिका को कहानी में दर्शाते हैं तो 'अनंत कुमार सिंह' बदलते ग्राम्य जीवन का सच्चा खाका खींचने में सफल रहे. माधव नागदा की 'परिणति' कहानी किशोर मन की चंचलता और गंभीरता दोनों का जुड़ाव दिखाती है तो बलराम अग्रवाल की कहानी 'भीतरी सांकल' कर्फ़्यू के माहौल के खौफ़ को पढ़ने वाले के अंदर उतार जाती है.

पहली कमलेश्वर की बहु-चर्चित कहानी 'दिल्ली में एक मौत' है जो आजकल के व्यस्त और संवेदनाहीन समाज का आईना है. लोग अपने में इतना गुम हैं कि किसी की मौत उन्हें दुखी नहीं करती बल्कि काम के साथ एक और काम-सी ही लगती है जिसे कैसे निपटाया जाये. संवेदनशील नायक काफ़ी सोचने के बाद कब शवयात्रा में शामिल होता है उसे ख़ुद नहीं पता लेकिन शामिल होने के बाद उसे ये असमंजस ज़रूर होता है कि क्या एक शवयात्रा इतनी महत्वपूर्ण है कि पूरा दिन गंवाया जाये?

द्रोणवीर कोहली की 'चिट्टी दाढ़ी' भाषा और विषय वस्तु के हिसाब से विशिष्ट है. इस कहानी में सिंधु नदी के पश्चिमी तट पर बोली जाने वाली स्थानीय बोली आवाणकी का प्रयोग किया गया है लेकिन इससे कहानी के प्रवाह में कोई बाधा नहीं आती वरन भाषा रोचकता पैदा करती है. कहानी विभाजन पूर्व स्त्री की अवस्था और पुरुष मानसिकता को केंद्र पर रखकर लिखी गयी है. दोनों भोले पात्र दिल छू लेते हैं.

बल्लभ डोभाल की कहानी 'घाटियों के घेरे' मेरे दिल के बेहद क़रीब से होकर गुज़री. जन्मभूमि से दूर परदेश में दरबदर होते लक्खी और चेतराम को आख़िर अपना पहाड़ याद आ जाता है. पैसे की कमी, दड़बे से कमरे का घुटन भरा माहौल, चेतराम का कर्ज़ में डूबना और उनके प्रेम में कड़वाहट का आना आख़िर लक्खी को वापस पहाड़ आने को मजबूर कर देते हैं. नये सिरे से एक साल अनवरत मेहनत करके लक्खी न सिर्फ़ अपना खोया स्वास्थ्य बल्कि लहलहाती खेती के बल पर परदेस में फंसे अपने पति चेतराम के कर्ज़ को तारने की भी सोचने लगती है. पलायन के दर्द से जूझती कहानी अंदर तक उद्वेलित करती है. लक्खी का बादलों, खेतों, रास्तों से स्व-संवाद इस कहानी को बहुत मासूमियत देता है और संदेश भी कि शहर की मृगमरीचिका हमसे वो भी छीन रही है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं.

'अन्ना मवेशी' का अभिप्राय यदि आप रिटायर्ड लोगों से करें तो? अजीब-सी बात है न? लेकिन राजेंद्र राव की

कहानी 'अन्ना मवेशी' अपने शीर्षक को समझाने में सफल रही है. रिटायर होना सिर्फ़ कार्यालय से अवकाश मिलना है, ना कि जीवन का ख़त्म हो जाना लेकिन घर के लोग, ख़ुद रिटायर लोग अपनी परिस्थितिजन्य समस्याओं के चलते समाज में सामंजस्य बिठाने में ख़ुद को असमर्थ पाते हैं तो खाली समय में एक नया संसार रच लेते हैं. इस संसार का नाम 'डेडवुड क्लब' है. यहां शहर के ज़्यादातर मध्यम दर्जे के कर्मचारियों का आना-जाना है लेकिन रिटायर्ड उच्च पदाधिकारी तिवारी जी भी जब इस क्लब का हिस्सा बन जाते हैं तो यहां आने वाले सभी पुरुषों के हालात, दिमाग़ी विचारों से अवगत होते हैं. यहां आने वाले हर पात्र की अपनी कहानी है. इस क्लब की चाय की दुकान चलाने वाली महिला गौरी भाभी है जिसे कहानी में बड़ी नैसर्गिक तरीक़े से चाय, पानी और पुरुष मानसिकता को संभालते दिखाया गया है. गौरी भाभी इस क्लब में आने वाले कुछ व्यक्तियों के लिए एक अतिरिक्त आकर्षण की तरह है. बोझिल जीवन और अपनों की उपेक्षा सबको यहां आकर अपना दुख, विचार बांटने के लिए मजबूर कर देती है. घर से ज़्यादा क्लब ज़रूरी हो जाता है.

'पाज्जे के फूल' हिमांचल या पहाड़ी प्रदेशों में बहुतायत से होते हैं बस उन्हीं फूलों से प्रेरित हो लेखक बद्री सिंह भाटिया लोककथा के रूप में एक उत्कृष्ट कहानी कह गये. ग्रामीण जीवन में जिनकी खेती या फल के पेड़ हैं उनकी अमीरी भी मौसमी है. जब मौसम होगा तब खाने-पीने की बहार होगी. लेखक पहाड़ों की सुंदर छटा, प्रकृति का मनमोहक वर्णन करते हैं. गोष्ठी के लिए साथ आये सदस्यों में से कुछ महिलाएं जब पाज्जे के फूलों से बहुत प्रभावित होती हैं तो उन्हें स्थानीयता के पुट के साथ कहानी सुना देते हैं. कहानी कुछ यूं है कि एक बहन जो अपने मायके राखी के त्योहार पर आयी है भाभी से अपमानित होती है, लेकिन भाई-बहन के प्रेम में कोई दरार नहीं आती. भाई के यह कहने पर कि वो जल्दी ही उसके घर आएगा सुन कर सोच में पड़ जाती है. उसकी ग़रीबी का कहीं भाभी उपहास ना उड़ाने लगे इस भय से दोनों को पाज्जे के फूल खिलने पर ही अपने घर आने का न्योता देती है लेकिन भाई आड़ू इत्यादि के फूल खिलने पर ही अचानक बहन के घर पहुंच जाता है जो बहन को गहन परेशानी में डाल देता है. फ़सल तैयार नहीं थी और घर में दाने दाने की कमी थी. बहन बहुत मुश्किल से भोजन का जुगाड़ करती है लेकिन भाई अपनी बहन की मजबूरी समझ जाता है और उसके बेटे को कुछ काम दिलवा कर घर की स्थिति सुधारने का आश्वासन देता है ताकि हर मौसम में उसकी बहन अपना घर चला सके. यह कहानी ग्रामीण जीवन की सच्चाई है, फ़सलों पर निर्भर किसान आज भी इतना ही मजबूर है.

अगली कहानी है डॉ. अरविंद की, जिसकी पृष्ठभूमि अमेरिका है जो दूर से हमें एक स्वप्न जैसा लगता है. न्यूयॉर्क की ४२ वीं स्ट्रीट के चौबीसों घंटे आलोकित विज्ञापनों की जगमगाहट से हर कोई दृगचकित रह जाता है. एटलांटिक सिटी के जुआंघर हमें अपनी ओर आकर्षित करते हैं. पर यह सब क्षणिक है. वहां भी अनेक खामियां हैं. थोड़े दिन रहने के बाद यह दिवास्वप्न टूट जाता है और स्वदेश की याद आने लगती है.

पीढ़ियों का टकराव कहें या विभाजन, कहां नहीं है? रिश्तों के साथ-साथ पार्क में भी! सोच, इरादे, मक़सद सब उम्र के हिसाब से अलग-अलग. पार्क घूमने की, बच्चों के दौड़ने की, बुज़ुर्गों के टहलने, बैठने की, गप्प मारने की जगह हो सकती है लेकिन युवाओं के अपने मक़सद भी होते हैं जो सभी सार्वजनिक जगह पर दिखते हैं बस ऐसा ही एक पार्क है पुन्नी सिंह की कहानी 'पीढ़ियां पार्क में'. एक पीढ़ी के दादा जी जो सुनने, देखने चलने में असमर्थ और एक पीढ़ी का पोता जो पार्क में दादाजी को सिर्फ़ इसलिए छोड़ने आता है ताकि इत्तेफ़ाक से एक उच्च बूढ़े व्यापारी की पोती से बातचीत कर सके. क्योंकि अनुराधा के दादा व्यवहार से काफ़ी तेज़ हैं सो दोनों युवा पार्क में अलग ही मिलने का जुगाड़ बना लेते हैं. पार्क में भी विभाजन है मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग के बुज़ुर्गों के बैठने का. सो पोता अपने दादा को उन उच्च दंभियो के बीच ना ले जाकर पार्क के दूसरी ओर बिठाता है और ट्यूशन का बहाना करके अनुराधा से मिलने पहुंच जाता है. इस दौरान एक दिन अनुराधा के चतुर दादा द्वारा पकड़ लिया जाता है. काफ़ी लानत मलानत के बाद जब छूट कर काफ़ी देर में अपने चिंतित दादा के पास पहुंचने वाला होता है तो देखता है कि दादा जी से उनके जान-पहचान का नाई उलफत कुछ बताने वाला है. वह नाई को खींचकर अलग ले जाता है और पूछता है कि उसने दादा को अभी तक क्या बताया तो नाई चुप रहने के लिए सौ रुपये की मांग करता है जिसे पोता पूरा करता है जबकि

बात बताने के लिए दादाजी से सौ रुपये पहले ही झटक चुका है.

अनंत कुमार सिंह की कहानी 'भुच्चड़' नायक के साथ घटा एक यथार्थ है जो अपने गांव सालों बाद लौट कर आया. सालों पहले छोड़े उस गांव की गंवई कल्पना उसे गुदगुदा रही होती है. वह ताल, तलैया, बाग, पगडंडी,स्कूल, खेल का मैदान, खेत, दिया बाती की याद लिये गांव को उसी कलेवर में सोच वहां पहुंचने को बेताब होता है, अपनी यादों को जी लेने को बेचैन है. जब वह गांव पहुंचा तो सांझ हो चुकी थी. सारा गांव लालटेन,गेसोमैक्स से जगमगा रहा था. घनु चाचा के बड़े से आंगन में दरी, जाजम बिछे हुए थे और लोग क्रिकेट मैच देख रहे थे. उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रहती जब वह वहां शहरी रंग ढंग देखता है. टीवी, खाने का शहरी अंदाज और चमक-दमक. सोचता है मैं इतने साल शहर में रहकर भी मानसिक रूप से भुच्चड़ ही रह गया और मेरा गांव हर तरह से आगे बढ़ गया, आधुनिक हो गया भले उसके अपने गांव वाले सपने चकनाचूर हो गये.

'निवृत्ति'...आख़िर किससे? क्या रिटायर होने पर ज़िंदगी रुक जाती है या दूसरी तरह की ज़िंदगी शुरू हो जाती है? जब व्यक्ति पैंतीस छत्तीस साल बाद अपनी बंधी बधाई दिनचर्या से, अनेक सुविधाओं से एकदम अलग होता है तो ख़ुद में काफ़ी निराश-सा हो जाता है. शैलेंद्र सागर की 'निवृत्ति' कहानी रिटायर्ड पात्र के जद्दोजहद से शुरू होती है. ताज़ा रिटायर नायक घर, पत्नी, बाज़ार, भरे जाने वाले बिल, नौकरों की कमी से जूझते एक साल पूरा करने वाला होता है कि विदेश में सेटिल बच्चे उसे रिटायरमेंट की सालगिरह मनाने का सुझाव देते हैं. वो मना करता है लेकिन बच्चों के तर्क और मनुहार उसे हरा देते हैं. फिर शुरू होता है घर सजाने, पार्टी का इंतजाम करने, मेहमानों को बुलाने का सिलसिला जिसमें व्यस्त होकर वो अपना सब कुछ भूल जाते हैं. पार्टी ना सिर्फ़ शानदार रहती है बल्कि उनके जैसे कई रिटायर लोगों के लिए ख़ुशी की प्रेरणा बनती है. तय होता है कि एक-एक कर सभी ना सिर्फ़ अपनी रिटायरमेंट की सालगिरह मनाएंगे बल्कि सालों पूर्व नौकरी ज्वाइन करने की पार्टी भी करेंगे यानि हर बात से ख़ुशियां ढूंढेंगे.

'देवता नहीं है', सुदर्शन वशिष्ठ की लिखी एक मजबूर पिता, ग़रीब किसान की कहानी है जो अपनी इकलौती पुत्री के लापता हो जाने के बाद दर दर अपना सर रगड़ता है. पुत्री को ढूंढ लाने की गुहार लगाता है लेकिन यह बात किसी को महत्वपूर्ण नहीं लगती या कहें जो इस काम को अंजाम दे चुके थे वही धर्म के ठेकेदार भी थे. उनके आगे-पीछे चक्कर लगाते लड़के इस घटना के जवाबदेह हैं ये वो जानता था लेकिन जबर्दस्ती चंद रुपये उसकी जेब में ठूंसकर उसे चुप कराया गया. एक बाप भला कैसे चुप रहता सो गांव में देवता का डोला उठने पर उसने देवता से ही न्याय मांगने की ठानी और उसके लिए अपना मेमना चढ़ावे के लिए धर्मस्थल ले गया था. धर्म के ठेकेदारों ने उसे यहां भी देवता के बारे में फुसला कर, कुछ करने से रोका तो वो ख़ुद अति उत्तेजना के तहत वहशी तरीक़े से मेमने की बलि दे उसका कलेजा निकाल देवता के सामने रख चीत्कार करता है कि तू कहां है? जिससे पूरा गांव दहल जाता है लेकिन जैसा कि होता आया है उसकी आवाज़ ख़ास बाजों की आड़ में दबा दी जाती है. चेपाराम की मजबूरी पाठक को उद्वेलित कर जाती है.

'परिणति' माधव नागदा की लिखी एक प्रेम कहानी है जो नायक नायिका के बीच प्रेम को दर्शाती, मज़बूरियों को बताती तथा साथ ही वास्तविकता को अपनाती चलती है. नायक की अपनी मज़बूरी है जिसके तहत वो कोई ऐसा निर्णय नहीं ले पाता जो दोनों को साथ कर दे वहीं नायिका अपने प्रेम के वश नायक से मिलने खिंची चली आती है जबकि उसे अपने रिश्ते की परिणति मालूम होती है. दोनों की बातचीत फ़ोन पर रांग नंबर से शुरू हुई थी लेकिन आज वही बातचीत मुलाक़ात में बदल चुकी थी. दोनों मिलने वाले मुकर्रर दिन की बड़ी प्रतीक्षा करते और जब मिलते तो अपनी अपनी मज़बूरियों और तंग हालातों पर बात करते लेकिन जब अलग होते तो एक आशा के साथ कि शायद अगली बार कोई अच्छी ख़बर होगी. ये निराशा आशा में बदल जायेगी. लड़का पूरी जद्दोजहद से नौकरी ढूंढ रहा था. कहीं पैसा, कहीं जाति, कहीं अनुभव की कमी, कहीं सिफ़ारिश और कहीं फर्राटेदार अंग्रेज़ी उसकी नौकरी के आड़े आ जाती. दोनों अक़्सर अपनी स्थितियों को लेकर एक दूसरे से मज़ाक करते, ढ़ाढस बंधाते और सपने देखते. दोनों ही परिस्थितियों के मारे आर्थिक रूप से कमजोर थे और यही वजहें उन्हें किसी निर्णय को लेने में और भी कमजोर बना रही थीं. नायक नौकरी की ख़ोज में निराश था

और नायिका अपने घर की हालत से. दोनों की निराशा बढ़ती जा रही थी. एक दिन जब नायिका काफ़ी दिन बाद जब मिलने आयी तो उसके हाव भाव बदले हुए थे. आज चमकीला हरा सूट था और ऊंची एड़ी की चप्पल भी. लंबे बालों की जगह बॉबकट बाल देखकर नायक हतप्रभ रह गया. उसकी शादी तय हो चुकी थी. नायिका ने पर्स से शादी का कार्ड निकालकर दिया और आने का मनुहार भी किया. वो अपनी आने वाली ज़िंदगी के सपने बुनने में मगन लग रही थी जबकि नायक लाख चाहते हुए भी ख़ुद से हार रहा था, दुखी हो रहा था. कहानी प्रश्न छोड़ती है कि क्या लड़की नायक से प्रेम नहीं करती थी या दिल पर पत्थर रखकर प्रेम से ऊपर अच्छे भविष्य को चुन चुकी थी या वो नायक से ज़्यादा दुनियादार निकली? पाठक अपनी समझ के घोड़े दौड़ाने के लिए पूरा मैदान पाता है और जैसा चाहे वैसा रंग कहानी के अंत को दे सकता है. कहानी के उत्कृष्ट होने की एक कसौटी यह भी है कि पाठक कहानी के बारे में सोचता रह जाये और इसमें माधव नागदा सफल हैं.

बलराम अग्रवाल की कहानी 'भीतरी सांकल' आज के परिवेश में एकदम सटीक बैठती है. लोगों के दिलों में एक दूसरे के प्रति शक, भय इस हद तक बैठ गया है कि लोग अपनों पर, जान पहचान वालों पर विश्वास करने से हिचकिचाने लगे हैं. आख़िर किसी के प्रेम या समझदारी को भापने का यंत्र भी तो नहीं है. इंसान अक़्सर अपनी बुद्धि से ग़लत फ़ैसले लेता आया है लेकिन जानवर के पास वो समझ है कि वह निस्वार्थ प्रेम को समझ सकता है. असगर मियां जब शहर से रात ९ बजे अपने गांव पहुंचे तो इस बात से अनजान थे कि यहां दंगा हुआ है और पूरे इलाक़े में कर्फ़्यू लगा हुआ है. सहायता की तलाश में वो सबसे नज़दीकी घर अहमद के घर पहुंचे. अहमद के घर बाज़ार से होकर ही जाया जा सकता था और तमाम बुरे ख़्यालों को पार कर किसी तरह अपने भाई जैसे दोस्त के घर पहुंचे. काफ़ी सांकल खड़खड़ाने के बाद अहमद मियां की छोटी-सी बच्ची ने उनको पहचान कर भी टका-सा जवाब दिया कि अब्बू घर पर नहीं हैं. मज़बूर असगर थकान और डर से मज़बूर उनके छोटे से चबूतरे पर बैठ गये जहां एक कुत्ता डेरा जमाये बैठा था और उन पर गुर्रा भी रहा था. आख़िर कुत्ते ने उनके लिए थोड़ी सी जगह छोड़ दी तो असगर सो गये. ग़जब तो तब हुआ जब सुबह सांकल खुलने की आवाज़ से उनकी नींद खुली. देखा अहमद मियां अंदर ही थे और अब डोल लेकर दूध लेने निकल रहे थे. दोनों एक दूसरे को देख अचकचा गये. दोस्ती पर एक जानवर की दयालुता ज़्यादा भारी रही.

अरविंद कुमार सिंह की 'सती' कहानी अमीर इंसान की ग़रीबों से घृणा और ख़ुद के किये ख़राब कर्मों के कारण अंतर्मन की आवाज़ पर डरने की कहानी है. एक ज़मींदार परिवार जिसका काम अपने मातहतों के बिना चल नहीं सकता और उन ग़रीब कामगारों की मज़बूरियों ने इस परिवार के बच्चों तक को उन्हें परेशान करने की, किसी भी सीमा तक जाने की छूट दे रखी थी. घर में पशुओं का गोबर उठाने वाली के रिकेटी बच्चे का तरह-तरह से न सिर्फ़ उपहास किया जाता बल्कि उसे तरह-तरह की सजाएं भी दी जातीं. उसकी मां को भी बहुत कुछ बर्दाश्त करना पड़ता, लेकिन ग़रीबी सब बर्दाश्त करवाती है. जब गोबरवाली का पति मरा तो उसके गांव वालों ने उसे भी सती कर दिया. मरते ही उसकी शक्ति ज़मींदारिन को डराने लगी. उसे अपने किये अन्याय याद आने लगे जो उसने उन ग़रीब मां बेटे को सताने में किये थे. आख़िर ज़मींदारिन डर के मारे अपने बच्चों सहित गोबरवाली सती का पूजन करने जा पहुंचती है जहां उसका मानसिक रूप से विक्षिप्त बेटा हमला कर देता है. अदने से बच्चे की मानसिक स्थिति को न समझ उसे सती का प्रकोप मान माफ़ी मांग लेती है और अपने बच्चों सहित घर की तरफ़ भाग लेती है.

अर्चना पेन्यूली की 'एन आर आई' हर उस नवयुवक की कहानी है जो तिकड़म से किसी तरह विदेशों में बस जाना चाहता है. एक युवक अपनी भाभी के रिश्तेदार के विदेशी ठसके से इतना प्रभावित हुआ कि सब कुछ बेचकर भी इंग्लैंड जाने को तैयार था. असल कहानी एज़ेंट के चंगुल में फंसने से शुरू हुई जिसने महीनों उसे पानी के जहाज़ से घुमा कर जगह-जगह छिपाया. तरह तरह के काम करने पड़े. उसको अपने निर्णय का पछतावा भी होता है लेकिन पीछे मुड़ कर जाना संभव नहीं था. आख़िर तक वो इंग्लैंड न जाकर डेनमार्क पहुंच पाया और अब उसकी एकमात्र इच्छा यहां घर चलाने लायक कमा कर अपनी पत्नी को अपने पास बुलाने की है.

शशि कांडपाल की 'मी मांछा' संसार से सन्यास लिये हुए लोगों के अंदर भी भावनाओं के ज्वार की कहानी

है. इंसान भावनाओं से रीता कभी नहीं. कितनी भी शुष्क धरती हो यदि उसमें बीज पड़ें हों और पानी की जरा-सी फुहार पड़ जाए तो नन्हें अंकुर निकल ही आते हैं. इंसान के आसपास प्रेम की कितनी भी मनाही हो, प्रेम तो अपनी जड़ें जमा ही लेता है. समाज, धर्म के प्रति चाहे संकल्प कितना भी बड़ा हो प्रेम से बड़ा नहीं हो सकता. विरले ही संयम रख पाते हैं वरना परिणति दुखद ही होती है.

'मनीष वैद्य' की कहानी 'फुगाटी का जूता' आजकल की ब्रांड मानसिकता पर करारा प्रहार है. नायक का बेटा अमेरिका में रहता है. होली, दिवाली में भारत आता है. एक बार पिता बेटे मनु को लेकर नजदीकी बाटा शोरूम जूता खरीदवाने गये तो बेटे ने उपेक्षित भाव से जूते देखे और बाहर आ गया. जब सेल्सगर्ल ने उन्हें बताया कि कुछ कंपनियां जूते बनाती ही नहीं हैं बल्कि हमसे अच्छा माल ख़रीद कर उस पर अपने लेवल लगाकर कई गुना दाम में उन्हें बेचती हैं. उन्हें विश्वास नहीं हुआ लेकिन खोजबीन से वह बात सही निकली. उन्हें बेहद दुख हुआ क्योंकि उनके बेटे ने जो फुगाटी का जूता ख़रीदा था वह यहां वाजिब दाम में मिलता है जबकि उसने साढ़े चार सौ डॉलर में ख़रीदा था. पिता को ये फिजूलख़र्ची बिलकुल न भायी, लेकिन बेटे ने टका-सा जवाब देकर अपने पैसे ख़र्च करने को जायज ठहराया. पिता बहुत आहत होते हैं, उन्हें लगता है ब्रांड प्रेम में बेटे ने उनके मुंह पर और ज़्यादा दाम लेकर फुगाटी ने उनके पुत्र के मुंह पर जूता मारा है.

'लेलिया गुनझिक्कू' बिभा कुमारी की आंचलिक पुट लिये दो पक्की सहेलियों की कहानी है. लेलिया मतलब पगली और गुनझिक्कू माने अधूरा जादू सीखी स्त्री जो आधी पगली भी हो सकती है. आरती और संध्या पक्की सहेलियां हैं और गांव से दूर पढ़ने जाने के लिए एक दूसरे का सहारा भी. संध्या के भाई को मज़बूरी में एक अधपगली से शादी करनी पड़ती है और अब उसके जुड़वां बच्चे हुए हैं. संध्या की मां अभी किसी को बताना नहीं चाहती सो संध्या को बच्चे संभालने की वजह से स्कूल से नाता तोड़ना होगा. यह सुनकर आरती दुखी हो जाती है लेकिन संध्या के समझाने पर अकेली ही स्कूल जाने का निर्णय लेती है. कहानी सखियों की मीठी बातों से रसीली बन पड़ी है.

कहानियों को अपनी नज़र से जानने के लिए हर पाठक को यह संग्रह ख़ुद पढ़ना चाहिए. यह कथा संग्रह एक रंगबिरंगे मोतियों की माला है जिसे बड़े प्रेम तथा सावधानी से पिरोया गया है.

१४/१००५, इंदिरानगर,
लखनऊ- २२६०१६.
मो. ९८३९६८५४४१

युगीन सत्य की व्यंग्य रचनाएं

जांच अभी जारी है *(व्यंग्य-संग्रह)* - ***डॉ. सुरेंद्र गुप्त***
प्रकाशक : *अंकुर प्रकाशन, ए-३१-सी, न्यू गुप्ता कॉलोनी, दिल्ली-११०००९* ***मूल्य :*** *३०० रुपये*

✍ डॉ. दिनेश पाठक 'शशि'

लघुकथा और कहानी के बाद हिंदी साहित्य की व्यंग्य विधा में साधिकार लेखनी चलानेवाले रचनाकार डॉ. सुरेंद्र गुप्त के व्यंग्य-संग्रह — 'जांच अभी जारी है' में कुल पंद्रह व्यंग्य रचनाएं हैं.

संग्रह के प्रथम व्यंग्य का शीर्षक है — 'मेरी पत्नी मायके गयी हुई है.' अक्सर नारी जाति को पुरुष वर्ग के द्वारा शोषित और प्रताड़ित माना जाता रहा है किंतु वास्तविकता ऐसी नहीं है. नारियों के द्वारा भी पुरुष वर्ग का भरपूर शोषण होता रहा है और आज भी हो रहा है. प्रेयसी से पत्नी के रूप में आते ही कुछ नारियां जिस तरह अपना रूप परिवर्तन करती हैं वह कोई भुक्तभोगी ही जानता है.'मेरी पत्नी मायके गयी हुई है' व्यंग्य में डॉ. सुरेंद्र गुप्त ने बहुत ही सहज रूप से एक पत्नी के द्वारा एक पति के किये जा रहे शोषण का खाका खींचा है.

'रिटायरमेंट के बाद' संग्रह की दूसरी रचना है. रिटायरमेंट के बाद मनुष्य घर-परिवार एवं समाज के लिए अनुपयोगी-सा लगने लगता है यहां तक कि पर्याप्त आय का साधन समाप्त होते ही परिवार वालों का दृष्टिकोण भी

बदलने लगता है. प्रस्तुत व्यंग्य रचना में व्यंग्यकार ने अपने-अपने अनुभवों के आधार पर मुफ़्त की सलाह देने वालों के विचारों को बहुत ही तारतम्य से रखा है.

व्यंग्य 'बर्तन' में टी. टी. ई. और सिपाही के द्वारा किये गये दुव्यर्वहार के माध्यम से देश में व्याप्त भ्रष्टाचार का अच्छा खाका खींचा गया है. घर के पुराने पीतल के बर्तनों को दादाजी द्वारा शहर में जाकर बेचने के लिए कहे जाने पर जब वह शहर के बाज़ार में पहुंचता है तो एक सिपाही उससे बर्तनों को चोरी का बताकर थाने में बंद कर देने की धमकी ही नहीं देता रिश्वत न देने पर उसे थाने में बंद भी कर देता है. सिपाही का ज़ोरदार डंडा पीठ पर खाने के बाद वह अपने बुद्धि कौशल से कैसे छुटकारा पाता है, यह घटना रचना में हास्य की उत्पत्ति भी करती है लेकिन बहुत ही चुटीले और मर्मस्पर्शी रूप में.

हमारे देश में बिना मांगे ही सुझाव देने वालों की बहुतायत है. आपको जरा-सी कोई परेशानी हुई नहीं कि सुझावों के भंडार के साथ शुभचिंतकों की भीड़ लगना शुरू हो जाती है. 'बाज आये साइटिका के दर्द से, व्यंग्य रचना के बहाने बहुत ही मनोरंजक ढंग से ऐसे शुभचिंतकों का वर्णन किया गया है.

'चस्का खालिस दूध का' में दूध बेचने वालों के विभिन्न हथकंडों और नखरों की सटीक व्याख्या की गयी है तो 'जी हां, हम भी लेखक हैं', रचना में एक लेखक के अंतर्मन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया गया है.

'जांच अभी जारी है' व्यंग्य पर ही पुस्तक का शीर्षक भी रखा गया है जिसमें भ्रष्टाचार की जमकर पोल खोली गयी है. चौथी पास फेरी लगानेवाले को राज्य का गृहमंत्री बना देना लोकतांत्रिक प्रणाली पर व्यंग्य नहीं तो और क्या है. ...आगे अपनी बात जारी रखते हुए बोले — 'अभी कल ही मेरे मुर्दाबाद के नारे लगे, मेरा पुतला जलाया गया, मुझसे विपक्ष वालों ने त्यागपत्र मांगा कि नेत्रहीनों पर लाठी चार्ज किया गया, सरकार जबाव दे. मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि नेत्रहीनों पर लाठी चार्ज अत्यंत शांतिमय और अनुशासन बद्ध तरीक़े से किया गया था. मुझ पर आरोप लगाये जाते हैं कि कल तक मैं फेरीवाला था, आज मेरी इतनी मिलें हैं, इतनी ज़मीन है. यह सब इतनी जल्दी कैसे बना? कुछ लोग मेरा रिश्ता स्मगलरों से बताते हुए कहते हैं कि मंत्री महोदय की पत्नी ने जो हीरे की अंगूठी डाल रखी है, वह स्मगलर द्वारा दी हुई है. मैं स्मगलिंग करने में उनकी सहायता करता हूं और वे मुझे शेयर देते हैं. यही नहीं सरकार की ओर से बड़े-बड़े भवनों, पुलों के निर्माण में जितने बड़े-बड़े ठेके दिये जाते हैं, उन सब में मेरी पत्नी रहती है. यह सब बेबुनियाद बातें हैं. आप सोचिए, हम लोग कई लाख लगाकर चुनाव जीतते हैं तो क्यों? ये सब पैसे वसूलना तो हमारा अधिकार है. मेरी लॉटरी निकली, चुनाव लड़ा और फिर अपने आपको बेचकर दलबदल करके मंत्री बना.'

'इलाज नहीं है वहम का' में वहम करनेवालों की आदत के संबंध में विभिन्न कोणों से प्रकाश डाला गया है. वहीं 'अभिनंदनीय हैं – आत्मसमर्पण कर्त्ता' व्यंग्य रचना में मंत्री, पुलिस और डाकू तीनों की आत्म-प्रशंसा की ललक तथा प्रजातांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था का दिग्दर्शन दृष्टव्य है — 'हम आज तक नहीं समझ पाये हैं कि यह आत्मसमर्पण इस देश के नेता या अभिनेता ही क्यों करते हैं? भ्रष्टाचार, हत्या, अपहरण तथा डकैती के मामले में तो अनेक अपराधी होते हैं पर सामान्य अपराधी को तो कभी भी आत्मसमर्पण करते हुए नहीं देखा गया, क्योंकि वे न तो नेता होते हैं, न ही अभिनेता और न ही बाहुबली. इसका कारण एक तो शायद समझ में आता है कि ये नेता लोग पूरे हिंदुस्तान की जनता को यह संदेश देना चाहते हों कि एक सांसद अथवा मंत्री होने के नाते उनके पास पूरे अधिकार हैं कि कोई भी प्रशासनिक अथवा पुलिस अधिकारी उन पर हाथ डालने की हिम्मत नहीं कर सकता, क्योंकि वे जनता के नुमाइंदे हैं.'

'मुकद्दमा एक कुत्ते पर' में एक व्यक्ति की जगह मुकद्दमा एक कुत्ते पर कराके डॉ. सुरेंद्र गुप्त ने हास्य और व्यंग्य की उत्पत्ति की है.

आज के युग में शिक्षा का जो अवमूल्यन हुआ है वह अभूतपूर्व है. अपनी तुच्छ स्वार्थसिद्धि के लिए विश्वविद्यालय के कुलपति आदि डॉक्टरेट और डी. लिट्. की उपाधियां खूब धड़ल्ले से बांटते देखे जा सकते हैं और उन उपाधियों को प्राप्त करने वाले अपने आपको गौरवान्वित होते देखे जा सकते हैं. डॉ. सुरेंद्र गुप्त ने इसी प्रकरण को ध्यान में रखते हुए व्यंग्य — 'डिग्री डाक्टरेट की' में अच्छा खाका खींचा है — 'ऐसा कुछ अब मेरे देश में भी होने लगा है. अब आपको विश्व विद्यालय या गाइड सर के इर्द-गिर्द घूमकर अपनी ऊर्जा, पैसा तथा समय नष्ट करने की ज़रूरत नहीं है. बस एक काम आपको करना है. सोचिए मत किसी भी तरह राजनीति में कूदकर कोई भी शीर्षस्थ पद हथिया

लीजिए. किसी भी राज्य का महामहिम राज्यपाल अथवा मुख्यमंत्री बन जाइए. समझिए आपका काम बन गया. कोई न कोई विश्व विद्यालय आपको ऑनरेरी डिग्री प्रदान करने के लिए आपके नाम की सिफ़ारिश कर ही देगा.'

'बुरे फंसे जाम में' एक नये विषय पर लिखा गया व्यंग्य है. इस व्यंग्य में कई प्रकार के जाम का वर्णन डॉ. सुरेंद्र गुप्त ने किया है जैसे यदि कोई दुर्घटना में या पुलिस के द्वारा मारा गया तो शव को सड़क पर रखकर बंधु-बांधवों द्वारा लगाया गया जाम, नेताजी की कहीं सभा या लोकार्पण का कोई कार्यक्रम हुआ तो सुरक्षाकर्मियों द्वारा जाम, धर्मगुरुओं के ख़िलाफ़ सरकार ने जांच के आदेश दिये तो शिष्यों द्वारा सड़क पर जाम. भिन्न-भिन्न प्रकार के जाम-

'अब जब उस छोटी-सी सड़क पर, सभी गाड़ियों में एक-दूसरे से पहले मोड़ने के लिए आपस में धक्का-मुक्की चल रही थी, बस जाम महोदय ने वहां भी अंगद के पांव की तरह अपने पांव जमा लिये थे.'

घर के नज़दीक का मोह किसे नहीं होता लेकिन घर के नजदीक अपना ट्रान्सफर कराने के लिए किस-किसकी चिरौरी नहीं करनी पड़ती, किस-किसको चढ़ावा नहीं चढ़ाना पड़ना, इन्हीं सब बातों को तारतम्य से परोसा गया है व्यंग्य — 'चक्कर ट्रान्सफर का' में.

'यात्रा एक नॉन-स्टाप एक्सप्रेस बस की' व्यंग्य में डॉ. सुरेंद्र गुप्त ने एक ऐसी बस का वर्णन किया है जो नॉनस्टाप होते हुए भी हर स्टॉप पर रुकती है और ड्राइवर-कंडक्टर सवारियों को उनके भाग्य पर छोड़कर ढाबे में मिलनेवाले मुफ़्त के भोजन का आनंद लेते हुए यात्रियों के समय के कई घंटे ख़राब कर देते हैं.

कुल मिलाकर डॉ. सुरेंद्र गुप्त द्वारा लिखित व्यंग्य संग्रह 'जांच अभी जारी है' अपनी सहज संप्रेषणीयता, भाषा की प्रवाहमयता और रोचकता के कारण हिंदी साहित्य जगत में अपनी पहचान बनाने में समर्थ व्यंग्य-संग्रह है.

✍ *२८, सारंग विहार, मथुरा- २८१००६*
मो. : ९४१२७२७३६१
Email- drdinesh57@gmail.com

जीवन के सहज प्रवाह की रागात्मक अभिव्यक्ति

✍ *वाचस्पति*

वह और नहीं एक कवि है *(कविता संग्रह)-* ***राजेंद्र आहुति***
प्रकाशन : *बोधि प्रकाशन, सी-४६, सुदर्शनपुरा, इं. एरिया एक्स., जयपुर-३०२००६. मू. २५० रु.*

समकालीन कविता पर आज की सर्वग्रासी राजनीति और अनेक प्रकार के विमर्शमूलक दायरों का दबाब है. कविता में जीवन का सहज प्रवाह अवरुद्ध-सा है. इस जीवन-प्रवाह की रागात्मक अभिव्यक्ति राजेंद्र आहुति की कविताओं में देखी जा सकती है.

रचनाकार राजेंद्र आहुति हैं कौन? घर चलाने के लिए मामूली से व्यवसाय में संलग्न आहुति क़रीब पांच दशक से साहित्य के लिए समर्पित कविता सहित साहित्य की विविध विधाओं में सक्रिय रचनाकर्मी हैं. उनका पहला कविता-संग्रह 'अकारण' २००७ में और दूसरा 'वाक्यांश' २०१४ में आया और हाल ही में 'वह और नहीं, एक कवि है!' शीर्षक से उनका तीसरा कविता-संग्रह आया है जिसमें विषय वैविध्य लिये हुए एक सौ बीस कविताएं संकलित हैं.

आहुति की इन कविताओं में जो सामने और आसपास है उसके साथ ही मन के भीतर का हर्ष-विषाद भी सहज-सरल रूप में व्यक्त हुआ है. जहां यदि जीवन-संग्राम की भाषा है तो कवि के शब्दों में 'भावनाओं के कुओं का मीठा जल है कविता' कवि का यह अटूट विश्वास है कि 'कभी कविता नहीं मरती/कवि के नहीं रहने पर भी/कवि को ज़िंदा रखती है कविता' — किसी पुरस्कार के बिना उपेक्षा व तिरस्कार के बावजूद कवि इसीलिए कविता का दामन कभी छोड़ता नहीं. संग्रह की शीर्षक कविता 'वह और नहीं, एक कवि है!' में भी कवि का दृढ़ निश्चय सामने आता है — 'अपने आंसुओं के समंदर में/वह जीता हुआ/सबसे अलग दिखता है/मन की बातें लिखता है/उपहास के बावजूद.'

अपनी संग्रहीत साहित्यिक पत्रिकाओं और क़िताबों के भविष्य की चिंता करते हुए इस सबको कबाड़ी के हाथों में देने की बात कवि के मन को झंकझोरती है जिसे वह 'क्या ऐसा करना सही होगा' कविता में व्यक्त करता है. वाकई हर बड़े-छोटे रचनाकार और गंभीर पाठक को यह सवाल बेचैन करता है कि उसके जाने के बाद आजीवन एकत्रित पत्रिकाओं-

पुस्तकों का क्या होगा? सरकारों के शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय इस सवाल पर ख़ामोश हैं. लेखकों की जमा-पूंजी अंतत: नष्ट हो जाती है. पुराने समृद्ध पुस्तकालयों को ध्वस्त कर बाज़ार के प्रचार-प्रसार में बड़ी पूंजी जुटी हुई है. हिंदी समाज और जनप्रतिनिधि इस अमूल्य धरोहर के प्रति उदासीन हैं. बाज़ार की ताकतों के दबाव में तेज़ी से बढ़ता शहरीकरण कवि की चिंता में शामिल है. मित्र कथाकार रामदेव सिंह के बहाने वह कई कविताओं में इसे बख़ूबी सामने लाता है. 'शहर से जो चीज़ें विलुप्त हैं/ वे सभी उपलब्ध हैं गांव में' यहां तक कि गांव भी अब पहले जैसे गांव नहीं रहे. फिर भी महानगरों के नरक से गांव आज भी बेहतर हैं. राजनीति की काली छाया ने देहाती दुनिया को दूषित कर दिया है फिर भी शहरी आपाधापी में फंसा मन गांव की तरफ़ लौटने की ललक से भरा है. यही वजह है कि कवि अपने कथाकार मित्र रामदेव सिंह को पैतृक गांव जाने की सलाह देता है.

कवि के अनुभवों की परिपक्वता उसकी कविता में सूक्तिपरकता से भी मिलती है. कुछ चुने हुए अंश देखें — 'अनुभव कहा है/ सबसे जल्दी बुरी नज़र/ग़रीबों की ख़ुशियों को लगती है' — 'आदमी की जिजीविषा की पहचान/अच्छे नहीं/बुरे समय में ही होती है' — 'हंसी चुरा लेने के दौर में/ कौन लगाए क़ीमत/ बहते आंसुओं की'— 'चश्मा लगाकर / ढूंढ़ता हूं चश्मा' — ऐसे अनेक कथन कविताओं की सार्थकता में वृद्धि करते हैं.

प्रकृति केंद्रित कविताओं — 'नदी, बादल, मिट्टी, जड़ और पत्तियां' आदि में विषयगत वैविध्य भी झलकता है. घर-परिवार और सामाजिक संबंधों पर रचित कविताओं का एक बड़ा और उल्लेखनीय हिस्सा समीक्षित संग्रह में है. भूमंडलीकरण और नव उदारवाद के दौर में पुख़्ता ज़मीन पर टिके संबंध अब टूट बिखर रहे हैं. कवि इसे लक्षित करता है. पारंपरिक भावात्मक रिश्ते भी पहले जैसे प्रगाढ़ नहीं रहे, कारण — 'या तो वो हम न रहे या वो ज़माना न रहा!' संबंधों पर कई ऐसी कविताएं हैं जो संवेदना के मर्म को स्पर्श करती हैं. 'दादी मां, एक कमरे में, परिवर्तन, पति-पत्नी, स्त्रियां, विदा के बाद, बीत गयी होली, निरुत्तर पक्की नौकरी, संबंधों की परिभाषा, मां, पुत्र, पुत्री, पत्नी, बहन, भाई, ख़ुशी के लिए, चार साल की नेहा, नौकर, मां की आंखें, मिट रही हैं पिता की स्मृतियां, तोता, संवाद' जैसी और भी अनेक कविताएं हैं जो संबंधों की बुनियाद पर रची गयी हैं. हां, यह ज़रूर है कि संबंधों की यह बुनियाद अब बुरी तरह से दरक चुकी है. क्यों? 'लाभ' कविता में कवि उत्तर देता है — 'लाभ और हानि के पलड़े पर/तौला जा रहा है / घर और बाहर का संबंध' — /यह है आज के हमारे समय की हक़ीक़त जिसे कवि ने कविताओं में दर्ज़ किया है. सच्चाई यही है कि संबंधों के मामले में चाह कर भी पीछे लौट पाना संभव नहीं है. फिर भी जीवन के सहज प्रवाह की रागात्मक अभिव्यक्ति इस संग्रह की अनेक कविताओं में मौजूद है.

'तानाशाह' कविता एक अलग मूड की कविता है. इसमें उत्तरी कोरिया के तानाशाह का जिक्र है जो काम के समय झपकी लेने वाले को तोप से उड़ा देने का आदेश देता है. इसके बरक्स भारत में कुछ जनप्रतिनिधि संविधान की बात-बात पर दुहाई देते हैं पर, अपने-अपने निर्वाचित सदनों में अक्सर झपकी लेते हुए दिख जाते हैं.

'इच्छा' कविता में मनुष्य की एक शाश्वत इच्छा का संदर्भ है — 'मरती हुई इच्छाओं के बावजूद/मरने तक नहीं मरती/और जीने की इच्छा' — यही और जीने की इच्छा रचना कर्म के अनथक कार्य में निरंतर संलग्न रहने के लिए प्रेरित करती है. बड़ी नौकरी में प्रमोशन, पुरस्कार, देश-विदेश में सरकारी धन से यात्राएं, पाठ्यक्रम में घुसपैठ करने की स्थितियों के बिना भी राजेंद्र आहुति जैसे रचनाकर्मी निस्पृह भाव से सृजनशील बने रहते हैं. हिंदी में ऐसे साहित्य-साधक कम नहीं हैं. 'झुर्रियां' कविता में कवि कहता है, 'तमाम उगती झुर्रियों/और पके बालों के बाद भी/लड़ता रहूंगा ज़िंदगी की सही लड़ाई' — सही लड़ाई के लिए माध्यम बनने वाली और कविताओं की ज़रूरत किसी भी समय में कम न हुई, न होगी!

एन-१/६६ के ६ ए,
महेशनगर विस्तार, पहली पश्चिमी गली,
सामने घाट, पो.-बी.एच.यू.,
वाराणसी- २२१००५
मो. : ९४५०१६२९२५.

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

ई-मेल : kathabimb@gmail.com **- संपादक**

'आज के समाज का आइना'

बलवा** (उपन्यास) – **मुख़्तार अब्बास नकवी
***प्रकाशक :** डायमंड बुक्स, एक्स-३०, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-२, नयी दिल्ली-११००२०*
***मूल्य** : १९५ रूपए*

'उपन्यास' दो शब्दों से बना है यानी ऐसी सामग्री जिसे पढ़ कर महसूस हो कि यह कहानी हमारी है. हमारे इर्द-गिर्द घट रही घटनाओं की गवाह है, यह भी महसूस हो कि यह कहानी हमारी ही नहीं बल्कि हमारे शब्दों और भावनाओं से भरी है. उपन्यास 'बलवा' की कथावस्तु उपन्यास का प्राण है. जीवन-समाज से सीधे संबंधित काल्पनिक कहानी स्वाभाविक हक़ीकत का एहसास कराती है.

उपन्यास 'बलवा' मानव जीवन और समाज के सकारात्मक-नकारात्मक पहलुओं का ऐसा सजीव दमदार चित्रण है जिसे सरल और स्वाभाविक भाषा में लिखा गया है. 'बलवा' उपन्यास मौलाना मुश्ताक और संकठा प्रसाद की साजिशी शतरंजी चालों और सौहार्द के ताने-बाने को तार-तार करने के ख़तरनाक खेल का ज़बरदस्त खुलासा है. सियासत और तथाकथित मजहबी रहनुमाओं की सांठ-गांठ के साथ लोगों की भावनाओं को लहुलुहान करने का 'बलवा' हक़ीकत से रुबरु फ़िक्शन है, पुनीत-मुशीर-गजाला-शालिनी उपन्यास के ऐसे पात्र हैं जो इन शुतुरमुर्गी शहंशाहों के खिलाफ़ बगावत तो करते हैं पर उनकी आवाज़ 'नक्कार खाने में तूती' की तरह दब कर रह जाती है. गजाला और पुनीत का प्यार भी ऐसे ही बिखराव और टकराव के दरिंदों की दरिंदगी का शिकार होता है.

शालिनी जो संकठा प्रसाद की इकलौटी पुत्री है, अख़बार की एडिटर भी है, ऐसी घिनौनी साजिशों को बेनकाब करती है पर ख़ुद उसके पिता संकठा प्रसाद उसका अपहरण कराते हैं और इस फ़िक्स्ड अपहरण को भी भावनाएं भड़काकर समाज के अमन को बिगाड़ने का हथियार बनाते हैं.

जहां एक ओर कुछ बेईमान पुलिस-प्रशासनिक अधिकारी हैं, वहीं ईमानदार पुलिस-प्रशासनिक अधिकारी भी हैं, पर ईमानदारी पर बेईमानी हावी होती दिखती है. डिभॉग एक ऐसा कैरेक्टर है जिसके इशारे पर मौलाना मुश्ताक और संकठा प्रसाद इस दरिंदगी के खेल को अंजाम दे रहे हैं.

'पाप के पैबंद' लगाने की कोशिश और समाज के सौहार्द के ताने-बाने को तार-तार करने की रपटीली रेस, प्यार के परवान चढ़ते पैरों पर पलीता, डिभॉग के इशारों पर नाचने वाले साजिशी सूरमाओं की दिल को झकझोर देने वाली घटनाओं से भरपूर है, 'बलवा'.

उपन्यास 'बलवा' नब्बे के दशक की घटनाओं पर आधारित फ़िक्शन है पर आज भी समाज ऐसे चरित्रों-घटनाओं से अछूता नहीं है.

नवाब फ़ैज़ुन्निसा चौधुरानी...

(पृष्ठ ७६ से आगे...)

प्रेरित किया जाता है, उदबोधित किया जाता है कि वे अपने ऊपर की 'ग्लास सीलिंग' को तोड़ दें, इस पारंपरिक नकली डर को न पालें कि छत टूट नहीं सकती, वे पंख फड़फड़ाकर बंद कमरे से बाहर निकल नहीं सकतीं. वह जो ऊपर छत दिख रही है वह महज शीशे की है, एक ज़ोरदार मुक्का उसे तोड़ सकता है, चकनाचूर कर सकता है और औरत अपनी परवशता से, गुलामी से आज़ाद हो सकती है.

नवाब फ़ैज़ुन्निसा चौधुरानी सन १८३४ को पैदा हुईं, बंगाल के एक गांव में, सन १९०३ में, उनका देहांत हुआ लगभग उसी भौगोलिक परिसर में लालन-पालन हुआ पारंपरिक मुस्लिम परिवार में. लेकिन बीच की तीस-चालीस साल की अपनी ज़िंदगी के दौरान उन्होंने 'शीशे की छत' नहीं वरन 'पत्थरों की दीवारें' तोड़ीं और अपने साथ की जानी-अनजानी लड़कियों और औरतों को भी इतना मज़बूत बनाया कि वे भी आत्मनिर्भरता की राह में चल सकने में सक्षम साबित हुईं.

नवाब फ़ैज़ुन्निसा चौधुरानी आज भी एक पथप्रदर्शक दीप स्तंभ हैं.

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड,
दादर (प.), मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
***ई-मेल :** rajampillai43@gmail.com*

सतीश राठी की कविताएं

पिता के जाने के बाद

बहुत कुछ ढह जाता है जीवन में,

घर हो जाते हैं खंडहर
गिरने लगते हैं टूटते रिश्तों की तरह
संबंधों में आ जाती है नीरसता
सब कुछ हो जाता है औपचारिक
बचपन की मधुर स्मृतियां
होने लगती हैं धूमिल,

जब तक रहे थे पिता आंखों के समक्ष
सारे जीवन में थी एक निश्चिंतता
उनकी बांहों में
मर जाते थे सारे दुख
मिट जाती थी सारी पीड़ा
और मिल जाता था उनके पास
हर समस्या का समाधान,

अब पिता के चले जाने के बाद
जो भी कुछ ढह गया है जीवन में
बड़ा मुश्किल हो गया है
फिर से उसका वापस आ जाना.

जीवन-मंथन

उम्र का वह हिस्सा
सबसे अच्छा मानते हैं लोग
जब आप अपनी मर्जी के मुताबिक
जीवन जीने लगें,

कुछ लोग
साठ के बाद की उम्र को
मान लेते हैं अच्छा
जब नौकरी वाले नौकरी से रिटायर हो
जीने लगते हैं अपना जीवन
अपनी मर्जी से,

कुछ लोग
इसे सठिया जाने की उम्र भी
मान लेते हैं और
कुछ खिसक जाने की,

कुछ यह भी मानते हैं कि
साठ के बाद की उम्र
होती है भगवत-भजन करने की
और इस बहाने से
गुज़ार जाते हैं नास्तिक होकर सारा जीवन,

उम्र तो रोज़ खिसकती ही रहती है
सांस की हर आवाजाही के साथ
ढूंढती रहती है सदैव
मृत्यु से मिलन का अपना चरम क्षण,

जीवन का कौन-सा हिस्सा
सबसे अच्छा जिया गया
इसे बताने के लिए
कई लोग लिखते हैं अपनी आत्मकथा भी,

लेकिन शायद
जीवन को अच्छा जीना ही
कठिन होता है सबसे अधिक,

लक्ष्यों को निर्धारित कर
आगे बढ़ने में कई पड़ाव
निकलते जाते हैं और
खाते में आ जाती हैं कई
सारी उपलब्धियां,

उपलब्धियों के मायने
सबके लिए अलग-अलग होते हैं
क्योंकि होते हैं अलग लक्ष्य
कोई अर्थ को, कोई प्रतिष्ठा को,
कोई समाज सेवा को, कोई राष्ट्र सेवा को
बनाते हैं अपने-अपने लक्ष्य,

बावजूद इन सारी बातों के
कई लोग यह पश्चाताप भी करते हैं
कि, हमने तो कुछ जिया ही नहीं जीवन में
हमने तो कुछ देखा ही नहीं जीवन में,

मुझे लगता है कि
छोटी-सी गिलहरी की तरह फुदक कर
छोटी-सी चिड़ियां की तरह चहक कर
ख़ुशियों के कुछ पल
जो जी लिये जाते हैं जीवन में
वही होता हैं उम्र का सबसे अच्छा हिस्सा.

कि
हम चाहे जो भी
जीवन जी जाएं
चाहे जैसे भी जी जाएं
आत्म संतोष से जीवन जी लेना ही देता है
मृत्यु के बाद चेहरे पर
मुस्कान की चरम अभिव्यक्ति.

आर ४५१, महालक्ष्मी नगर, इंदौर-४५२०१०.
मो. ९४२५०६७२०४.
ई-मेल : rathisatish1955@gmail.com

निवेदन

रचनाकारों से

*"**कथाबिंब**" एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि **विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.***

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी रचनाएं भेज सकते हैं. ई-मेल का पता है : kathabimb@gmail.com. रचना की "डॉक" फ़ाइल के साथ "पीडीएफ" फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी किसी अन्य पत्रिका मे नहीं भेजी जायेगी.

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत "कथाबिंब" त्रैमाासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

१. *प्रकाशन का स्थान*	:	*पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं.१ के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई-४०००७५*
२. *प्रकाशन की आवर्तिता*	:	*त्रैमासिक*
३. *मुद्रक का नाम*	:	*मंजुश्री (मंजु सक्सेना)*
४. *राष्ट्रीयता*	:	*भारतीय*
५. *संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता*	:	*उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.*
६. *कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता*	:	*स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री (मंजु सक्सेना)*

*मैं, **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.*

*(हस्ताक्षर - **मंजुश्री**)*

आपके अपने पुस्तकालय के लिए ज़रूरी पुस्तकें

मूल्य ७२५ रु.

रूपसिंह चन्देल का साहित्यिक मूल्यांकन
सम्पादक : डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
अमन प्रकाशन, १०४-ए/८० सी रामबाग,
कानपुर-२०८०१२
ई-मेल : amanprakashan0512@gmail.com

मूल्य ३९५ रु.

जागती आँखों का सपना (कहानी-संग्रह)
लेखिका : मंजुश्री
नीरज बुक सेंटर, सी-३२, आर्यनगर सोसायटी,
प्लॉट-९१, आई.पी.एक्सटेंशन, दिल्ली-११००९२
ई-मेल : bhavna_pub@rediffmail.com

मूल्य ५२५ रु.

कथापर्व
अमन प्रकाशन, १०४-ए/८० सी
रामबाग, कानपुर-२०८०१२

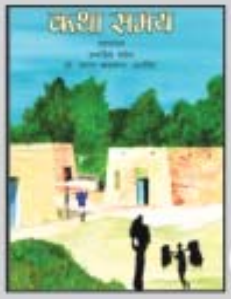

मूल्य ४०० रु.

कथा समय
के. एल. पचौरी प्रकाशन,डी-८, इंद्रापुरी,
लोनी, गाजियाबाद-२०११०२.

मूल्य ४२५ रु.

कानपुर टू कालापानी
अमन प्रकाशन, १०४-ए/८० सी
रामबाग, कानपुर-२०८०१२

२० प्रतिशत छूट का लाभ उठायें.

मूल्य ४५० रु.

बस्ती बरहानपुर
भावना प्रकाशन, १०९-ए,
पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१
ई-मेल : bhavna_pub@rediffmail.com

Tenughat Vidyut Nigam Limited

(A Govt of Jharkhand undertaking)
Hinoo , Doranda , Ranchi 834002,Fax0651-2501015,2253181

TVNL AT A GLANCE

- Tenughat Vidyut Nigam Limited (a Govt. of Jharkhand Undertaking) is a power generation company incorporated under India Company's Act 1956.
- TVNL Head Quarter is at Ranchi and the project known as Tenughat Thermal Power station (TTPS) is Located at Village Lalpania in Bokaro District.
- The total installed capacity of TTPS is 420 MW (2x210). The first unit was put under commercial operation in September 1996 and second in September,1997.
- TTPS has an acquired land of 1800 acres (approx.) there is ongoing process for setting up of 2x660 MW super critical units as expansion project within the same boundary.
- TVNL has achieved several milestones in electricity generation under state sector since its inception.

(Achievement during last few years)

- Allocation of the Coal Block Rajbar E&D for TVNL.
- State Cabinet has accorded approval for installation of TTPS expansion project of 2x660 MW super critical units at TTPS, Lalpania.
- Rail transportation of coal to TTPS has been successfully operationalised since Oct'2015.
- SAP ERP system introduced w.e.f 01.04.2016 for transparent operations.

Our mission

To full fill the requirement of electrical energy of Jharkhand

Our Vision

To be among the best 25 Thermal power plant in India

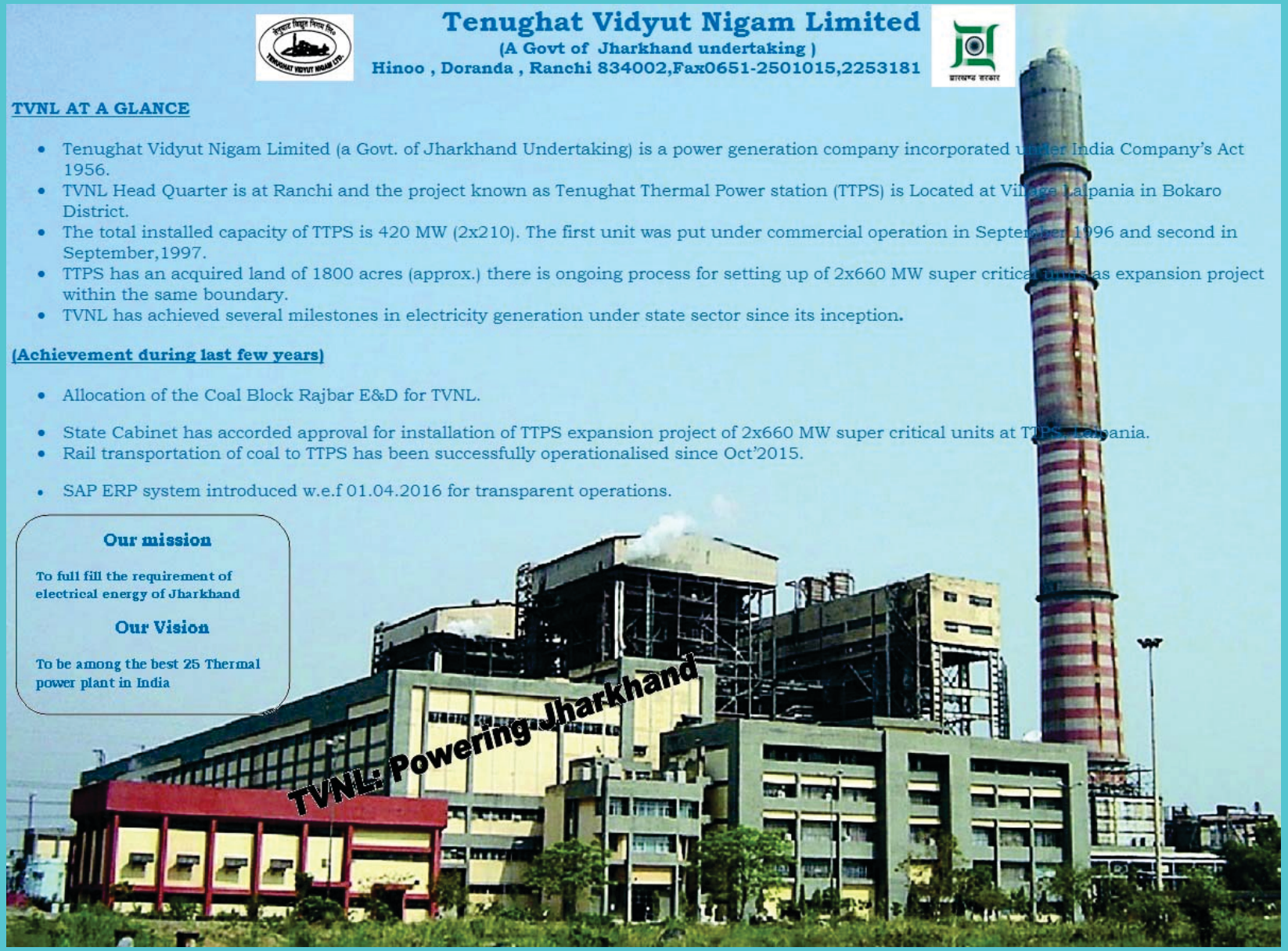

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या :३५७६४/ ७९

पत्रिका का पता : ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

मंजुश्री द्वारा संपादित व पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं.-1 के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई-400 075 में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, 12वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-400 071. फोन : 25515541